अग्निरथी

नियम और दंड



आकाश पाठक

अग्निरथी : नियम और दण्ड

आकाश पाठक

Bookemist

अग्निरथी

नियम और दंड

अग्निरथी

नियम और दंड

आकाश पाठक

Bookemist

अग्निरथी : नियम और दंड (उपन्यास)
लेखक : आकाश पाठक

‘सूरज पॉकेट बुक्स’ पुस्तक संख्या- 129
प्रथम संस्करण: अप्रैल 2022

कवर डिजाइन: शहनवाज़ खान

प्रकाशक:
बुकेमिस्ट (इम्प्रिन्ट-सूरज पॉकेट बुक्स)
ठाणे, महाराष्ट्र
www soorajbooks com
Email ID: soorajpocketbooks@gmail com; publisher@soorajbooks com

हमारी सभी पुस्तकें निम्न वेबसाइट्स व एप्स पर उपलब्ध हैं:
Soorajbooks com/shop, Amazon, Flipkart, Kindle, and other online stores

लेखकीय

प्रिय दोस्तों,

'अग्निरथी' आपके हाथों में है जिसका अर्थ है कि इस श्रृंखला का पहला भाग 'सव्यसाची' आपको पसंद आया। सव्यसाची के सम्बन्ध में पाठकों ने भिन्न भिन्न माध्यमों से अपनी प्रतिक्रियाओं से मुझे अवगत कराया जो मेरे लिए अत्यंत उत्साहवर्धक रहा।

कल्पना के धरातल पर लिखी गयी सव्यसाची की कथा सभी को पसंद आई और कौस्तुभ, शिखी और शतबाहु जैसे पात्रों ने सब का मनोरंजन किया। कुछ लोगों को युद्ध के दृश्य अत्यंत रोचक लगे तो कुछ लोगों को कौस्तुभ की मेघपुरम यात्रा का भाग पसंद आया।

एक विस्तृत काल्पनिक संसार को रचते ही उसके साथ ही कई अन्य पात्र स्वतः ही जन्म ले लेते हैं जिनकी अपनी अलग ही कहानी होती है। उनमें से कई कहानियाँ, कई घटनाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता। सव्यसाची लिखते समय ही मुझे यह अनुभव हुआ कि मात्र एक पुस्तक में इस संपूर्ण कथानक को नहीं समेटा जा सकता, इसी कारण मैंने इस कथानक को एक से अधिक पुस्तकों में लिखने का निर्णय लिया।

पिछले भाग के मुख्य पात्रों के अलावा इस भाग में आपको अरिदमन, वह्निमित्र और महात्य जैसे पात्रों के विषय में और भी अधिक पढ़ने को मिलेगा और साथ ही कई अन्य पात्र भी जुड़ेंगे। कथा के इस दूसरे भाग के आरंभ में बस इतना ही कहूँगा कि यह भाग भी आपको जरूर पसंद आयेगा।

अंत में उन सभी का धन्यवाद जिनके बिना यह पुस्तक पूर्ण नहीं हो पाती और उन सभी पाठकों का धन्यवाद जिन्होंने इस पुस्तक को अपना समय दिया।

सदैव की भांति मुझे अपनी प्रतिक्रियाओं और समीक्षाओं से अवगत कराना न भूलें।

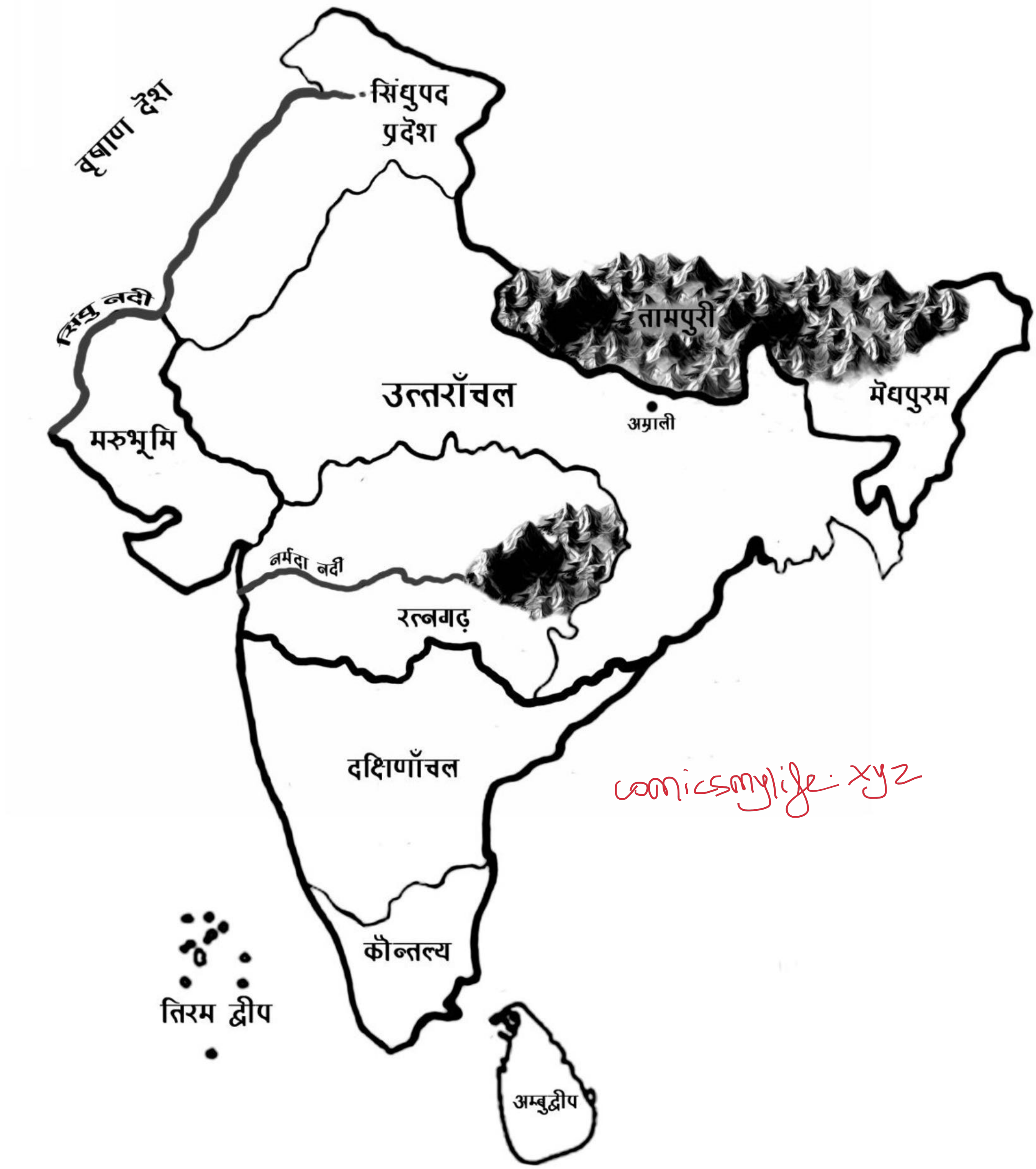
धन्यवाद ।

आकाश पाठक

Email : authorakashpathak@gmail com

अध्याय सूची

खंड 1


वृषाण देश
सिंधुपद प्रदेश
सिंधु नदी
तामपुरी
उत्तराँचल
मेघपुरम
अम्राली
मरुभूमि
नर्मदा नदी
रत्नगढ़
दक्षिणाँचल
कौन्तल्य
तिरम द्वीप
अम्बुद्वीप

अध्याय 1
स्याह रात्रि

रात्रि का अंधकार प्रसान नगर की गलियों में पसरा हुआ था। वातावरण में फैली शांति के मध्य किसी के दौड़ने की ध्वनि दूर-दूर तक सुनाई दे रही थी।

रम्या अपने प्राणों की रक्षा के लिए भाग रही थी। उसकी श्वास किसी धौंकनी की भांति चल रही थी, उसके पैर पीड़ा से काँपने लगे थे, परंतु उसे ज्ञात था कि वह रुक नहीं सकती थी। रुकने का एक ही अर्थ था - मृत्यु।

यह सब एक स्वप्न है! उसका हृदय बार बार यह कह रहा था, परंतु उसका पीछा कर रहा वर्षाण इस तथ्य का प्रमाण था कि यह वास्तविकता थी।

मात्र कुछ ही क्षणों में उसका पूरा संसार परिवर्तित हो चुका था। *उत्तराँचल का युवराज यशवर्धन! वर्षाण से गुप्त रूप से आये छः बक्से! षड्यंत्र!* वह कुछ भी समझने में असमर्थ थी। उसके मस्तिष्क में मात्र यश के स्वर गूँज रहे थे।

"...नगर पाल को सूचित करो।"

यश घायल था, परंतु उसके आग्रह के कारण ही रम्या उसकी सहायता के स्थान पर नगर पाल को सूचना देने जा रही थी। वह अभी कुछ दूर बढ़ी ही थी कि उसे ज्ञात हुआ कि कोई वर्षाण उसका पीछा कर रहा है। उसने अपनी गति बढ़ा दी, परंतु उस वर्षाण से पीछा नहीं छुड़ा पायी।

अब वह वर्षाण पल प्रतिपल उसके निकट पहुँचता जा रहा था। वह रात्रि के समय बंद हो चुके हाट की ओर बढ़ गयी। अब मात्र छिपने से ही बचाव संभव था।

वह एक दीवार से सटकर खड़ी हो गयी। भय से उसका कंठ सूख रहा था। उसके निकट बढ़ रहे पदचापों की ध्वनि बढ़ती जा रही थी। *वर्षाण उसके निकट बढ़ रहा था।*

तभी उसे एक ध्वनि सुनाई थी, तलवार को म्यान से निकालने की ध्वनि। उसका शत्रु सशस्त्र था और उसके निकट बढ़ रहा था। *नहीं, नहीं, नहीं, नहीं!* वह किसी भी दशा में उसका सामना नहीं कर सकती थी। *भगवान एकेश्वर रक्षा करें!*

अपनी तलवार हाथ में लिए, हाट में बढ़ता वह वर्षाण आश्वस्त था। वह युवती किसी भी दशा में उससे बच नहीं सकती थी। वह उस तक पहुँचने ही वाला था जब वह हाट में छिप गयी थी। परंतु इससे उसने अपनी निश्चित मृत्यु को मात्र कुछ क्षणों के लिए ही टाला था, वर्षाण ने सोचा। वह उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उसने अंतिम बार रम्या को देखा था। वह कहीं निकट ही छिपी होगी, उसने अनुमान लगाया, क्योंकि वह इतनी दूर से दौड़ने के कारण अशक्त हो चुकी थी। वर्षाण ने स्वयं के बढ़ने की गति धीमी कर दी और वह किसी मंद से मंद ध्वनि या संकेत की प्रतीक्षा करने लगा। *कोई भी अधिक समय तक शांत नहीं रह सकता था।*

शीघ्र ही उसे एक ध्वनि सुनाई दी, किसी के तीव्रता से श्वास लेने की ध्वनि। वह दबे पाँव उसी ओर बढ़ गया। *वह दो भवनों के पश्चात छुपी थी।*

जैसे ही वह वहाँ मुड़ा उसके हाथों पर एक तीव्र प्रहार हुआ। तलवार उसके हाथ से छूटकर नीचे गिर गयी। परंतु वह अपने स्थान से हिला तक नहीं। उसके समक्ष रम्या हाथ में एक डंडा लिए खड़ी थी। उसने मुस्कराते हुए उस युवती को देखा जो लम्बाई में उसके कंधों तक भी नहीं पहुँचती थी।

चटाक! उसने रम्या को एक थप्पड़ लगाया। वह भूमि पर गिर पड़ी। *इस युवती को समाप्त करने के लिए मुझे तलवार की आवश्यकता नहीं।*

रम्या ने भूमि पर गिरे हुए ही उस विकराल वर्षाण को देखा। काला रंग, मांसल भुजाएँ और विकराल मुस्कान, वह किसी मायावी की भांति प्रतीत हो रहा था। वह वर्षाण नीचे झुका और उसका गला दबाने लगा। रम्या की आँखें उसकी कटोरियों से बाहर आने लगीं।

उसने अपने हाथों से वर्षाण के शरीर पर कई प्रहार किये परंतु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वह क्षण प्रतिक्षण अपना दबाव बढ़ाता जा रहा था। रम्या किसी जल से निकाली हुई मछली की भांति छटपटाने लगी। उसके हाथ में एक नुकीले पत्थर का टुकड़ा आ गया। उसने उस पत्थर से भी वर्षाण के शरीर पर कई प्रहार किये, परंतु पुनः कोई लाभ नहीं हुआ।

उसका मस्तिष्क अंधकार में डूबने लगा। सब कुछ धूमिल पड़ता जा रहा था। उसका नगर, उसका भवन, माँ, बाबा, भाई, यश...

यश! उसने उसे एक कार्य दिया था। *प्रसान नगर संकट में था। उसका नगर संकट में था। उसके माँ, बाबा, भाई सब संकट में थे।* यदि वह अपने कार्य में सफल हो जाती तो संभवतः वह संकट टल जाता।

उसने अपनी शेष इच्छाशक्ति से पुनः वह पत्थर उठाया और उसे उस वर्षाण के चेहरे पर मारा। पत्थर का नुकीला भाग वर्षाण की आँख में धँस गया। रम्या का मुख रक्त के छींटों से भर गया।

वर्षाण चीखते हुए पीछे हट गया और भूमि पर गिर पड़ा। यही अवसर था। रम्या उठी और दौड़ पड़ी, बिना पीछे मुड़े। अब उसके कार्य में कोई बाधा नहीं आने वाली थी।

नगरपाल गहरी निद्रा में था जब उसके सेवक ने उसे नींद से जगाया। भुनभुनाते हुए जब वह द्वार पर पहुँचा तो द्वार पर खड़ी रम्या को देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। उसके वस्त्र फटे हुए थे, मुख पर रक्त के छींटे थे, शरीर काँप रहा था। नगरपाल कल्ल्व को जानता था, उसने उसकी पुत्री को सदैव हँसते और शरारत करते हुए देखा था। परंतु आज उसके द्वार पर खड़ी रम्या भिन्न थी।

रम्या ने उसे सारी बातें बतायीं। *वर्षाणों का आक्रमण!* यदि कोई अन्य नगरपाल को यह सभी बातें बताता तो वह कभी उनपर विश्वास नहीं करता। परंतु रम्या की स्थिति से स्पष्ट था कि वह असत्य नहीं कह रही थी।

उसने नगर का मुख्य द्वार बंद करने का आदेश दे दिया और सभी छोटे केंद्रों पर आपातकालीन संकट का संदेश भी भिजवा दिया। अब यदि कोई संकट आता तो सभी सैनिक सज्ज रहते। हालाँकि उसे अभी भी संदेह था कि ऐसा कोई संकट आएगा।

रम्या ने अपना मुँह धुला, अपने वस्त्र व्यवस्थित किये और वापस जाने लगी। उसी क्षण एक सैनिक नगरपाल को कुछ सूचना देने के लिए आया।

"नगर में कुछ वर्षाणों को देखा गया है जो अनावश्यक रूप से हिंसा कर रहे हैं।" उसने एक ही श्वास में कहना आरंभ किया, "अभी तक यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि वह ऐसा क्यों कर रहे हैं।"

"हूँ!" नगरपाल चिंतित था। रम्या की बातों में सत्यता थी।

उसी क्षण आकाश में अग्नि की लपट दिखाई दी। कहीं कुछ जलाया जा रहा था। *हे ईश्वर! आज की रात्रि इस नगर में क्या क्या होने वाला था?*

रम्या वहाँ एक क्षण और नहीं रुकी। मार्ग में न जाने कितने विचार उसके मस्तिष्क में आये और गए। नगर में अब शांति नहीं थी। लोग अपने अपने भवनों से बाहर निकलकर आपस में बातें कर रहे थे।

यह कोलाहल कैसा?

यह अग्नि कैसी?

नगर में क्या हो रहा है?

किसी को कुछ ज्ञात नहीं था।

रम्या जब अपने भवन के निकट पहुँची तो स्तब्ध रह गयी। उसका शरीर जड़ हो गया। उसका भवन जल रहा था। धूं-धूं करती हुई अग्नि की लपट आकाश को छू रही थी। उससे थोड़ी दूर स्थित वह छोटा भवन भी जल रहा था जिसमें यश छद्म वेश में रह रहा था।

कई लोग उसके भवन के निकट खड़े देख रहे थे। कुछ रम्या की दिशा में भी देख रहे थे, जो किसी शिला की भांति भावहीन खड़ी थी।

अश्रु की कुछ बूँदें उसके गालों से होती हुई भूमि पर गिर पड़ीं। उसके माँ बाबा, उसका छोटा भाई सभी उस भवन में थे। जिस प्रकार अग्नि में जलकर लकड़ियों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है उसी प्रकार उस भवन में लगी अग्नि से उसका अस्तित्व भी समाप्त हो गया था।

अब कुछ भी शेष नहीं था।

वह घुटनों के बल भूमि पर बैठ गयी।

आकाश में उदित होता सूर्य धीरे-धीरे अंधकार को नष्ट करता जा रहा था। रम्या के जीवन की सबसे स्याह रात्रि का अंत हो चुका था।

अध्याय 2
दावानल

युद्ध समाप्त हुए दो दिन बीत चुके थे। रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुए सैनिकों के दाह से उत्पन्न हुई अग्नि भी शांत हो गयी थी। अपने शिविर में बैठा अरिदमन यह विचार कर रहा था कि किस प्रकार उत्तराँचल की सेना से सेवानिवृत्त होने के पश्चात भी वह एक बार पुनः उत्तराँचल के लिए युद्ध लड़ रहा था।

उसे वह दिन भलीभांति स्मरण था जब उसने सेनापति पद का त्याग करने का निर्णय लिया था। ऐसा नहीं था कि वर्षों युद्ध करने के पश्चात वह थक गया था, अथवा शस्त्र उठाते हुए उसके हाथ काँपने लगे थे, अथवा रण में शत्रु की हुंकार उसे भयभीत करने लगी थी। उसने तो अपने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि वह कभी सेवानिवृति भी लेगा। जीवन भर उसने मात्र युद्ध ही किये थे और उसे विश्वास था कि एक दिन उसका जीवन रणभूमि के मध्य ही समाप्त होगा।

परंतु नियति अपनी कथा स्वयं लिखती है जिसे परिवर्तित करना सरल नहीं होता।

कभी कभी वह सोचता था कि यदि उसने थोड़ा सा साहस किया होता तो उसे वह अक्षम्य कार्य नहीं करना पड़ता जिसके कारण उसने सेनापति के पद के त्याग का निर्णय लिया था। यदि उसने थोड़ा सा साहस किया होता तो वह उस अपराधबोध से मुक्त होता जिसका भार वह सदैव ढ़ोता रहता है।

पंद्रह वर्षों पूर्व, वह वर्षा की रात्रि थी जब वह घने वनों के मध्य बढ़ रहा था। परंतु वह अकेला नहीं था...

“प्रणाम गुरुश्रेष्ठ!” हस्तिन का स्वर सुनते ही अरिदमन वर्तमान में आ गया। वह कक्ष में प्रवेश कर रहे हस्तिन की ओर मुड़ा। उसे ज्ञात था कि रात्रि के इस प्रहर हस्तिन अवश्य ही किसी सूचना के साथ आया होगा, और उसके स्वर में मिश्रित गंभीरता से यह स्पष्ट था कि वह सूचना अशुभ थी।

“आयुष्मान भव!” अरिदमन ने प्रत्यक्ष रूप से कहा।

“एक अशुभ समाचार है।” हस्तिन ने कुछ क्षणों के विलंब के पश्चात धीमे स्वर में कहा।

“कैसा समाचार?” अरिदमन ने मात्र इतना ही पूछा। महाराज कीर्तिवर्धन एक दिन पूर्व ही राजकुमारी वसुधा के साथ राजभवन के लिए प्रस्थान कर चुके थे। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि एक भयावह संकट समाप्त हो चुका है।

“युवराज यशवर्धन नहीं रहे।” हस्तिन ने कहा।

“क्या?” अरिदमन का मस्तिष्क भी झंकृत हो उठा। यदि हस्तिन के अतिरिक्त किसी अन्य ने उसे यह सूचना दी होती तो उसे कदापि विश्वास नहीं होता, परंतु उसे ज्ञात था कि हस्तिन ने इस सूचना की सत्यता परखने के पश्चात ही उसे यह समाचार दिया होगा। *उत्तराँचल का राजकुमार, उसका शिष्य यश वास्तव में मृत था।* “किस प्रकार?” उसने पूछा।

“कुछ अधिक नहीं ज्ञात। वर्षाणों ने प्रसान नगर पर आक्रमण किया है और मेरा अनुमान है कि वह वहाँ से आगे बढ़ते हुए सिंधुपद पर भी आक्रमण करेंगे।”

“परंतु वर्षाणों ने ऐसा क्यों किया? उनसे तो हमारे व्यापारिक सम्बन्ध हैं। और यश वहाँ क्या कर रहा था? उसे मारना इतना सरल नहीं।” अरिदमन एक ही श्वास में सब कहता चला गया। सेनापति पद का त्याग करने के पश्चात उसे ऐसा लगा था कि अब उसके जीवन में कुछ भी शेष नहीं, परंतु जब उसने शिक्षण कार्य आरंभ किया तब उसे ज्ञात हुआ कि उसके जीवन में अभी भी कुछ उपयोगिता शेष है। यशवर्धन उसी उपयोगिता का प्रमाण था। *वह उसका सर्वश्रेष्ठ शिष्य था।*

“इस क्षण यह बता पाना तो असंभव है कि वर्षाणों ने ऐसा क्यों किया।” हस्तिन ने कहा, “यद्यपि मुझे यह अवश्य ज्ञात है कि युवराज कुछ माह से प्रसान नगर में गुप्त रूप से रह रहे थे। किसी विशेष प्रयोजन के लिए।”

“तुम्हारा क्या अनुमान है? क्या यश वहाँ जो भी कार्य कर रहा था वह इस आक्रमण से संबंधित हो सकता है?” अरिदमन ने पूछा।

“इस क्षण मैं कुछ भी नहीं कह सकता गुरुश्रेष्ठ। युवराज हठी थे, कब क्या करते थे किसी अन्य को ज्ञात नहीं होता था।”

अरिदमन ने कुछ नहीं कहा। इस तथ्य से वह भलीभांति परिचित थे।

“कुछ समझ नहीं आ रहा।” हस्तिन ने एक दीर्घ श्वास लेते हुए कहा, “कहाँ हम दो दिनों में रत्नगढ़ पर आक्रमण कर उसे मुक्त कराने के विषय में सोच रहे थे, और अब यह समाचार। अब हमें प्रसान नगर को प्राथमिकता देनी होगी।” पराजित होने के पश्चात दक्षिणांचल की सेना सोमपर्वत की घाटियों से तो लौट गयी थी, परंतु पुनः दक्षिणांचल लौटने के स्थान पर वह रत्नगढ़ में ही रुके हुए थे। इस प्रकार रत्नगढ़ का एक मुख्य भाग अभी भी उनके अधिकार में था।

“संकट के समय धैर्य खोना सैन्यमंत्री को शोभा नहीं देता।” अरिदमन ने कहा, “संभवतः यह उनकी योजना हो।”

“किसकी योजना?” हस्तिन ने प्रश्न किया।

“शतबाहु की योजना। स्वर्ण सेतु का नष्ट होना स्मरण करो, यह किसी प्रकार से एक संयोग नहीं हो सकता।”

“आप सत्य कह रहे हैं गुरुश्रेष्ठ। ऐसा प्रतीत होता है कि शतबाहु लंबे समय से हम पर आक्रमण की योजना बना रहा है। परंतु हमें उसकी योजना को हर मूल्य पर विफल करना है। मैं प्रसान नगर अवश्य जाऊँगा परंतु आधी सेना इसी स्थान पर रहेगी। वर्षाणों का सामना करने के लिए आधी सेना और सिंधुपद की सेना पर्याप्त रहेगी।”

“उत्तम!” अरिदमन ने गर्वित स्वर में कहा। “परंतु प्रसान नगर तुम नहीं मैं जाऊँगा।”

हस्तिन ने दृष्टि उठाकर अपने गुरु और पूर्व सेनापति को देखा।

“किंतु...” उसने कुछ कहना चाहा परंतु अरिदमन ने उसे मध्य में ही टोक दिया।

“सेना को दो भागों में बाँटने का निर्णय उचित है। परंतु यहाँ मात्र आधी सेना शेष रहने से शत्रु हमें दुर्बल समझ सकता है और आक्रमण कर सकता है। ऐसी स्थिति में उस आधी सेना को एक सशक्त नेतृत्व की आवश्यकता रहेगी जो तुम भली भांति कर सकते हो क्योंकि यह सेना तुम्हारी है। तुम उत्तराँचल के सेनापति हो। वहीं प्रसान नगर में हमें मुख्यतः सैन्य बल भेजने की आवश्यकता है और उस कार्य के लिए उत्तराँचल की सेना का कुछ भाग और अम्राली की सेना पर्याप्त रहेगी।”

हस्तिन ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। उसे अरिदमन के निर्णय पर पूर्ण विश्वास था। उसे ज्ञात था ऐसे समय पर सेना को दो भागों में बाँटना उचित नहीं था, परंतु इस समय यही एकमात्र विकल्प था।

“मुझे विश्वास नहीं होता कि शतबाहु ऐसा भी कर सकता है। दस्यु और वर्षाणों की सहायता।”

“शक्ति का लोभ बुद्धि को मंद कर देता है। एक छोटे से लाभ के लिए लगायी गयी अग्नि कब दावानल बन जाती है, स्वयं लोभी को भी ज्ञात नहीं होता।”

“सत्य कहा आपने।” हस्तिन की आँखों के समक्ष रणभूमि में मरे हुए सैनिकों का दृश्य घूमने लगा। “शतबाहु ने जो युद्ध आरंभ किया है, वह न जाने कितनों की आहुति लेगा।”

“मैं कल प्रातः ही यहाँ से प्रस्थान करूँगा।” अरिदमन ने कहा, “सैनिकों को इसी समय सूचित कर दो।” प्रसान नगर बढ़ने से पूर्व उन्हें कुछ अतिरिक्त सहायता भी एकत्र करनी थी, उसने सोचा।

स्थिति विकट थी, उसकी मातृभूमि पर संकट के मेघ छाये हुए थे, उनका सैन्य बल पर्याप्त नहीं था और न चाहते हुए भी वह उन सबके मध्य था।

संभवतः उसकी इच्छा अंततः पूर्ण हो जाएगी। संभवतः उसका जीवन रणभूमि के मध्य ही समाप्त होगा।

उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और कहा, “न जाने मुझे ऐसा क्यों प्रतीत हो रहा है कि आने वाले समय में एकद्वीप की भूमि एक भीषण युद्ध की साक्षी बनने वाली है। एक ऐसा युद्ध जिसे संसार कभी भूल नहीं पायेगा।”

अध्याय 3
संदेश

कौस्तुभ का हृदय आशंकित था। वह एक बार पुनः एक नए स्थान पर जा रहा था। *उत्तराँचल राजभवन।*

मध्यम गति से दौड़ रहे अश्व की पीठ पर बैठे हुए उसने दूर क्षितिज में डूबते सूर्य को देखा। आकाश की छटा केसरी हो गयी थी। *गंतव्य तक पहुँचने में मध्य रात्रि हो जाएगी,* उसने मन ही मन अनुमान लगाया।

एक राज संदेश वाहक के साथ, वह और शील उत्तराँचल के राज्य मार्गों पर बढ़ रहे थे। “यह मार्ग तो तुम्हारे ग्राम के मार्गों से दस गुना चौड़े हैं।” शील ने उत्सुकतावश कहा।

कौस्तुभ ने मात्र मुस्कुरा कर उत्तर दिया। वास्तव में तो उसके मस्तिष्क में प्रश्नों और शंकाओं का झंझावात चल रहा था।

जब प्रातःकाल वह संदेश वाहक उसके ग्राम उसके घर आया था तो उसे अत्यंत आश्चर्य हुआ था। *ऐसा कौन सा कार्य आ गया कि स्वयं महाराज ने संदेश भेजा था।*

वह कुछ ही दिन पूर्व युद्ध स्थल से अपने ग्राम लौटा था और शीघ्र ही वह और शील पुनः मेघपुरम के लिए निकलने वाले थे। *और अब यह संदेश।* लगभग एक वर्ष पश्चात पुनः अपने ग्राम आकर उसे बहुत अच्छा लग रहा था। सब कुछ पहले जैसा ही था, परंतु उसके पश्चात भी उसे एक नवीनता का अनुभव हो रहा था। वसंत में खिलने वालों पुष्पों की भांति। जब उसकी माँ ने उसे देखा तो उनकी आँखों से अश्रु बहने लगे थे, बीते एक वर्ष से उन्हें उसका कोई समाचार नहीं प्राप्त हुआ था। हालाँकि उसे ज्ञात था कि उन अश्रुओं के पीछे स्नेह भी था। कुछ ऐसे ही भाव उसके पिता के मुख पर भी थे। उसे ज्ञात था कि उनके गंभीर मुख के पीछे उसके लिए गर्व का भाव भी छुपा हुआ था।

जिसने भी उसकी मेघपुरम यात्रा और शिक्षा के विषय में सुना, वह ही आश्चर्यचकित हुआ। वह स्वयं अपने ग्राम के परिवेश में पुनः रमने लगा था।

जब तक उसे वह संदेश नहीं प्राप्त हुआ।

कीर्तिवर्धन से लिए गए वचन के विषय में उसने किसी से चर्चा नहीं की थी, शील से भी नहीं। उसे तो यह ही नहीं समझ आ रहा था कि जिसे उसने सरोवर के निकट देखा था, यदि वह राजकुमारी वसुधा नहीं थी तो कौन था। उसकी स्थिति ऐसी थी कि वह किसी से इस विषय में प्रश्न भी नहीं कर सकता था। वास्तविक वसुधा से मिलने के पश्चात उसने प्रत्येक क्षण यही विचार करते हुए व्यतीत किया था कि उसे इस प्रकार लोभ और मोह में आकर निर्णय नहीं लेना चाहिए था।

जब उसने *संदेश* शब्द सुना तो उसका मस्तिष्क स्वतः इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि हो न हो वह उसी विषय से संबंधित होगा। परंतु संदेश सुनने के पश्चात उसे ज्ञात हुआ कि उसका निष्कर्ष गलत था।

ज्ञानशिला में वार्षिक संगोष्ठी का दिन निश्चित किया जा चुका था और वहीं पर निर्णय लिया जाने वाला था कि कौस्तुभ को क्या दंड दिया जायेगा। इसी कारण महाराज ने उसे संदेश के माध्यम से राजभवन बुलवाया था।

आश्रम की परिधि से बाहर मंत्र विद्या का प्रयोग करने का दंड, वह तो इस विषय में भूल ही चुका था। उसे ऐसा लगा मानो किसी ने उसे मीठे स्वप्न वाली नींद से जगा दिया हो। *परंतु महाराज ने तो उसे आश्वासन दिया था कि उसे कोई दंड नहीं मिलेगा, क्योंकि उसने मंत्र विद्या का प्रयोग उन्हीं के आदेश पर किया था।*

“यदि निर्णय ज्ञानशिला में लिया जायेगा तो महाराज ने मुझे राजभवन क्यों बुलाया है?” वह अपनी जिज्ञासा रोक नहीं पाया। यद्यपि उसे संदेह था कि क्या उस संदेशवाहक को इस प्रश्न का उत्तर ज्ञात होगा? परंतु उसे इस विषय में ज्ञान था।

“ज्ञानशिला का प्रत्येक आदेश या तो किसी आश्रम में प्रमुख के समक्ष सुनाया जाता है अथवा किसी राजा के समक्ष। प्रमुख अथवा राजा साक्षी होते हैं कि आदेश उस व्यक्ति को दे दिया गया है जिसके लिए वह था।” संदेशवाहक ने बताया। “हालाँकि यह कार्य ज्ञानशिला में किया जा सकता है, परंतु महाराज ने विशेष आग्रह किया है कि आदेश राजभवन में ही सुनाया जाये।”

कौस्तुभ ने अनुमान लगाया कि महाराज ने उसके कारण ही ऐसा आग्रह किया होगा। परंतु वह अभी भी इस विषय में शंकित था कि क्या महाराज ज्ञानशिला द्वारा सुनाये गये निर्णय में कुछ बदलाव कर सकेंगे। और अब उसकी मुख्य चिंता यह थी कि उसे क्या दंड दिया जायेगा।

संदेश प्राप्त होते ही उसने तत्क्षण राजभवन के लिए प्रस्थान करने का निर्णय किया और उसके पश्चात वहीं से पुनः मेघपुरम की यात्रा। इसी कारण शील भी उसके साथ ही यात्रा कर रहा था।

इस प्रकार अकस्मात रुप से ग्राम से प्रस्थान करने के कारण शील भी अप्रसन्न था। मेघपुरम के ग्राम और जीवन शैली से भिन्न यहाँ के परिवेश भी उसे आनंद आ रहा था। सुदास से तो उसकी मित्रता भी हो गयी थी।

“अंततः हमें आश्रम लौटने में विलंब हो ही जायेगा।” मार्ग में उन तीनों के मध्य फैली शांति को भंग करते हुए शील ने कहा।

“हाँ, परंतु परिस्थितियाँ भी तो सामान्य नहीं है।” कौस्तुभ ने उत्तर दिया। राजमार्ग के किनारे समान दूरी पर वृक्ष रोपित किये गए थे जो उस मार्ग की सुंदरता को और बढ़ा रहे थे। “उत्तराँचल में कार्य समाप्त कर हम अविलंब मेघपुरम के लिए प्रस्थान करेंगे।”

“सत्य कहा, महर्षि अवश्य हमारी परिस्थिति समझेंगे। और मुझे तो प्रसन्नता है कि इस प्रकार मुझे राजभवन भ्रमण का अवसर भी प्राप्त हुआ है।” शील ने कहा। “वैसे तुम्हारा क्या अनुमान है? ज्ञानशिला से तुम्हारे लिए क्या आदेश आयेगा।”

कौस्तुभ ने सरलता से अपने कंधे उचका दिया, यह दर्शाते हुए कि उसे कोई अंतर नहीं पड़ता। परंतु वास्तविकता कुछ और थी। एक अनजाना भय उसके हृदय को घेरे हुए था और वह हर संभव प्रयास कर रहा था कि उस विषय में न सोचे।

शील भी मौन हो गया और उदित होते चंद्रमा के प्रकाश में पुनः राजमार्ग का अवलोकन करने लगा।

उनके साथ यात्रा कर रहा संदेशवाहक अभी भी मौन ही था।

कीर्तिवर्धन ने कभी भी स्वयं को इतना असहाय अनुभव नहीं किया था। शत्रु ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया था और उसका पुत्र, उसके वंश का भविष्य मृत्यु को प्राप्त कर चुका था। और वह कुछ नहीं कर सका था।

सैकड़ों वर्षों से एकद्वीप वासी उसके पूर्वजों की प्रशंसा करते थे, कथावाचक उसके पूर्वजों की कथा सुनाते थे और वह उत्तराँचल पर छाते संकट के मेघों को भी नहीं भाँप सका। अब संभवतः भविष्य में वही प्रजा और वही कथावाचक उसे इतिहास के सबसे असफल महाराज के रूप में स्मरण करेंगे।

“तुमने अपने पुत्र को रोका क्यों नहीं?” एकांत में स्वयं उसका अंतर्मन उससे ही प्रश्न करता था।

“मैं किस प्रकार उसे रोकता? उसने क्या कभी मेरी कोई बात मानी है?” उसके अंतर्मन के दूसरे भाग ने उत्तर दिया, “अपने हठ के कारण उसने सदैव मेरी आज्ञाओं की अवहेलना ही की है।”

और सहसा उसे अनुभूति हुई कि वह यश की मृत्यु का कारण भी यश को ही बता रहा है। वह स्वयं किसी भी उत्तरदायित्व से बचना चाहता है। उसने सदैव ऐसा ही किया है।

परंतु अब और नहीं! वह अपनी असफलता का दोष दूसरों पर नहीं मढ़ सकता। उसे अपने कर्तव्य का निर्वहन स्वयं ही करना था।

संध्या समय वह अरिदमन के साथ मंत्रणा कर रहा था जो कुछ ही समय पूर्व वहाँ आये थे। “आपकी सहायता के लिए मैं सदैव आपका आभारी रहूँगा। यदि आपकी सेना उचित समय पर नहीं पहुँचती तो संभवतः दक्षिणांचल की सेना को वापस भेजना कठिन हो जाता।”

कठिन नहीं असंभव, अरिदमन ने मन में सोचा। और ऐसी ही परिस्थितियाँ पुनः बन गयीं थीं। “अब हमें वर्षाणों को वापस भेजना है।” उसने कीर्तिवर्धन से कहा।

अरिदमन को ज्ञात हुआ था कि एक युवती ने प्रसान नगर के नगर पाल को सूचना दी थी कि वर्षाण नगर पर आक्रमण करने वाले हैं और उनमें से एक ने युवराज यशवर्धन का वध कर दिया है। सर्वप्रथम तो उसने उस युवती की बातों पर ध्यान नहीं दिया, परंतु अंततः उसे ज्ञात हो गया कि उस युवती की बातें पूर्णतः सत्य थीं। उसने नगर का मुख्य द्वार बंद करवा दिया और अविलंब एक संदेश सिंधुपद प्रदेश भी पहुँचा दिया।

परंतु जब तक सिंधुपद की सेना वहाँ पहुँचती, वर्षाण द्वार को अपने अधिकार में ले चुके थे। सेना अभी भी नगर के बाहर ही थी और नगर के भीतर प्रवेश करने के उनके सभी प्रयास विफल रहे थे।

“वर्षाणों को हमें मात्र वापस नहीं भेजना है, उन्हें दण्डित भी करना है।” कीर्तिवर्धन ने कठोर स्वर में कहा। “मैं चाहता हूँ कि आप शीघ्र ही वहाँ जाएँ और प्रत्येक वर्षाण को मृत्यु दंड दें। एक ऐसा उदाहरण स्थापित करें कि अगले सहस्त्र वर्षों तक पुनः कोई वर्षाण एकद्वीप की ओर दृष्टि भी न उठा सके। परंतु आपसे मेरा एक आग्रह भी है।”

अरिदमन ने प्रश्नवाचक दृष्टि से कीर्तिवर्धन को देखा।

“जिस वर्षाण ने मेरे पुत्र का वध किया होगा, उसे जीवित बंधक बना लीजिएगा। उसे मैं स्वयं अपने हाथों से दंड दूँगा।” कीर्तिवर्धन ने जब अपनी बात समाप्त की तो क्रोध से उसके नथुने फूले हुए थे।

अरिदमन ने तत्क्षण कोई उत्तर नहीं दिया। यदि यह कार्य इतना ही सरल होता तो संभवतः सिंधुपद की सेना अब तक यह कार्य पूर्ण कर चुकी होती। शत्रु बल का उन्हें कोई अनुमान नहीं था। इसी कारण उन्हें बल के साथ बुद्धि का भी प्रयोग करना था। प्रसान नगर पर आक्रमण करने से पूर्व उन्हें एक सुनियोजित योजना बनानी थी।

और प्रत्येक संभव सहायता एकत्र करनी थी। हस्तिन ने सेना को दो भागों में बाँटने का प्रस्ताव रखा था, परंतु वह मात्र सेना के एक तिहाई भाग के साथ वहाँ आया था। इसके अतिरिक्त उसके साथ अम्राली की भी सेना थी और अब वह राजभवन के सभी सैनिकों को एकत्र कर रहा था।

“यहाँ उपस्थित सभी सैन्य बल और अस्त्र शस्त्र एकत्रित होते ही मैं प्रसान नगर के लिए प्रस्थान करूँगा।” अरिदमन ने कहा। “साथ ही सोमपर्वत से आये हुए सैनिक थके हुए भी हैं, उन्हें भी विश्राम और अभ्यास करने का कुछ समय प्राप्त होगा।

“अनुमानतः कितना समय?” कीर्तिवर्धन व्यग्र था।

“संभवतः एक सप्ताह।” अरिदमन ने उत्तर दिया। वह कीर्तिवर्धन की व्यग्रता अनुभव कर सकता था, परंतु पूर्ण तैयारी के बिना प्रसान नगर जाना मूर्खता होती।

“उचित है।” कीर्तिवर्धन ने कहा, “तब तक प्रधानमंत्री महात्य भी ज्ञानशिला से लौट आयेंगे।”

रो रोकर वसुधा की आँखों से अश्रु भी सूख चुके थे।

पहले माँ और अब उसका भाई, जीवन में उसने जिससे भी प्रेम किया वह अब इस संसार में नहीं था। *आखिर क्यों नियति उसके साथ ऐसा पक्षपात कर रही है।* क्या उसे सुख से रहने का अधिकार नहीं है?

सुख! इसका अनुभव कदाचित उसने कभी नहीं किया। वह जीवन की घटनाओं को सुख और दुःख के मापदंडों पर नहीं तौलती थी। उसका मानना था कि किसी घटना या भावना को सुख और दुःख में विभाजित करना मात्र एक सरलीकरण था। जीवन इससे कहीं अधिक जटिल था।

बाल्यकाल में उसकी धाय माँ उसको ऐसी राजकुमारियों की कहानियाँ सुनाती थीं जो अपने कक्ष में बैठ, सुंदर वस्त्र पहनती थीं। अपनी सखियों के साथ श्रृंगार करती थीं और देव स्वरुप सुंदर राजकुमारों के स्वप्न देखती थीं।

परंतु जैसे जैसे उसने वास्तविक संसार को समझा वैसे ही उसे ज्ञात होता गया कि जीवन कहानियों से कितना भिन्न है। न तो उसकी रुचि श्रृंगार में थी और न ही वह किसी के विषय में सोचती थी।

हाँ उसकी रुचि शस्त्रों में अवश्य थी। परंतु उसके भाई के अतिरिक्त सभी लोग उसे शस्त्र अभ्यास करने से हतोत्साहित करते थे।

"यदि तुम इन कठोर शस्त्रों के साथ समय व्यतीत करोगी तो तुम्हारा हृदय भी इन्हीं की भांति कठोर हो जायेगा।" एक बार उसकी बूढ़ी धाय माँ ने उससे कहा था। "राजकुमारियों के हृदय में प्रेम, स्नेह और कोमलता होनी चाहिए।"

संभवतः वह सही थीं, वसुधा सोचती थी। उसके हृदय में प्रेम भाव नहीं था, विरक्ति थी। हाँ, उसके हृदय में स्नेह अवश्य था, यश के प्रति। परंतु अब वह भी उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हो चुका था। अपने कक्ष में बैठे हुए उसके बाल्यकाल की स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में घूम रही थीं। माँ की मृत्यु तभी हो गयी थी जब वह मात्र दो वर्ष की थी और पिता का स्नेह उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ। एकमात्र यश ही था जिसके कारण उसने स्वयं को कभी अकेला नहीं अनुभव किया था।

तभी कक्ष में उसे किसी के प्रवेश की आहट सुनाई दी। उसे ज्ञात था कि उसके कक्ष में बिना आज्ञा प्रवेश करने वाले कौन हैं। उसने अपनी दृष्टि उठाकर दोनों आगंतुकों को देखा।

वह उसकी दो सखियाँ थीं। राज ज्योतिष अरिम की पुत्री बेला और उसकी बुआ की पुत्री उर्वी। यशवर्धन ने जब शिक्षण कार्य के लिए अम्राली प्रस्थान किया, तब उन्होंने ही वसुधा के एकाकीपन में उसका साथ दिया था। दास, दासियों से भरे हुए एक राजभवन में मात्र वह दोनों ही थीं जिनसे वसुधा अपने मन की बातें कर सकती थी।

"उदासी छोड़ो वसुधा," उर्वी ने वसुधा के निकट बैठेते हुए कहा, "सहस्त्र व्यक्तियों की मृत्यु भी किसी एक व्यक्ति को जीवित नहीं रह सकती। शोक से क्या लाभ?"

शोक से क्या लाभ? उर्वी के लिए यह कहना सरल था, वसुधा ने सोचा। उसका अधिकांश जीवन तामपुरी में वायु कुल संप्रदाय आश्रम में व्यतीत हुआ था। कदाचित वहाँ ग्रंथों की शिक्षा ग्रहण करने के कारण वह इतनी सरलता से यह कह सकती थी। *परंतु उसने भी तो कुछ वर्षों पूर्व अपने पिता को खोया था,* वह उसकी स्थिति को समझ सकती थी।

वसुधा ने अपना सिर उर्वी के कंधे पर टिका दिया।

उर्वी ने बेला को देखा और आँखों ही आँखों में कुछ संकेत किया। यहाँ आने से पूर्व उन दोनों ने निर्णय किया था कि किसी न किसी भांति वसुधा का मन बहलायेंगी।

"मैंने सुना है कि पूर्व सेनापति राजभवन के सैनिकों को एकत्र कर रहे हैं। यहाँ मात्र उतने ही सैनिक शेष रहेंगे जिनका कार्य अति आवश्यक है।" बेला ने कहा। "उसके पश्चात वह सभी प्रसान नगर जायेंगे।"

"मैं भी उनके साथ जाऊँगी।" वसुधा सावधान होकर बैठ गयी। मुख पर जो शोक के भाव थे वह अब क्रोध में परिवर्तित हो गए। "वह वर्षाण नगर में उपस्थित रहें और मैं यहाँ बैठी रहूँ, यह संभव नहीं।"

"परंतु वसुधा, कदाचित ऐसा न हो सके।" बेला ने सांत्वना देते हुए कहा, "सैनिकों की संख्या अधिक होने के कारण तुम कई बार छुप कर उनके साथ चली जाती हो। परंतु इस बार स्थिति भिन्न है, महाराज ने भी तुम पर कड़े प्रतिबंध लगाये हैं।"

"इस बार मैं छुप कर नहीं जाऊँगी।" वसुधा ने दृढ़ भाव से कहा।

"किंतु क्या महाराज तुम्हें आज्ञा देंगे?" उर्वी ने कहा। वह वसुधा की भावनाओं को समझ सकती थी, परंतु वह महाराज के स्वभाव से भी परिचित थी।

"मैं अवश्य जाऊँगी, चाहे वह आज्ञा दें अथवा नहीं।" वसुधा ने उत्तर दिया।

मध्यरात्रि के समय राजभवन में लगे दीपदंड दूर से ही चमक रहे थे। सुरक्षा सैनिक रात्रि के उस प्रहर में भी अपने अपने स्थानों पर चौकन्ने खड़े थे। अश्वों के टापों से होने वाली ध्वनि से वातावरण की शांति को भंग करते हुए कौस्तुभ, शील और संदेशवाहक मुख्य द्वार पर पहुँचे।

मुख्य प्रहरी ने उन्हें ध्यान से देखा, वह संदेश वाहक को पहचानता था। "कृपया कुछ क्षण प्रतीक्षा करें।" उसने विनम्र भाव से कहा और भीतर चला गया।

मार्ग में वह एक स्थान पर जलपान हेतु रुके थे, जहाँ संदेशवाहक ने उन्हें अपना नाम नासन बताया था। अम्राली प्रस्थान करने से पूर्व वह युवराज यशवर्धन का अंगरक्षक था।

"क्या तुम्हें ज्ञात है कि युवराज प्रसान नगर क्यों गए थे?" जलपान करते समय कौस्तुभ ने उससे प्रश्न किया था।

"नहीं।" नासन ने मात्र इतना ही कहा। उसके स्वर से यह स्पष्ट था कि युवराज की मृत्यु का दुःख उसे भी है।

कुछ ही क्षणों में मुख्य प्रहरी लौटा तो उसके साथ न्याय मंत्री कणित भी थे। प्रधानमंत्री की अनुपस्थिति में उनके स्वागत का कार्यभार कणित को ही प्राप्त हुआ था। उन्होंने स्वयं उन्हें अतिथि गृह तक पहुँचाया।

"आपके कक्ष के बाहर सेवक उपस्थित हैं, कोई भी आवश्यकता पड़ने पर आप उन्हें सूचित कर सकते हैं। और यदि आपको मुझसे संपर्क करना है तो आप नासन से कह सकते हैं, यह भी आपके कक्ष के बाहर ही रहेगा।"

"धन्यवाद!" कौस्तुभ ने कक्ष का अवलोकन करते हुए कहा।

कणित शालीनता से मुस्कराया, और वहाँ से चला गया।

"यह कक्ष तो बहुत विशाल है।" एकांत होते ही शील ने कहा, "हमारे पूरे भवन जितना विशाल।" कणित ने पूर्व में ही वहाँ कुछ फल और भोजन रखवा दिए थे, जिन्हें देखते ही वह उसी दिशा में बढ़ गया।

कौस्तुभ शांत था।

"क्या विचार कर रहे हो?" शील ने पूछा।

"न्याय मंत्री ने बताया है कि संभवतः कल संध्या तक ज्ञानशिला से संदेश आ जायेगा।"

"अर्थात अगले दिन प्रातःकाल तक तुम्हें ज्ञात हो जायेगा कि ज्ञानशिला में क्या निर्णय लिया गया है।"

"हाँ।" कौस्तुभ ने अपना सिर हिलाया।

"क्या तुम चिंतित हो?"

"हाँ भी और नहीं भी। पिछले एक वर्ष में मेरे साथ ऐसी घटनाएँ घटी हैं कि कोई भी निर्णय मुझे चिंतित नहीं कर सकता। परंतु उसके पश्चात भी एक अनजाना भय मेरे हृदय को घेरे हुए है।"

"उत्तम! तब तो मैं कहूँगा कि तुम भोजन करो और इस विषय में न सोचने का प्रयत्न करो।" शील ने कहा।

कौस्तुभ ने भी अपनी सहमति प्रकट की। *मनुष्य कितने भी प्रयास कर ले, भविष्य में झाँकना असंभव है।* दोनों ने भोजन किया और अपने अपने पर्यंक पर पहुँचे। थका हुआ होने के कारण उन्हें शीघ्र ही निद्रा आ गयी।

अध्याय 4
ज्ञानशिला

महात्य प्रतिवर्ष ज्ञानशिला आता था, और प्रत्येक बार उस भूमि पर पग रखते ही उसे एक नया अनुभव प्राप्त होता था। उसका जन्म उसी भूमि पर हुआ था, उसने शिक्षा उसी आश्रम में ली थी परंतु उसने कर्मभूमि के लिए उत्तराँचल का चयन किया था।

वह उत्तराँचल का वर्तमान प्रधानमंत्री था।

संध्याकाल के समय आश्रम के निकट उगे वृक्षों को छूकर आती वायु उसके शरीर से भी टकरा रही थी। इस समय वह मुख्य आश्रम से थोड़ी दूर स्थित एक छोटे जीर्ण शीर्ण भवन के सम्मुख खड़ा था। उस भवन को देखकर कोई भी यह बता सकता था कि उसमें वर्षों से किसी मनुष्य के पग नहीं पड़े थे। भिन्न भिन्न प्रकार के कीट पतंगों और पशुओं का वह निवास स्थल किसी समय में उसका भवन हुआ करता था।

उसके पिता ज्ञानशिला आश्रम में लिपिक थे। एक बार बाल्यकाल में एक आचार्य पुत्र ने उसके साथ खेलने से इस कारण मना कर दिया था क्योंकि वह एक लिपिक का पुत्र था। बालपन के उसी क्रोध भरे क्षण में महात्य ने निर्णय ले लिया कि एक दिन वह उन सबसे श्रेष्ठ बनेगा। *ज्ञानशिला ज्ञान की भूमि थी! वहाँ प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त होता था।* कई वर्षों के अथक प्रयास से अंततः उसने वह लक्ष्य भी प्राप्त कर लिया। उसकी गणना ज्ञानशिला के सर्वश्रेष्ठ छात्रों में होती थी।

परंतु वह सब भूतकाल की बातें थीं। उसने अपने मस्तिष्क को वर्तमान में केंद्रित करने का प्रयास किया। भवन के प्रांगण में एक विशाल वटवृक्ष भी उग आया था जिसपर कई पक्षियों ने अपना घोंसला बनाया हुआ था। इस समय उन पक्षियों की ध्वनि वहाँ गूँज रही थी।

"मुझे ज्ञात था तुम यहीं होगे।" उसे एक परिचित स्वर सुनाई दिया। उसने मुड़कर देखा तो पाया कि दक्षिणांचल का प्रधानमंत्री वैलुकी उसी की दिशा में बढ़ रहा था। "अपने भवन के निकट। बीते हुए समय का स्मरण करते हुए।"

मुख पर सदैव विराजमान रहने वाली अपनी मुस्कान के साथ वह महात्य के समीप आकर खड़ा हो गया। उसका केशरहित सिर और मध्यम आकार का कद उसके स्वभाव से पूरी तरह मेल खाता था।

"इस बीते हुए समय से मुझे बहुत कुछ सीखने को मिलता है। दूसरों से सर्वश्रेष्ठ बनने के प्रयत्न में मैंने अपने जीवन के बहुमूल्य वर्ष व्यतीत कर दिए। अब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो समझ आता है कि मैं कितना बड़ा मूर्ख था।" महात्य ने कहा। उसकी माँ की मृत्यु उसके जन्म के समय हो गयी थी और उसके शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व उसके पिता की।

"मूर्ख तो तुम बाल्यकाल से ही हो महात्य। इस तथ्य से तो मैं भी सहमत हूँ। वह व्यक्ति मूर्ख ही होता है जो ज्ञानशिला के प्रधानाचार्य पद को ठुकरा सकता है।"

"मैंने पूर्ण विचार करने के पश्चात ही वह निर्णय लिया था वैलुकी।" महात्य के मुख पर मुस्कान की एक रेखा प्रकट होकर विलुप्त हो गयी, "ज्ञान का अहंकार, ज्ञानी का नाश कर देता है। मुझे अपने ज्ञान पर अहंकार हो गया था, इसीलिए मैंने प्रधानाचार्य जैसे पवित्र पद को ग्रहण करना उचित नहीं समझा। इसके अतिरिक्त मेरे लिए यहाँ कुछ भी शेष नहीं था।"

महात्य ने एक बार पुनः अपने भवन की दिशा में अपनी दृष्टि टिका था। उसी भवन के एक कक्ष में उसने वर्षों पूर्व अपने पिता के मृत शरीर को देखा था।

"यदि तुमने राजनीति का चयन नहीं किया होता तो वर्तमान में हम इस स्थिति में न होते। दो ऐसे राज्यों के प्रतिनिधि जो युद्ध के लिए तत्पर हैं।" वैलुकी ने कहा। वह दक्षिणांचल के पूर्व प्रधानमंत्री का पुत्र था, इसी कारण उसे सरलता से प्रधानमंत्री पद प्राप्त हो गया था। महात्य की भांति उसने भी ज्ञानशिला में ही शिक्षा ग्रहण की थी और बाल्यकाल में दोनों के मध्य प्रगाढ़ मित्रता थी। परंतु समय व्यतीत होने के साथ सब कुछ धूमिल हो गया।

"युद्ध! युद्ध की बातें तुम न करो तो ही उचित है वैलुकी। युद्ध के नाम पर शतबाहु ने छल किया है।" महात्य ने वैलुकी की ओर देखते हुए कहा।

"तुमने तो मुझे अपना शत्रु ही बना लिया। कम से कम ज्ञान की इस पवित्र भूमि का तो मान रखा होता।" वैलुकी मुस्कराया।

"तुम मेरी बात को समझते हुए भी न समझने का दिखावा कर रहे हो। क्या तुम्हें नहीं ज्ञात था कि शतबाहु क्या योजना बना रहा है?"

"पूर्णतः सत्य अनुमान लगाया है तुमने। मुझे नहीं ज्ञात कि शतबाहु कब क्या करता है। वह अपनी अधिकांश योजनाएँ स्वयं ही बनाता है जिनके विषय में किसी को ज्ञात नहीं होता।"

"और एक प्रधानमंत्री होने के कारण तुम क्या करते हो?"

"प्रत्येक माह अपना वेतन लेता हूँ।" वैलुकी ने सरलता से कहा।

महात्य ने घूरकर उसे देखा।

"सत्य कह रहा हूँ।" वैलुकी ने हँसते हुए कहा, "अब अपने यह नेत्र मुझपर से हटाओ। अन्यथा अपनी क्रोधाग्नि से मुझे भस्म कर दोगे।"

महात्य ने एक दीर्घ श्वास ली। वह वैलुकी के स्वभाव से भलीभांति परिचित था। उसके मस्तिष्क में क्या चल रहा था, यह उसके मुख पर दिख रहे भावों से जानना अत्यंत कठिन था। वर्तमान में उसकी चिंता का विषय कुछ और था। "मैं कल होनी वाली सभा के विषय में चिंतित हूँ।" उसने कुछ क्षणों पश्चात वैलुकी से कहा।

"जहाँ उस सव्यसाची युवक के भविष्य का निर्धारण होगा?" वैलुकी प्रथम बार तनिक गंभीर हुआ।

"हाँ। उसने जो किया वह महाराज कीर्तिवर्धन के आदेश पर किया, परंतु सभा में निर्णय कौस्तुभ के भविष्य का होगा।"

"तुम्हारा क्या मत है? उस युवक का कोई दोष नहीं?" वैलुकी ने प्रश्न किया।

"वह बालक है।"

"उसने छल से दक्षिणांचल के जलपति का वध किया। इसके पश्चात भी तुम कहते हो कि वह एक बालक है।" वैलुकी ने व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ कहा।

"किसने छल किया, किसने नहीं; यदि हम इस विषय में चर्चा न करें तो ही उचित रहेगा।"

वैलुकी ने धीरे से सहमति में अपना सिर हिलाया।

कुछ क्षणों पश्चात दोनों अतिथि गृह की दिशा में बढ़ रहे थे।

ज्ञानशिला के प्रधानाचार्य का कक्ष महर्षि भूदेव की प्रतिमा के निकट था। वह विशाल प्रतिमा ज्ञानशिला के स्थापना के समय से ही वहाँ थी और किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि वह वहाँ किस प्रकार पहुँची थी अथवा किसने उसका निर्माण किया था।

प्रधानाचार्य वलक्ष के कक्ष की ओर बढ़ रहे महर्षि अम्बं ने कुछ क्षण रुक कर ध्यान से उस प्रतिमा को देखा। उसके विषय में न जाने कितनी कथाएँ प्रचलित थीं। कइयों का मानना था कि वह प्रतिमा स्वयं महर्षि भूदेव का प्रतिरूप थी। अम्बं उन्हीं भूदेव के भ्राता द्वारा स्थापित आश्रम के वर्तमान प्रमुख थे।

अम्बं ने उस प्रतिमा को प्रणाम किया और पुनः प्रधानाचार्य के कक्ष की दिशा में बढ़ गया।

प्रधानाचार्य वलक्ष संध्या समय में भी अपने कार्यालय में उपस्थित थे। वार्षिक संगोष्ठी में चारों आश्रमों और दोनों राज्यों से वर्ष भर के अभिलेख आते थे जिन्हें ज्ञानशिला के संग्रहालय में रखा जाता था। इस समय भी वह दिन भर एकत्र किये हुए उन्हीं अभिलेखों का आकलन कर रहे थे।

महर्षि अम्बं ने द्वार पर खड़े होकर ही प्रधानाचार्य को प्रणाम किया।

वलक्ष ने अपनी दृष्टि द्वार की दिशा में घुमाई। घने केश और दाढ़ी के मध्य मात्र उसकी दो आँखें ही दिख रही थीं जो कक्ष में लगे दीपदंडों के प्रकाश में चमक रही थीं। “प्रणाम महर्षि! कहिये ऐसी कौन सी बात है कि आपको स्वयं यहाँ आना पड़ा।”

“आपको तो सब ज्ञात है।” अम्बं ने शांत स्वर में कहा, “मैं आपका सम्मान करता हूँ इसी कारण मैंने आपके निर्णय का विरोध नहीं किया। परंतु जहाँ तक मुझे ज्ञात है, जो सत्य है उसे अभिलेखित करना आपका दायित्व है।”

वलक्ष ने अभिलेखों को धागे से बाँधा और उन्हें एक किनारे रख दिया। “आपने मेरे निर्णय का सम्मान किया, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।” उसने कहा, “परंतु आप मेरा विश्वास करिए कि इसके पीछे एक विशेष कारण था।”

“क्या आपको लगता है कि कौस्तुभ ने जिसे देखा वह एकश्रृंगी नहीं अपितु कुछ और था? क्या वह असत्य कह रहा था?”

“किसी तथ्य की सत्यता जाँचना मेरा कार्य नहीं।” वलक्ष ने कहा, “मैंने इस तथ्य को सामान्य अभिलेखों में लिखने की आज्ञा मात्र इसलिए नहीं दी क्योंकि यह आदिपशुओं से संबंधित था।”

“सामान्य अभिलेख?” अम्बं ने प्रश्नवाचक दृष्टि से वलक्ष की ओर देखा, “क्या लिखित अभिलेखों की भी श्रेणियाँ हैं?” अम्बं का स्वर व्यंग्यात्मक था।

“हाँ!” वलक्ष ने मुस्कराते हुए कहा, मानो उसने अम्बं के व्यंग्य को न समझा हो, “और यह आवश्यक भी है। ज्ञानशिला के अभिलेख सामान्यतः सभी के लिए रहते हैं। यह नियम सर्वजन हित के लिए बनाये गए हैं परंतु इससे लोगों का अहित भी हो सकता है। लोभी और महत्वाकांक्षी मनुष्य ज्ञान का उपयोग मात्र विनाश के लिए करता है।”

अम्बं को समझ नहीं आया कि वह क्या प्रतिउत्तर दे। इस क्षण प्रधानाचार्य वलक्ष की बातें उसे अत्यंत रहस्यमयी प्रतीत हो रही थीं।

“और आपको जानकर यह आश्चर्य होगा कि यह नियम मैंने अथवा किसी अन्य प्रधानाचार्य ने नहीं, अपितु स्वयं ज्ञानशिला के संस्थापक महर्षि भूदेव ने बनाये थे।” वलक्ष ने कहना जारी रखा।

“मुझे शंका है कि हम दोनों एक ही विषय पर बातें कर रहे हैं।” अम्बं ने कहा, “एक बालक के एक आदिपशु देखने मात्र से क्या विनाश संभव है?”

“दोनों में गहरा सम्बन्ध है महर्षि।” वलक्ष मुस्कराया। “भूदेव आदिपशुओं के अस्तित्व को छिपा कर रखना चाहते थे। इसी कारण उनके निर्देश थे कि आदिपशुओं से संबंधित तथ्य छिपा कर रखे जाएँ।”

“परंतु क्यों?”

“क्योंकि आदिपशुओं में विशेष शक्तियाँ होती हैं। वह शक्तियाँ सृजनात्मक भी हो सकती हैं और विनाशात्मक भी। इसीलिए भूदेव उनके अस्तित्व को किंवदंती बना कर रखना चाहते थे।”

“परंतु हमें तो यही ज्ञात था कि आदिपशुओं की कथाएँ मात्र किंवदंती हैं।” अम्बं ने अपनी आँखें चौड़ी करते हुए कहा।

“महर्षि! आपने स्वयं एकश्रृंगी के पर्वतों पर उस आदिपशु को देखा था, क्या आप भी यही समझते हैं कि वह मात्र किंवदंती हैं?”

“मेरा तात्पर्य उनकी विनाशात्मक शक्तियों से था।” अम्बं ने उस दिन का स्मरण करते हुए कहा जब उन्होंने उस आदिपशु को देखा था, “एकश्रृंगी तो अत्यंत सौम्य स्वभाव के दिखाई देते हैं।”

“आप किसी वस्तु को किस रूप में देखते हैं, यह आपके स्वभाव पर निर्भर करता है। यदि एकद्वीप वासी यह समझते हैं कि आदिपशुओं की कथाएँ मात्र किंवदंती है तो इसमें उनका ही हित है।”

अम्बं ने कुछ क्षणों तक अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से प्रधानाचार्य वलक्ष को देखा। वह प्रतिवर्ष ज्ञानशिला आता था और वलक्ष से भेंट करता था, परंतु इस बार कुछ तो भिन्न था। *वलक्ष का व्यवहार सामान्य नहीं था।*

“आपकी गूढ़ बातों से प्रतीत हो रहा है कि स्थितियाँ सामान्य नहीं हैं। क्या एकद्वीप पर कोई संकट आने वाला है?” अम्बं ने प्रश्न किया।

वलक्ष ने सहमति में अपना सिर हिलाया, “हाँ! संकट अवश्य आने वाला है परंतु उसे टाला जा सकता है। और यदि हम विफल रहे तो उस संकट का केंद्र मेघपुरम अथवा मरुभूमि बन सकता है। इस विषय में मैं आपसे और महर्षि वह्निमित्र से कल चर्चा करूँगा।” उसने एक दीर्घ श्वास ली, “अब आप विश्राम करें। कल चर्चा से पूर्व आपको एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर निर्णय लेना है, अपने शिष्य कौस्तुभ के भविष्य के सम्बन्ध में।”

वलक्ष ने पुनः अपना ध्यान अभिलेखों की ओर केन्द्रित कर दिया। अम्बं को ज्ञात था कि इस क्षण उन्हें कुछ भी अतिरिक्त नहीं पता चलने वाला था। उन्हें एक दिन की प्रतीक्षा करनी ही थी। सहसा ज्ञान की वह भूमि उन्हें रहस्यों की भूमि प्रतीत होने लगी।

भगवान एकेश्वर कृपा करें! उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की।

प्रातःकाल दैनिक प्रार्थना के पश्चात वह सभा आरंभ हुई जहाँ कौस्तुभ के भविष्य का निर्णय लिया जाने वाला था। प्रायः संगोष्ठी के अगले दिन ही चारों कुल प्रमुख और दोनों प्रधानमंत्री ज्ञानशिला से प्रस्थान कर जाते थे, परंतु इस बार वह सभी उस सभा के लिए वहाँ रुके थे।

"आदरणीय जनों।" वलक्ष ने कहना आरंभ किया, "आप सभी को ज्ञात है कि हम यहाँ किस कारण से एकत्र हुए हैं। नियमों के अनुसार मंत्र विद्या का प्रयोग मात्र आश्रमों की परिधि के भीतर ही किया जा सकता है। परंतु मेघपुरम में स्थित नभ कुल संप्रदाय के आश्रम में शिक्षा प्राप्त कर रहे कौस्तुभ ने इसका उल्लंघन किया है। निर्णय से पूर्व मैं आप सभी का मत जानना चाहता हूँ।"

कुछ क्षणों तक सभा में शांति छाई रही। वलक्ष ने बिना किसी भूमिका के मुख्य समस्या उनके समक्ष रख दी थी। वह शीघ्र ही इस विषय पर निर्णय लेना चाहता था।

"कौस्तुभ ने मात्र मंत्र विद्या का ही प्रयोग नहीं किया है," वैलुकी ने शांति को भंग करते हुए कहना आरंभ किया, "अपितु उस विद्या का प्रयोग कर दक्षिणांचल के जलपति वारिमित्र और कई सैनिकों का वध भी किया है। मृत्युदंड भी उसके लिए कम है।"

"सर्वप्रथम, उसने यह कार्य महाराज कीर्तिवर्धन के आदेशस्वरुप किया है और महाराज स्वयं इस तथ्य को स्वीकार कर रहे हैं।" महात्य ने एक क्षण के लिए वैलुकी को देखा और पुनः अपनी दृष्टि वलक्ष की ओर घुमा दी, "और द्वितीय तथ्य, वारिमित्र और अन्य सैनिकों की मृत्यु युद्धक्षेत्र में हुई है। उसे वध कहना पूर्णतः अनुचित है। युद्ध में शत्रुओं का वध करने पर दंड नहीं दिया जाता।"

"परंतु क्या कौस्तुभ उत्तराँचल की सेना का भाग था?" वलक्ष ने तीव्र स्वर में प्रश्न किया।

"युद्ध करने का आदेश उसे महाराज ने दिया था जिसे उसने स्वीकार किया था। इस प्रकार जिस समय उसके द्वारा वारिमित्र एवं अन्य की मृत्यु हुई वह उत्तराँचल की सेना का भाग था।"

वलक्ष ने धीरे से सहमति में अपना सिर हिलाया। वैलुकी अपने स्थान पर कसमसाया।

"परंतु उसने युद्ध में मंत्र विद्या का प्रयोग किया है, जो कि छल है।" वैलुकी ने कहा।

"एक ऐसा युद्ध जिसकी नींव ही छल से रखी गयी थी।" महात्य ने शांत स्वर में कहा।

"आप दोनों कृपया शांत हो जाएँ।" वलक्ष ने कहा।

"मैंने सुना है कि वह बालक एक सव्यसाची है।" अम्बुद्वीप से आये जल कुल संप्रदाय के प्रमुख महर्षि शंबर ने कहा। उन्होंने श्वेत वर्ण के वस्त्र पहने हुए थे जो उनके संप्रदाय का प्रतीक रंग था।

"यह सत्य है।" महर्षि अम्बं ने कहा, "वह एक अत्यंत प्रतिभाशाली युवक है।"

वलक्ष ने अपनी दृष्टि महर्षि प्रभंजन की दिशा में घुमाई। वह वायु कुल संप्रदाय के प्रमुख थे और आयु में उन सबसे वृद्ध, "महर्षि प्रभंजन, आपका क्या मत है?"

"हम उस बालक को मृत्युदंड नहीं दे सकते।" उन्होंने कहा। उनके मुख की झुर्रियों ने उनकी आँखों को आधा ढँक लिया था। "सव्यसाची होना सरल नहीं। इस विद्या को साधने के लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है।"

"किसी भी स्थान पर इस नियम का उल्लंघन करने पर क्या दंड दिया जाए यह नहीं लिखा गया है," प्रधानाचार्य ने पुनः कहना आरंभ किया, "लेकिन अभिलेखों के अनुसार किसी को मृत्युदंड नहीं दिया गया है। ऐसी दशा में एकद्वीप से निष्कासन ही अब तक का सबसे बड़ा दंड है, जब अग्नि कुल के एक शिष्य ने मंत्र विद्या से किसी का वध कर दिया था।"

"मेरे विचार से उसे भी यही दंड देना उचित रहेगा।" अग्नि कुल प्रमुख महर्षि वह्निमित्र ने कहा। वह इतनी देर से शांत अपने विचारों में डूबे हुए थे। पिछले वर्ष जब शिखी ने अपनी शक्तियों का प्रयोग कर के मायावियों का वध किया था तब भी उन्होंने वह घटना किसी को नहीं बताई थी।

"हाँ! एकद्वीप से निष्कासन ही उस बालक के लिए उचित दंड होगा।" वैलुकी ने भी समर्थन किया।

सभा में पुनः शांति छा गयी। वलक्ष महर्षि अम्बं से संबोधित हुए. "महर्षि! कौस्तुभ आपका शिष्य है। जिस विद्या का प्रयोग करने के कारण उसके दंड का निर्धारण किया जा रहा उसे वह विद्या स्वयं आपने सिखाई है। मैं चाहता हूँ कि उस बालक के लिए क्या उपर्युक्त रहेगा इसका निर्णय आप करें।"

वैलुकी के अतिरिक्त सभा में सभी ने सहमति में अपना सिर हिलाया। अम्बं द्वारा दिया गया निर्णय सबको मान्य था। वैलुकी कहना चाहता था कि महर्षि अम्बं अपने छात्र के साथ पक्षपात कर सकते हैं, परंतु उसे ज्ञात था कि इस प्रकार सभा में दोषारोपण करना अनुचित होगा।

"यह सत्य है कि मैंने ही कौस्तुभ को मंत्र विद्या सिखाई है," अम्बं ने अपने उत्तरीय को व्यवस्थित किया और गंभीर स्वर में कहना आरंभ किया, "परंतु यह भी सत्य है कि मैंने उसे मात्र मध्यम स्तर की ही विद्या सिखाई है। यहाँ उपस्थित सभी गणमान्यों को ज्ञात होगा कि मध्यम स्तर की विद्या अधिक मारक नहीं होती। इतनी मारक तो कदापि नहीं कि उसकी सहायता से एक सैन्य टुकड़ी का सामना किया जा सके।

"कौस्तुभ ने एक साधारण सी युक्ति का प्रयोग करते हुए उसे इतना मारक बना दिया था। इसके पश्चात जैसा कि महात्य ने बताया, स्वयं महाराज कीर्तिवर्धन इस घटना का दायित्व ले रहे..."

"परंतु उस अस्त्र का संधान करने वाला कौस्तुभ ही था न? क्या हम उसे कोई दंड नहीं देंगे?" वह्निमित्र ने अम्बं की बातों के मध्य हस्तक्षेप करते हुए कहा।

"नहीं, मैंने यह नहीं कहा।" अम्बं ने शांत स्वर में कहा, "उसे दंड अवश्य मिलेगा। परिस्थितियाँ कैसी भी हों, मनुष्य के पास सदैव चयन करने का विकल्प रहता है। मैंने स्वयं उसे यह विद्या सिखाई थी और अब मैं इस सभा की ओर से यह निर्णय लेता हूँ कि मेघपुरम में स्थित नभ कुल संप्रदाय आश्रम में उसे कोई शिक्षा प्राप्त नहीं होगी। मेघपुरम आश्रम में कौस्तुभ का प्रवेश सदैव के लिए निषेध रहेगा।"

अध्याय 5
दलपति

“मेरा निर्णय दृढ़ है।” वसुधा ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा। “मैं राजाश्री अरिदमन के साथ अवश्य जाऊँगी।”

कीर्तिवर्धन ने अपनी पुत्री को देखा और तत्क्षण निर्णय नहीं कर सका कि वह क्या उत्तर दे। *आखिर क्यों वह इतना हठ कर रही है।* वह अपने पुत्र को उसके हठ के कारण ही खो चुका था। और अब उसकी पुत्री!

“वहाँ तुम्हारा कोई कार्य नहीं। अरिदमन यह सुनिश्चित करेंगे कि हम शीघ्र ही विजयी हों।” कुछ क्षणों पश्चात उसने कहा। शांत परंतु दृढ़ स्वर में।

“आप मेरे जीवन का प्रत्येक निर्णय नहीं ले सकते।” वसुधा ने कहा। कीर्तिवर्धन को ज्ञात था कि वसुधा किस ओर संकेत कर रही है।

“यह कोई साधारण युद्ध नहीं है। तुम्हारी क्रीड़ाओं के दिन अब समाप्त हो चुके हैं। तुम्हारा स्थान रणक्षेत्र में नहीं है।”

“तो क्या मेरा स्थान मात्र इस राजभवन में है?” वसुधा ने कहा। “भैया के हत्यारों को मैं स्वयं दंड…”

“तो क्या मैं ऐसा नहीं चाहता?” कीर्तिवर्धन ऊँचे स्वर में बोला। “क्या तुम्हें ज्ञात है कि दिन के आठों प्रहर मैं यह सोचता हूँ कि काश मैंने यश को हठ करने से रोक लिया होता। काश मैंने उसे वहाँ जाने से रोक लिया होता।”

कीर्तिवर्धन ने अपना सिर झुका लिया। इस बार उसने शांत स्वर में कहा, “यदि तुम मेरे स्थान पर होती तो उचित प्रकार से समझ पाती। पहले कमलिका और अब यश। मैं तुम्हारा जीवन संकट में नहीं डालना चाहता।”

वसुधा का हृदय कुछ द्रवित हुआ, परंतु उसका स्वर नहीं। “क्या आपको ऐसा प्रतीत होता है कि इस भवन की विशाल प्राचीरें मृत्यु को यहाँ प्रवेश करने से रोक सकती हैं?” उसने पूर्ववत रुखे स्वर में कहा, “मैं अवश्य जाऊँगी।”

वसुधा ने किसी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा नहीं की और कक्ष से चली गयी।

कीर्तिवर्धन *धम्म* से अपने पर्यंक पर बैठ गया। उसकी दृष्टि स्वयंमेव ही कक्ष में लगी महारानी कमलिका के विशाल चित्र की ओर चली गयी। कौन्तल्य के नगर से आये एक चित्रकार ने वह चित्र महारानी कमलिका की मृत्यु से मात्र एक वर्ष पूर्व बनाया था। वह चित्र इतना वास्तविक था कि उसने चित्रकार को भारी पारितोषिक के अतिरिक्त भी सौ स्वर्ण मुद्राएँ दी थीं।

कितनी समानता है तुममें और वसुधा में। अपनी कल्पना में वह कमलिका से बातें करने लगा। *यदि आज तुम जीवित होती तो उसे देख अत्यंत प्रसन्न होती।*

परंतु वह आज जीवित नहीं थी। और कीर्तिवर्धन को ज्ञात था कि इसका कारण भी कहीं न कहीं उसका हठ ही था।

“मैं आखेट के लिए अवश्य जाऊँगी।” उसे वर्षों पूर्व कमलिका द्वारा कहा गया वाक्य आज भी स्मरण था। उस दिन वह उसे आखेट पर जाने से नहीं रोक सका था, जो बाद में उसकी मृत्यु का अप्रत्यक्ष कारण बना था।

उसने न जाने कितने प्रयास किये कि वह वसुधा को अपनी माँ जैसा न बनने दे, न जाने कितने प्रतिबंध लगाये, परंतु सब निरर्थक।

इतने वर्षों पश्चात आज भी उसकी स्थिति वैसी ही थी।

वह वसुधा को रोकने में असफल रहा था।

भगवान एकेश्वर कृपा करें, उसने अपनी आँखें बंद कीं और अपनी पुत्री के रक्षा की प्रार्थना की।

इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं कर सकता था।

कौस्तुभ और शील मध्यान्ह के समय हाट में टहल रहे थे। उन्होंने रात्रि के समय ही उस विशाल हाट को देखा था परंतु उनके अनुमान के ठीक विपरीत हाट में अधिक चहल पहल नहीं थी। इसका कारण नासन ने बताया जो उनके साथ था।

“युवराज की मृत्यु से सभी दुखी हैं। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में वह यहाँ बहुत कम आते थे, परंतु इसके पश्चात भी वह प्रजा में प्रिय थे। यदि इनकी आजीविका का प्रश्न नहीं होता तो संभवतः यह हाट पूर्णतः बंद ही रहता।”

यशवर्धन का पूर्व अंगरक्षक होने के कारण नासन उसके विषय में अधिक जानता था।

“वैसे अब तुम किसके अंगरक्षक हो?” शील ने नासन से पूछा।

“किसी का नहीं।” नासन ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, “प्रधानमंत्री महात्य मुझे जो आदेश देते हैं, मैं उसका पालन करता हूँ।”

कौस्तुभ ने महात्य के विषय में प्रश्न किया जो संभवतः किसी भी क्षण वहाँ पहुँचने वाले थे, ज्ञानशिला के निर्णय के साथ।

“वह एक गंभीर और दूरदर्शी व्यक्ति हैं।” नासन ने बताया, “प्रजा के हित को सर्वोपरि रखने वाले। मैं भाग्यशाली हूँ कि युवराज यशवर्धन के पश्चात मुझे प्रधानमंत्री की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ।”

वह तीनों एक शिल्पकार की दुकान पर पहुँचे जहाँ शील आश्चर्यचकित होकर शिल्पकारों की अनूठी प्रतिभा का दर्शन कर रहा था। उसने भगवान एकेश्वर की एक प्रतिमा को उठाया जिसे मात्र एक पत्थर से बनाया गया था।

“हम मेघपुरम में प्रायः मिट्टी की मूर्तियाँ बनाते हैं, परंतु मात्र एक पत्थर से बनी यह मूर्ति अप्रतिम है।” शील ने कहा।

उस मूर्ति का मूल्य अधिक होने के कारण वह उस मूर्ति को क्रय नहीं कर सका और वह आगे बढ़ गए।

नासन ने बताया कि राजधानी के निकट होने के कारण हाट में दूर दूर से कलाकार आते थे। कला को बढ़ावा देने के लिए राज्य की ओर से उनसे कम कर भी लिए जाते थे।

जब वह तीनों पुनः राजभवन लौटे, तब सूर्य भी अपनी दैनिक अवधि पूर्ण करने वाला था। आकाश में उसकी कुछ लालिमा अभी भी शेष थी।

राजभवन के प्रांगण में निर्मित युद्धशाला में अरिदमन कुछ सैनिकों को शस्त्र अभ्यास करा रहे थे। कौस्तुभ ने देखा, यह वह सैनिक नहीं थे जो उनके साथ वहाँ आये थे। यह सभी राजभवन के प्रहरी सैनिक थे जिन्हें शस्त्र अभ्यास का अधिक अनुभव नहीं था। और जिन्हें अरिदमन प्रसान नगर ले जाने के लिए प्रशिक्षित कर रहे थे।

कई सैनिक तलवार द्वारा द्वंद्व का अभ्यास कर रहे थे जिसकी सम्मिलित ध्वनि वातावरण में गूँज रही थी। कुछ दूरी पर अरिदमन स्वयं कुछ सैनिकों को धनुष द्वारा लक्ष्य भेदना सिखा रहे थे। कौस्तुभ भी उसी दिशा में बढ़ गया।

उसने दूर रखे लक्ष्य को ध्यान से देखा। उसे भेदने में कई कठिनाइयाँ थीं; प्रथम वहाँ वायु अनियमित रुप से बह रही थी, द्वितीय वातावरण में अँधेरा घिरने लगा था।

“क्या मैं एक बार प्रयास करूँ?” कौस्तुभ ने अरिदमन से पूछा। वह तनिक झुंझलाए हुए थे क्योंकि पिछले कुछ समय में किसी सैनिक का बाण उस लक्ष्य को नहीं भेद पाया था।

अरिदमन ने कौस्तुभ को ध्यानपूर्वक देखा, धीरे से अपना सिर हिलाया और एक सैनिक को संकेत किया। वह सैनिक तत्क्षण उनके समक्ष एक धनुष लेकर पहुँच गया।

कौस्तुभ ने उस धनुष को लिया, कुछ क्षणों तक उसकी प्रत्यंचा देखी और निकट ही रखा हुआ एक बाण उठा लिया।

बाएँ हाथ से धनुष को संतुलित रूप से पकड़ते हुए उसने दाहिने हाथ से प्रत्यंचा को अपने कंधे तक खींचा। जितनी दूरी पर वह लक्ष्य रखा हुआ था वहाँ तक उस बाण को पहुँचाने के लिए अतिरिक्त बल की आवश्यकता थी, उसने अनुमान लगाया। उसने प्रत्यंचा को तीन अंगुल और पीछे खींचा।

उत्तम! स्वतः ही उसे वह दिन स्मरण हो आया जिस दिन वह अम्राली के राजभवन के बाहर खड़ा था। उन्हीं अरिदमन से शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो इस क्षण उसके निकट खड़े थे। उस दिन भी उसे एक लक्ष्य भेदने को कहा गया था...

...और वह असफल रहा था।

उसने अपनी श्वास कुछ क्षणों के लिए रोकी और वायु की दिशा का अनुमान लगाया।

थोड़ा और ऊपर।

उसने धनुष को व्यवस्थित किया और बाण संधान कर दिया।

अरिदमन ध्यानपूर्वक उसे देख रहे थे। वह कौस्तुभ की प्रतिभा से अनभिज्ञ नहीं थे, परंतु अंधकार के कारण वह स्वयं अनिश्चित थे कि क्या उसका बाण लक्ष्य को भेद पायेगा।

कौस्तुभ के धनुष की प्रत्यंचा से छूटा बाण सीधा जाकर लक्ष्य के मध्य में धँस गया।

“अति उत्तम!” अरिदमन ने कौस्तुभ के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा। जिस प्रकार कौस्तुभ ने संधान करते समय धनुष को स्वयं के शरीर का एक अंग बना लिया था, वैसा मात्र उच्च कोटि के धनुर्धर ही कर सकते थे। उन्होंने अभ्यास रोकने और दीपदंड प्रज्वलित करने का आदेश दे दिया।

“क्या इतने अंधकार में तुम्हें दूर रखा वह लक्ष्य उचित रुप से दिखाई पड़ रहा था?” वह अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पाए।

“मुझे मात्र वह लक्ष्य ही दिखाई दे रहा था।” कौस्तुभ ने उत्तर दिया।

अरिदमन के मुख पर एक मुस्कान आ गयी।

राजभवन के गलियारे में बढ़ रही बेला अपने विचारों में डूबी हुई थी। वसुधा के साथ साथ उर्वी ने भी प्रसान नगर जाने का निर्णय ले लिया था। प्रायः वह तीनों जहाँ भी जाती थीं, साथ ही जाती थीं; परंतु युद्धक्षेत्र में जाने की अनुमति उसे कभी नहीं प्राप्त होने वाली थी। वसुधा अपने पिता से हठ कर सकती थी, परंतु उसमें इतना साहस नहीं था।

सहसा उसके पग अपने स्थान पर जड़ हो गए। उसने गवाक्ष से युद्धशाला में देखा जहाँ एक युवक अरिदमन से बातें कर रहा था। दीपदंड के प्रकाश में वह उस युवक को पहचानने में भूल नहीं कर सकती थी।

वह स्तब्ध थी। *यह तो वही युवक है जिसे मैंने एक वर्ष पूर्व सरोवर के निकट देखा था।* उसने पुनः अपने पैरों को गतिमान किया और शीघ्रता से वसुधा के कक्ष की ओर बढ़ गयी।

अगले दिन प्रातः काल कौस्तुभ उस सभा में उपस्थित था जहाँ उसके भविष्य का निर्णय होने वाला था। उसने अपनी दृष्टि घुमाई और उस विशाल कक्ष को देखा जहाँ एक साथ एक ही समय में एक सहस्त्र व्यक्ति खड़े हो सकते थे। परंतु इस क्षण वहाँ मात्र छः लोग ही उपस्थित थे।

प्रधानमंत्री महात्य के साथ ही ज्ञानशिला से एक संदेशवाहक भी आया था जिसका कार्य था यह सुनिश्चित करना कि कौस्तुभ को ज्ञानशिला का निर्णय सुनाया जाये। उनके अतिरिक्त वहाँ महाराज कीर्तिवर्धन, अरिदमन और अरिम भी उपस्थित थे।

कौस्तुभ और संदेशवाहक के अतिरिक्त सभी अपने अपने आसन पर बैठे। कौस्तुभ सिंहासन के समक्ष खड़ा था और संदेशवाहक बगल में।

महात्य ने संदेशवाहक को कुछ संकेत किये तो उसने कहना आरंभ किया।

“उत्तराँचल के प्रजा पालक, महाराज कीर्तिवर्धन को मेरा प्रणाम।” उसने सिंहासन की ओर मुख करके कहा। “पूर्व में आपके द्वारा किये गए आग्रह के अनुसार मैं कौस्तुभ के लिए ज्ञानशिला द्वारा लिए गए निर्णय को आपकी सभा में सुनाने की अनुमति चाहता हूँ।”

“अनुमति है।” अपने सिंहासन पर तन कर बैठे हुए महाराज कीर्तिवर्धन ने कहा।

संदेशवाहक का स्वर सुनकर कौस्तुभ को एक विचित्र अनुभूति हुई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह कोई दोषी है जिसे कुछ ही समय में कोई दंड दिया जाने वाला है।

दंड! हाँ उसे दंड ही तो सुनाया जाने वाला था, कौस्तुभ ने सोचा। उत्तराँचल के महाराज की जीवन रक्षा का दंड।

संदेशवाहक कौस्तुभ की ओर मुड़ा, उसने गोल मुड़ा हुआ एक पत्र निकाला और सीधा कर उसे पढ़ने लगा।

“कौस्तुभ पर यह आरोप है कि उसने मध्यम स्तर की मंत्र विद्या को किसी आश्रम की परिधि से बाहर प्रयोग किया है। भगवान एकेश्वर को साक्षी मानकर ज्ञानशिला यह निर्णय लेती है कि वर्तमान समय से मेघपुरम आश्रम में उसका प्रवेश निषेध है।”

संदेशवाहक ने पत्र से अपनी दृष्टि उठाई, कौस्तुभ को देखा और अंतिम वाक्य कहा, "मेघपुरम में कौस्तुभ को अब किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं होगी। यही उसका दंड है।"

कौस्तुभ कुछ कहने अथवा प्रतिरोध की स्थिति में नहीं था। वह मात्र स्तब्ध था। उसे तनिक भी अंदेशा नहीं था कि ज्ञानशिला से उसके लिए ऐसा निर्णय भी आ सकता है।

एक बार पुनः उसे अपना भविष्य अंधकारमय प्रतीत होने लगा।

"क्या किसी भी दशा में ज्ञानशिला का निर्णय परिवर्तित नहीं किया जा सकता?" कुछ समय पश्चात कीर्तिवर्धन ने अधीरता से प्रश्न किया।

उन्होंने कौस्तुभ को सभा से विदा कर दिया था और उससे कहा था कि वह उससे कुछ समय पश्चात बात करेंगे। संदेशवाहक भी अपना कार्य पूर्ण कर सभा से जा चुका था और संभवतः पुनः ज्ञानशिला लौटने को सज्ज था।

नहीं! किसी भी दशा में नहीं। प्रधानमंत्री महात्य ने मन में सोचा। परंतु उसने प्रत्यक्षतः कहा, "इस विषय में हमें प्रधानाचार्य वलक्ष से बात करनी होगी। कदाचित वह कुछ कर सकें।"

"अवश्य!" अब तक शांत बैठे अरिम ने कहा, "उत्तराँचल के महाराज की बात वह टाल नहीं सकते।"

कीर्तिवर्धन ने सहमति में अपना सिर हिलाया।

"परंतु महाराज, मुझे लगता है हमें इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।" महात्य ने कीर्तिवर्धन को देखते हुए कहा।

"अर्थात?" कीर्तिवर्धन ने अपनी भौंहों को उठाते हुए पूछा।

"ज्ञानशिला का निर्णय इतना कठोर भी नहीं..." परंतु इससे पूर्व कि महात्य अपनी बात पूर्ण कर पाता, कीर्तिवर्धन नहीं में अपना सिर हिलाने लगा।

"मैंने उस बालक से कहा था, मैं उसका कोई अहित नहीं होने दूँगा।" कीर्तिवर्धन ने कहा।

"इस निर्णय से वास्तव में उसका कोई अहित नहीं होगा।" महात्य ने कहा।

"प्रधानमंत्री सत्य कह रहे हैं महाराज," अरिम ने पुनः कहा। "कौस्तुभ यदि मेघपुरम आश्रम में शिक्षा नहीं ले सकता तो उसके पास अन्य विकल्प भी तो हैं। मैंने सुना है वह अत्यंत प्रतिभाशाली है, उसे किसी भी गुरुकुल, किसी भी आश्रम में सरलता से प्रवेश मिल जायेगा। आपके बहनोई तामपुरी स्थित वायु कुल संप्रदाय आश्रम के आचार्य थे, संभवतः आश्रम के अन्य आचार्य इस संदर्भ में कौस्तुभ की सहायता कर सकें।"

कीर्तिवर्धन से कोई उत्तर देते नहीं बना।

"मुझे लगता है कि इस विषय में हमें सर्वप्रथम कौस्तुभ से पूछना चाहिए।" अरिदमन ने कहा। "उसे अपनी प्रतिक्रिया देने का भी अवसर नहीं प्राप्त हुआ है।"

"मुझे ज्ञात है कि उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी। वह अवश्य दुखी होगा, संभवतः क्रोधित भी। उसकी दृष्टि में मात्र यही प्रश्न होगा कि क्यों मैं अपना वचन पूरा नहीं कर सका।"

"मेरे पास एक प्रस्ताव है जिसमें कौस्तुभ और आपका, दोनों का हित है।" अरिदमन ने कहा।

"कहिये।"

"दो दिनों में हम प्रसान नगर के लिए प्रस्थान करने वाले हैं। मैं कौस्तुभ को अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।"

"इसमें हमारा हित है?" कीर्तिवर्धन ने अपने स्वर को सम्मानजनक बनाये रखते हुए कहा, "क्षमा करिए, परंतु मुझे समझ नहीं आ रहा कि इस प्रस्ताव में किस प्रकार कौस्तुभ का भी हित है। क्या वह एक सामान्य सैनिक की भांति युद्ध करना चाहेगा?" कीर्तिवर्धन कौस्तुभ को भविष्य के संबंधी के रूप में देख रहा था, इसी कारण वह नहीं चाहता था कि कौस्तुभ किसी सामान्य सैनिक की भांति युद्ध करे।

"नहीं। मैं उसे सामान्य सैनिक की भांति युद्ध करने को नहीं कहूँगा। मैंने सुना है कि उसने युद्ध शिक्षा का प्रशिक्षण लेने के लिए मेघपुरम में प्रवेश लिया था। मैं उसे युद्ध में भाग लेने का अवसर दूँगा। सामान्य सैनिक के रूप में नहीं, एक दलपति के रूप में। उसकी शिक्षा, उसकी प्रतिभा का आकलन करने के पश्चात मुझे विश्वास है कि वह इस दायित्व को निभा लेगा।"

"हूँ।" कीर्तिवर्धन ने कुछ क्षणों तक विचार किया, "उचित है। परंतु यह कार्य भी आपको ही करना है। आप स्वयं उचित प्रकार से उसे इस प्रस्ताव के विषय में समझा पायेंगे।"

अरिदमन ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी।

कौस्तुभ शील के साथ अपने कक्ष में बैठा था। कुछ ही क्षणों पूर्व उसने शील को ज्ञानशिला के निर्णय के विषय में बताया था।

"यह तो अनुचित है।" शील ने कहा, "यह कैसा निर्णय है जिसमें दोनों पक्षों को अपना मत रखने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। वैसे भी तुमने यह कार्य महाराज के आग्रह पर किया था।"

कौस्तुभ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसका मस्तिष्क सभी शेष विकल्पों का अवलोकन कर रहा था। *क्या उसे किसी अन्य गुरुकुल में शिक्षा हेतु प्रवेश लेना चाहिए?* उसने स्वयं से ही प्रश्न किया। *नहीं!* उत्तर भी उसे स्वयं ही मिला। उसमें अब इतना साहस नहीं था कि वह किसी अन्य गुरुकुल में जाकर शिक्षा हेतु आग्रह करे। उसे वह दिन स्मरण हो आया जब उसने निर्णय लिया था कि वह सेना में कोई विशेष पद प्राप्त करेगा। उसके बाबा, उसके मित्र सुदास, सभी ने उसे समझाया था कि यह सरल नहीं है। परंतु अंततः उसने मेघपुरम आश्रम में शिक्षा के लिए प्रवेश प्राप्त कर लिया था।

अब उसके लिए वह मार्ग भी बंद हो चुका था।

अंततः वह पुनः उसी स्थान पर खड़ा था जहाँ से उसने अपनी यात्रा आरंभ की थी। अब उसके पास पुनः ग्राम लौटने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं था।

प्रत्येक मनुष्य की एक नियति होती है, उसके बाबा ने उससे कहा था, *और तुम्हें भी वह स्वीकार करना चाहिए।* संभवतः वह सत्य ही कह रहे थे, कौस्तुभ ने सोचा। उसने अपना सिर झुका लिया और एक दीर्घ श्वास ली।

उसी क्षण अरिदमन ने उनके कक्ष में प्रवेश किया। कौस्तुभ ने बुझे मन से उनका अभिवादन किया। वह कीर्तिवर्धन के आने की अपेक्षा कर रहा था।

"आयुष्मान भव!" अरिदमन ने अपने दोनों हाथों को उठाते हुए कहा और निकट ही रखे आसन पर बैठ गए।

अगले कुछ क्षणों तक उनके मध्य शांति छाई रही। स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि अरिदमन कुछ कहने का प्रयास कर रहे थे।

“ज्ञानशिला के निर्णय पर तुम्हारा क्या मत है?” अंततः उन्होंने कौस्तुभ से पूछा।

“क्या मेरे मत से उस निर्णय पर कोई प्रभाव पड़ेगा?” कौस्तुभ ने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा।

“तुम उचित रुप से विचार नहीं कर पा रहे हो।” अरिदमन का स्वर शांत था, “तुम नियमों की आवश्यकता को नहीं समझ रहे हो। यदि नियम और प्रतिबंध नहीं रहते तो किसी अपराधी पर अंकुश लगाना असंभव रहता। एकद्वीप का प्रत्येक मनुष्य उन विद्याओं का प्रयोग स्वयं के स्वार्थ के लिए करता। तुम्हें दंड महाराज द्वारा नहीं उनके द्वारा दिया गया है जिन्होंने तुम्हें मंत्र विद्या की शिक्षा दी है।”

कौस्तुभ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

अरिदमन ने पुनः कहा, “हालाँकि महाराज इस विषय में विचार कर रहे हैं कि ज्ञानशिला के प्रधानाचार्य वलक्ष से इस विषय में बात करें। परंतु उससे पूर्व मैं तुमसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ।”

“अवश्य!” कौस्तुभ ने कहा, “पूछिए।”

“मेघपुरम जाने का तुम्हारा क्या उद्देश्य था?”

“शिक्षा।”

“और उसका प्रयोजन?”

“सेना में भर्ती होना।” कौस्तुभ ने कहा।

“हूँ।” अरिदमन ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, “दो दिनों पश्चात सेना युद्ध के लिए प्रस्थान करेगी। क्या तुम उसका भाग बनना चाहते हो?” वह प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहे कौस्तुभ के मुख के भावों को देख रहा था, “...दलपति बनकर।”

“दलपति!” कौस्तुभ ने आश्चर्य से कहा।”

“हाँ! धनुर्धरों के एक दल का दलपति।” अरिदमन ने कुछ क्षण रुककर कहा, “अब निर्णय तुम्हें लेना है।”

यही तो उसका प्रयोजन था, कौस्तुभ ने सोचा। सैन्य बल में प्रवेश लेने के लिए ही तो उसने अपने ग्राम से प्रस्थान किया था, और अब अवसर उसके समक्ष था।

“मुझे स्वीकार है,” उसने और अधिक विलंब न करते हुए कहा।

अध्याय 6
आक्रमणकारी

कनिका इस समय जिस ग्राम में थी वह सोमपर्वत की घाटियों के निकट बसा हुआ था। महल से छिपकर निकलने के पश्चात सर्वप्रथम उसने निश्चय किया था कि वह रत्नगढ़ राजभवन के निकट ग्रामों में ही रहेगी, परंतु यह कार्य कठिन था। रत्नगढ़ अब शत्रु राज्य का अंग था और शत्रु राज्य में वह प्रत्येक क्षण सावधान नहीं रह सकती थी। मात्र एक क्षण की भी असावधानी उसके जीवन का अंत कर सकती थी।

उत्तराँचल ही एकमात्र ऐसा स्थान था जहाँ उसे सुरक्षा और सहायता प्राप्त हो सकती थी। परंतु यह भी सरल नहीं था। उत्तराँचल पहुँचने का सबसे छोटा मार्ग नर्मदा पर बने स्वर्ण सेतु से होकर जाता था, परंतु सेतु के नष्ट हो जाने की दशा में उसके लिए यह विकल्प शेष नहीं था। उत्तराँचल की सेना अभी भी सोमपर्वत की घाटियों के निकट रुकी हुई थी और वह उसकी सहायता कर सकते थे। परंतु यह सबसे मूर्खतापूर्ण विकल्प था। दक्षिणांचल के सैनिक और गुप्तचर उस स्थान के निकट भारी संख्या में फैले हुए थे और उसे देखते ही वह उसे सरलता से पहचान लेते। उसे ज्ञात था कि उसे पकड़ने के शतबाहु ने अपने सैनिकों को निर्देश दिए हैं। संभवतः उसके दिखते ही उसे मार देने के निर्देश।

अतः उसके पास मात्र एक ही विकल्प शेष था, पूर्व की दिशा में बढ़ना, जब तक उसे कोई सहायता न प्राप्त हो।

इस क्षण वह ग्राम के छोटे से हाट में कुछ फल क्रय कर रही थी। उसने सावधानीपूर्वक हाट में चारों ओर अपनी दृष्टि घुमाई। प्रातःकाल का समय था, उसे कई ग्रामवासी दिखे जो अपना दैनिक कार्य कर रहे थे। लेकिन उसे ज्ञात था कि उनमें कोई ऐसा भी है जो उसे मारना चाहता है।

उसने शीघ्रता से फल विक्रेता को मुद्राएँ दीं, फल खाए और उस ओर बढ़ गयी जहाँ वह दो दिनों से रुकी हुई थी। वह एक छोटी सी गौशाला थी जिसके स्वामी को उसने बताया था कि वह उत्तराँचल की ओर जा रही थी, परंतु युद्ध के कारण नहीं जा पा रही। गौशाला के स्वामी के पास उसकी बातों पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं था। युद्ध के विषय में सबको ज्ञात था और प्रत्येक व्यक्ति उन समस्याओं से दो चार हो रहा था जो युद्ध के कारण उत्पन्न हो रही थीं। इसके अतिरिक्त कनिका ने उसे कुछ मुद्राएँ भी दीं, जिसके पश्चात उसने एक भी प्रश्न नहीं पूछा।

गौशाला की दुर्गंध में रात्रि व्यतीत करना सुविधाजनक नहीं था, परंतु सुरक्षित अवश्य था। यदि कोई उसे उस ग्राम में ढूँढता तो संभवतः ग्राम के कोने में बनी वह छोटी सी गौशाला वह अंतिम स्थान था जहाँ उसके छुपे होने की कोई कल्पना कर सकता था।

सामान्य वस्त्रों के अतिरिक्त उसने एक बड़ा सा वस्त्र भी ओढ़ा हुआ था जिसके भीतर उसने अपनी तलवार छिपाई हुई थी। मार्ग में भी वह अत्यंत सावधान थी। उसके पास यह ज्ञात करने का कोई साधन नहीं था कि कौन सा व्यक्ति उस ग्राम का मूल निवासी है और कौन नहीं। न जाने किस क्षण किसी ओर से कोई उसपर प्राणघातक आक्रमण कर दे, इसी कारण उसने तलवार की मूठ पर अपना एक हाथ रखा हुआ था।

महल से निकलने के दूसरे दिन ही उसने अपना अश्व एक व्यापारी को विक्रय कर दिया था और एक दूसरे व्यापारी से एक साधारण अश्व ले लिया था। राजसी आभूषण और वस्त्र उसने महल में ही त्याग दिए थे। कुछ दिनों के लिए उसने निकट के ही एक ग्राम में छुपने का निर्णय लिया परंतु शीघ्र ही उसे अंदेशा हुआ कि कोई उसपर दृष्टि रखे हुए है।

चौथे दिन उसका अंदेशा सत्य सिद्ध हो गया जब उसपर किसी ने प्राणघातक आक्रमण किया। उस समय भी उसने अपने लंबे वस्त्र में अपनी तलवार छिपाई हुई थी जिसके कारण वह स्वयं की आत्मरक्षा कर पाई। आक्रमणकारी ने संभवतः उसे शस्त्रहीन समझा होगा, इसी कारण जब कनिका ने अपनी तलवार निकाली तो वह तनिक आश्चर्यचकित रह गया। कनिका ने इसका लाभ लिया और तत्क्षण उसे मार दिया। *द्वंद्व में असावधानी मृत्यु का कारण बनती है और यदि शत्रु एक क्षण के लिए भी असावधान हो तो यही अवसर होता है। ऐसा अवसर जो विजय सुनिश्चित कर सकता है।* प्रबल द्वारा कहे गये यह वाक्य उसकी स्मृति में छपे हुए थे। यद्यपि वह अपने आक्रमणकारी से यह प्रश्न करना चाहती थी कि उसे किसने भेजा है, परंतु उसके पास तनिक भी समय नहीं था। यदि वह उसे मारने में एक क्षण का भी विलंब करती तो अवश्य ही शत्रु की तलवार का ग्रास बन जाती।

ऐसा कौन है जो मुझे मारना चाहेगा? जिस क्षण कनिका के मस्तिष्क में यह प्रश्न आया, उसके अगले ही क्षण उत्तर भी उसे स्वयं ही प्राप्त हो गया। *दक्षिणांचल के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? वह किसी भी मूल्य पर मुझे जीवित नहीं देखना चाहते।*

उस घटना के अगले ही प्रहर कनिका ने वह ग्राम छोड़ दिया।

इस ग्राम में कनिका को आये हुए दो दिन बीत चुके थे और उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई यहाँ भी है जो उसपर दृष्टि रखे हुए है। वह जो भी था संभवतः यह सुनिश्चित कर लेना चाहता था कि वह ही रत्नगढ़ की राजकुमारी है अथवा कुछ दिनों पूर्व अपने मृत साथी को देख वह उचित समय पर उसपर आक्रमण करना चाहता था।

कारण कुछ भी हो सकता था।

वह शीघ्रता से गौशाला पहुँची जहाँ उसका अश्व बंधा हुआ था। उसने अश्व की पीठ पर हाथ फेरा तो वह धीरे से हिनहिनाया। मात्र कुछ ही दिनों में वह अश्व कनिका को पहचानने लगा था।

“अब यहाँ से प्रस्थान का समय आ गया है।” उसने धीरे से कहा मानो अपने अश्व से बातें कर रही हो। उसने अश्व के बंधन खोले और कूदकर उसकी पीठ पर बैठ गयी। प्रस्थान का समय आ गया था, संभवतः किसी और ग्राम।

इतने दिनों में उसे कई समाचार प्राप्त हुए थे। आने जाने वाले यात्रियों के द्वारा जो सदैव अपने साथ सूचनाएँ लाते थे, और जिन्हें ग्रामवासी अत्यंत रोचकता से सुनते थे। शतबाहु ने रत्नगढ़ महल को अपने अधिकार में ले लिया था और उत्तराँचल की सेना अभी भी सोमपर्वत की घाटियों में रुकी हुई थी। रत्नगढ़ का दक्षिणी भाग अब दक्षिणांचल के आधिपत्य में था।

यद्यपि उसे अभी तक यह ज्ञात नहीं हो पाया था कि उसके पिता जीवित थे अथवा नहीं। परंतु एक तथ्य उसके अंतर्मन में किसी पत्थर पर लकीर की भांति छप गया था। *उसे प्रतिशोध लेना है। रत्नगढ़ का प्रतिशोध। प्रबल का प्रतिशोध।* परंतु इसके लिए उचित समय तक जीवित रहना आवश्यक था।

और जीवित रहने का सबसे सरल मार्ग था एक स्थान से दूसरे स्थान पर बढ़ते रहना। संभवतः उत्तराँचल पहुँचने पर उसकी समस्या का समाधान हो जाता।

इसी कारण वह उस ग्राम से निकल आई थी और इस समय एक पथरीली बंजर भूमि पर आगे बढ़ रही थी। अगला ग्राम अथवा अगला हाट कुछ कोस दूर था। मार्ग में अधिक चहल पहल नहीं थी, कभी कभी मात्र एक दो व्यक्ति दिखाई पड़ जाते थे।

क्या उनमें से कोई उसपर आक्रमण करने वाला हो सकता है? उसके मस्तिष्क में ऐसे कई विचार आ रहे थे। इतना तो उसे विश्वास था कि यदि उसपर आक्रमण होगा तो पीछे से ही, इसलिए बचाव का एकमात्र मार्ग यही था कि शीघ्रता से आगे बढ़ा जाये।

उसने अपने अश्व को एड़ लगायी और तीव्रता से उसकी वल्गा खींची। अश्व एक क्षण के लिए तीव्रता से आगे बढ़ा और दूसरे ही क्षण नीचे गिर पड़ा। उसके साथ ही कनिका भी दूर जा गिरी। वेग में रहने के कारण उसका शरीर कुछ दूर तक घिसट गया जिससे कुछ स्थानों पर उसकी त्वचा छिल गयी। उसका सिर दुःख रहा था, शरीर में पीड़ा हो रही थी; मानो किसी ने उसे किसी भवन की छत से नीचे गिरा दिया हो।

कारण जानने के लिए उसने पीछे मुड़कर अपने अश्व को देखा तो आश्चर्य से उसकी आँखें फैल गयीं। अश्व की पीठ में एक तीर धँसा हुआ था जिससे अत्यंत तीव्रता से रक्तस्राव हो रहा था।

उसी क्षण उसकी छठी इंद्री ने उसे संकेत किया और वह भूमि पर ही लुढ़क कर अपने स्थान से हट गयी। अगले ही क्षण भूमि में उसी स्थान पर एक तीर धँसा हुआ था।

कोई उसपर आक्रमण कर रहा था। *परंतु कौन?* उसने सामने देखा तो उसे उत्तर भी स्वयं मिल गया। कुछ ही पगों की दूरी पर उसका आक्रमणकारी अपने अश्व पर बैठा हुआ था। बलिष्ठ शरीर, कमर में तलवार और हाथों में धनुष जिसकी प्रत्यंचा पर एक बाण चढ़ा हुआ था। इससे पूर्व कि वह बाण संधान कर पाता, कनिका मार्ग के किनारे बने छोटे छोटे पथरीले टीलों की ओर दौड़ गयी।

शक्क!

अगला बाण उसके निकट ही कहीं भूमि में धँसा था। उसका शरीर स्वेद से भीग गया। वह अपनी संभावित मृत्यु से बाल बाल बची थी। परंतु उसके पास पीछे मुड़कर देखने का समय नहीं था। उसे शीघ्र ही कोई ऐसा स्थान ढूँढना था जहाँ वह अपना बचाव कर सके।

शीघ्र ही उसे एक तनिक ऊँचा टीला दिखा और वह कूदकर उसके पीछे बढ़ गयी। सर्वप्रथम उसने अपनी तलवार अपने हाथों में ली। उसके पश्चात उसने अपनी श्वास को नियंत्रित किया। *वह ग्राम से ही उसके पीछे लगा हुआ था। संभवतः शीघ्रता में गौशाला से निकलने के कारण उसका संदेह स्पष्ट हो गया था कि वह ही कनिका है।*

उसे और सावधान रहना चाहिए था। परंतु अब वह समय समाप्त हो चुका था।

उसने धीरे से झाँका, आक्रमण करने वाला उसे कहीं नहीं दिखा। यद्यपि उसे उसका अश्व दिखा जो अब मृत था। यदि उसने उस क्षण अपने अश्व को एड़ नहीं लगायी होती तो वह बाण अवश्य ही उसके हृदय को भेद देता, और अपने अश्व के स्थान पर वह मृत होती। इस विचार मात्र से ही उसका शरीर धीरे से काँप उठा।

अब वह प्रतीक्षा करने लगी, क्योंकि उसे यह पूर्ण विश्वास था कि उसके आक्रमणकारी ने उसे इस स्थान पर छिपते हुए देखा है।

उसने कनिका को टीले के पीछे बढ़ते हुए देखा। वह मार्ग छोटी छोटी पहाड़ियों के मध्य बनाया गया था जिससे कुछ कुछ दूरी पर ऐसे टीले बहुतायत में थे।

उसका मात्र एक ही लक्ष्य था - कनिका की मृत्यु। उसे आदेश प्राप्त हुआ था कि उसे शीघ्र ही रत्नगढ़ की राजकुमारी को समाप्त करना है और इस क्षण उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह उस आदेश को पूर्ण करने के अत्यंत निकट है।

अपने अश्व से उतरकर वह उस दिशा में बढ़ गया जहाँ उसने कनिका को छिपते हुए देखता था। एक छोटा सा टीला अधिक समय तक उसकी रक्षा नहीं कर सकता था।

मात्र कुछ क्षण और!

रत्नगढ़ राजभवन पर आधिपत्य करने के अगले दिन ही महाराज शतबाहु ने अपने विश्वासपात्र पाहन को कनिका को मारने का कार्य सौंपा था। वह नहीं चाहता था कि रत्नगढ़ की राजकुमारी उसके लिए किसी भी प्रकार की समस्या उत्पन्न करे। पाहन ने इस कार्य में सहायता के लिए जिन छः सैनिकों का चयन किया था, वह भी उनमें से एक था।

उसे टीले के पीछे एक वस्त्र की झलक दिखाई दी। उसके मुख पर स्वतः ही मुस्कान आ गयी। यह वही वस्त्र था जिसे कनिका ने ओढ़ा हुआ था। उसे ज्ञात था कि कनिका सशस्त्र है, क्योंकि पिछले ग्राम में उनका एक साथी मृत पाया गया था। और उस सैनिक के घाव को देखकर यह सरलता से बताया जा सकता था कि वह शस्त्र एक तलवार है।

उसे वह दिन स्मरण हो आया जब पाहन ने उन छः को अलग अलग स्थानों पर कनिका को ढूँढने के लिए भेजा था। कनिका को ढूँढने में आरंभिक समस्या यह थी कि उनमें से किसी ने भी उसे स्वयं अपनी आँखों से नहीं देखा था। वह मात्र मौखिक वर्णनों के आधार पर उसे ढूँढ रहे थे। यह तो निश्चित था कि वह जहाँ भी होगी, छिपकर ही रह रही होगी। इसी कारण वह प्रत्येक संभावित स्थान पर उसे ढूँढ रहे थे।

पिछले ग्राम में तनिक पूछताछ से उसे यह ज्ञात हो गया था कि उसके साथी को किसी स्त्री ने मारा है और वह अगले ग्राम में गयी है। वह स्वयं भी उस ग्राम में चला आया और उसपर दृष्टि रखने लगा। शीघ्र ही उसे यह सुनिश्चित हो गया कि वह स्त्री कोई और नहीं अपितु कनिका ही थी।

परंतु इससे पूर्व कि उसे कनिका को मारने का अवसर प्राप्त होता वह ग्राम से निकल गयी। जब उसने उसे ग्राम से निकलते देखा तो वह स्वयं भी उसके पीछे पीछे बढ़ गया।

वह स्थान सोमपर्वत की घाटियों के निकट था और वह मार्ग निचले स्थान से होता हुआ ऊँचाई को ओर जाता था। दूर तक वृक्ष नहीं दिखाई दे रहे थे, हरियाली के नाम पर मात्र कुछ कुछ स्थानों पर उग आई घास ही दिख रही थी। इन सबके अतिरिक्त आकाश में सूर्य अपनी प्रचंड ऊष्मा के साथ उपस्थित था।

वर्ष के इस समय मध्य दिवस में उस मार्ग से मात्र गिनती के लोग ही यात्रा करते थे। परंतु यह स्थिति उसके लिए पूर्णतः उपर्युक्त थी, उसने सोचा। एकांत में कनिका का वध करना अत्यंत सरल था।

वह उस टीले से कुछ पग की दूरी पर था। उसने धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाया और तिरछी दिशा में बढ़ने लगा जिससे बाण संधान करने का स्थान मिले। जैसे ही वह कुछ पग और बढ़ा, उसे कनिका की पीठ दिखाई देने लगी। उसने बाण संधान कर दिया। परंतु बाण उसके शरीर में बिंध जाने के स्थान पर उस वस्त्र से टकराकर गिर गया, मानो कनिका का शरीर शिला निर्मित था। वह तीव्रता से वहाँ पहुँचा और उसने वह वस्त्र हटाया। वहाँ कोई नहीं था। उसके जबड़े भिंच गए। *उसने मुझे मूर्ख बनाया।*

वह वस्त्र एक पत्थर पर इस प्रकार रखा था कि प्रतीत हो कि वह किसी की पीठ है।

तभी उसे एक आहट सुनाई दी और प्रतिक्रिया स्वरूप वह अविलंब पीछे मुड़ा। कनिका अपनी तलवार लेकर उसपर कूदी। बचाव के लिए स्वतः ही उसका दायाँ हाथ ऊपर उठ गया। वह हाथ जिससे उसने अपने धनुष को पकड़ा हुआ था। कनिका की तलवार ने उसके धनुष को दो भागों में विभक्त कर दिया। उसने धनुष के टुकड़ों को फेंका और अपनी तलवार निकाल ली।

अब उस निर्जन पथरीले स्थान पर दो प्रतिद्वंदी आमने सामने खड़े थे, अपनी अपनी तलवार अपने हाथों में लिए। मात्र एक लक्ष्य के साथ - अपने प्रतिद्वंदी की मृत्यु।

कनिका ने अपने हाथों में थमी तलवार को संपूर्ण बल से पकड़ा हुआ था। उसने वह वस्त्र उतार कर नीचे रख दिए थे जिससे वह अभी तक अपनी तलवार छिपाती आयी थी। उसका शरीर स्वेद में भीगा हुआ था।

वह भयभीत थी, परंतु सावधान भी। उसका आक्रमणकारी उसी की ओर बढ़ रहा था।

तभी उसे एक उपाय सूझा और उसने एक पत्थर पर वस्त्र को इस प्रकार रख दिया कि दूर से देखने पर प्रतीत हो कि वह कोई मनुष्य है। उसके पश्चात वह स्वयं उस पथरीली भूमि पर रेंगती हुई कुछ दूर स्थित दूसरे टीले के पीछे छुप गयी।

वातावरण में मृत्यु शोक जैसी शांति थी, मानो कुछ क्षणों के लिए वायु ने भी अपना प्रवाह रोक दिया हो। आकाश में एक भी पक्षी नहीं दिख रहा था। परंतु उसे ज्ञात था कि उसका आक्रमणकारी अवश्य आयेगा। वह श्वास रोके प्रतीक्षा करती रही। तभी उसे 'खट' की एक ध्वनि सुनाई दी, जैसे किसी ने पत्थर पर बाण मारा हो। अगले ही क्षण उसे पदचाप भी सुनाई दिए, कोई उसी दिशा में बढ़ रहा था। *वह उस वस्त्र के निकट पहुँच रहा था।*

वह धीरे से अपने स्थान से उठ खड़ी हुई। उसने एक गहरी श्वास भरी और अपने आक्रमणकारी पर कूद पड़ी। *असावधान शत्रु पर प्रथम प्रहार विजय सुनिश्चित कर सकता है।*

परंतु उसका आक्रमणकारी भी फुर्तीला था, उसने तत्क्षण अपना धनुष आगे कर दिया। कनिका के प्रहार से उसे तो कोई हानि नहीं हुई परंतु उसका धनुष दो भागों में विभक्त हो गया। वह दो पग पीछे हटा और शीघ्रता से अपनी तलवार लेकर उसके समक्ष खड़ा हो गया।

अब वह पीछे नहीं हट सकती, कनिका ने सोचा। उसने अपने प्रतिद्वंदी की आँखों में देखा। वह भी मृत्युद्वंद्व के लिए सज्ज था।

कनिका ने प्रथम प्रहार किया जिसे उसके प्रतिद्वंदी ने सरलता से रोक लिया। द्वंद्व आरंभ हो चुका था। वह भूमि पथरीली और ऊबड़ खाबड़ थी जिसके कारण उन्हें सँभलने के लिए अतिरिक्त ध्यान देना पड़ रहा था।

अगला प्रहार आक्रमणकारी ने किया। और उससे भी अगला। कनिका मात्र अपना बचाव कर रही थी। प्रबल के साथ अभ्यास करने के कारण उसे ऐसे प्रहारों से बचने का पर्याप्त अनुभव था। परंतु उसका मुख्य उद्देश्य था अपने प्रतिद्वंदी की आक्रमण शैली को समझना।

आक्रमणकारी ने कनिका के उदर को लक्ष्य बनाकर प्रहार किया। कनिका ने अपनी तलवार तीव्रता से दायीं ओर से घुमाई, उसका प्रहार आक्रमणकारी के तलवार से लगा और उसकी तलवार उसके उदर के स्थान पर उसके शरीर के बायीं ओर से निकल गयी।

उसके प्रतिद्वंदी का प्रत्येक प्रहार मात्र उसकी जीवन लीला समाप्त करना चाहता था, परंतु वह अभी भी मात्र अपना बचाव ही कर रही थी।

आक्रमण शैली को समझने का प्रयत्न।

शीघ्र ही वह उकताने लगा, जो कि उसके प्रहारों से स्पष्ट होता जा रहा था। वह अविलंब कनिका को मारना चाहता था, इसीलिए उसके प्रत्येक प्रहार का लक्ष्य कनिका की गर्दन और उदर ही थे।

कनिका ने एकाएक प्रहार किया, इसके पश्चात अगला। वह अपने प्रतिद्वंदी को सोचने का समय नहीं देना चाहती थी। उसने किसी अनाड़ी बालक की भांति अगले कुछ प्रहार किया, जिनका कुछ लक्ष्य नहीं था, परंतु जिनसे बचने के प्रयास में उसके प्रतिद्वंदी को सोचने का समय नहीं मिल रहा था।

कनिका ने अगला प्रहार उसके पैरों पर किया। *संभवतः अंतिम प्रहार।* जैसा कि अपेक्षित था, उस प्रहार से बचने के लिए वह स्वतः ही हवा में उछल गया। पथरीली भूमि होने के कारण जब वह उछलने के पश्चात पुनः भूमि पर आया तो वह लड़खड़ा गया। संतुलन बनाने के लिए उसने अपने दोनों हाथ फैला दिए। कनिका ने विद्युत गति से उसकी तलवार पर प्रहार किया। उसकी तलवार छिटककर दूर जा गिरी। अगले क्षण कनिका की तलवार उसके गर्दन पर थी।

कनिका ने एक धीमी और गहरी श्वास ली। उसे ज्ञात था कि पैरों पर प्रहार करते ही वह बचाव में अवश्य उछलेगा। यह अत्यंत साधारण प्रतिक्रिया होती। यद्यपि यदि उसे सोचने का समय मिलता तो वह संभवतः ऐसा नहीं करता। वह अवश्य ही कनिका की नीति समझ जाता। परंतु कनिका ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया था।

"भूमि पर घुटनों के बल बैठ जाओ।" कनिका ने अपने स्वर को भारी बनाते हुए कहा। *उसे कुछ उत्तर चाहिए थे।* पिछली बार उसे प्रश्न करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था।

वह अपने स्थान से हिला नहीं। कनिका ने तलवार की नोक उसकी गर्दन से सटा दी, रक्त की एक बूँद उसके गर्दन से निकल कर तलवार पर आ गयी।

"बैठो!" वह पुनः चीखी। इस बार आक्रमणकारी पर प्रभाव हुआ। वह अपने घुटनों के बल बैठ गया। यह आवश्यक था, कनिका ने सोचा। खड़े रहने पर वह कुछ भी कर सकता था, वहीं घुटनों के बल बैठे रहने पर इसकी संभावना अत्यंत कम रहती।

"हाथ पीठ के पीछे।" कनिका ने पुनः कहा। आक्रमणकारी ने इस बार कोई प्रतिरोध नहीं किया। संभवतः उसे ज्ञात हो गया था कि उसके पास अब कोई विकल्प शेष नहीं है।

"तुम्हें किसने भेजा है?"

"पाहन ने।" उसने बताया। कनिका ने प्रथम बार उसका स्वर सुना।

"यह कौन है?" कनिका ने पुनः पूछा। उसने अनुमान लगाया था कि पिछले प्रश्न के उत्तर में उसे *शतबाहु* का नाम सुनने को मिलेगा।

"तुम्हारी मृत्यु।" उसने कनिका की आँखों में देखते हुए कहा।

कनिका ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। "और कितने लोग हैं?"

आक्रमणकारी ने कोई उत्तर नहीं दिया। कनिका ने पुनः तलवार की नोक उसके गर्दन से सटा दी। इस बार कुछ अधिक समय के लिए। रक्त की कुछ बूंदें उसके गर्दन से होती हुई तलवार पर आ गयीं और अंततः भूमि पर गिरने लगीं।

"छः लोग।" अंततः उसने उत्तर दिया, "पाहन ने महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए छः लोगों का चयन किया है।"

कनिका शांत हो गयी। उसके प्रश्न समाप्त हो चुके थे। परंतु अब उसे निर्णय लेना था कि वह अपने समक्ष बैठे व्यक्ति का क्या करे। वास्तव में उसके पास मात्र दो ही विकल्प थे, वह उसे जीवित छोड़ सकती थी अथवा मार सकती थी। उसके समक्ष घुटनों के बल बैठा व्यक्ति तन कर बैठा हुआ था, मानो अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हो। यदि वह उसे छोड़ देगी तो वह अवश्य ही पुनः उसे मारने का प्रयत्न करेगा। एक क्षण के लिए उसका अंतर्मन भी दुविधा में पड़ गया।

परंतु अधिक समय तक नहीं। उसने अपने तलवार को कसकर पकड़ लिया। *वह इस प्रकार विचलित नहीं हो सकती। उसे तो अभी कइयों को मृत्यु प्रदान करनी थी। उसे प्रबल की मृत्यु का प्रतिशोध लेना था।*

उसने आक्रमणकारी की आँखों में देखा। उनमें भय था, वह जीना चाहता था। *कौन सा मनुष्य ऐसा है जो जीना नहीं चाहता,* कनिका ने सोचा। *मृत्यु द्वार पर खड़ा प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि किसी प्रकार उसका जीवन बच जाये। उसके हृदय के किसी कोने में यह आशा जरूर शेष रहती है कि वह जीवित रहे।*

परंतु कनिका ने निर्णय ले लिया था।

उसने अपनी आँखें बंद कीं और तलवार घुमाई। आक्रमणकारी की गर्दन से रक्त की धारा फूट पड़ी। उसका शरीर भूमि पर टकराने से पूर्व ही निर्जीव हो चुका था।

उसने पुनः अपनी तलवार वापस रखी, निकट पड़ा वस्त्र उठाया, पूर्व की भांति उसे ओढ़ा और मार्ग की ओर बढ़ गयी। उसका अश्व मृत पड़ा था, परंतु वह अपने आक्रमणकारी के अश्व की ओर बढ़ गयी। उसने उस भूरे रंग के अश्व को ध्यानपूर्वक देखा, कुछ क्षणों तक उसे सहलाया और उसके पश्चात वह कूदकर उसकी पीठ पर बैठ गयी। अश्व ने कोई प्रतिकार नहीं किया।

उत्तम! उसे आगे का मार्ग तय करने के लिए एक अश्व की आवश्यकता थी और उसे वह प्राप्त हो चुका था। उसने अश्व को एड़ लगायी और आगे बढ़ गयी।

अध्याय 7

पाहन

पाहन ने एक दुकान के बाहर वह अश्व देखा तो स्वतः ही उस स्थान पर रुक गया। उसने कुछ समय पूर्व अपने एक सैनिक विच्मन को मार्ग किनारे मृत देखा था और यह अश्व उसका ही था। वह उस भूरे अश्व को पहचानने में भूल नहीं कर सकता था जिसके पिछले दायें पैरों पर दो श्वेत धारियाँ बनी हुई थीं। उसके पीछे आ रहे चार सैनिकों ने भी अपने अपने अश्व रोके।

उसने अपने सैनिकों को अपने अपने शस्त्र लेकर सज्ज रहने का आदेश दिया और स्वयं अकेला उस दुकान के भीतर चला गया। वह दुकान एक दूर तक फैले और अंतहीन मार्ग के मध्य स्थित था। सभी दिशाओं में कई कोस तक कोई अन्य मानव निर्मित संरचना नहीं थी। यात्री कुछ समय के लिए वहाँ रुक सकते थे, विश्राम कर सकते थे और जलपान कर सकते थे। सभी सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध थीं।

भीतर प्रवेश के साथ ही पाहन ने चारों ओर अपनी दृष्टि घुमाई। वहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्ति थे, कुछ आपस में बातें करते हुए, कुछ भोजन करते हुए और कुछ एकांत में विश्राम करते हुए। वृद्ध, युवा। स्त्री, पुरुष। सभी प्रकार के व्यक्ति। परंतु उनमें से कोई भी ऐसा नहीं था जिसका वर्णन कनिका से मिलता हो।

पाहन सीधा उस दुकान के स्वामी की ओर बढ़ गया।

विच्मन ने एक दिन पूर्व उसे संदेश भेजा था कि कनिका उसी ग्राम में थी। पाहन ने शीघ्र ही अन्य चार सैनिकों को एकत्र किया और यहाँ चला आया। परंतु ग्राम में आते ही उसे विच्मन का दूसरा संदेश प्राप्त हुआ कि कनिका ने वह ग्राम भी छोड़ दिया है और वह उसके पीछे जा रहा है। पाहन स्वयं भी उस ओर बढ़ गया। कनिका को ढूँढने में अत्यधिक समय लग रहा था। उसके अनुमान से अधिक। इसी कारण वह कनिका को मृत देखने में अधिक विलंब नहीं करना चाहता था। कनिका तो उसे नहीं मिली, परंतु उसे विच्मन मिला। मृत।

सर्वप्रथम उसे मार्ग में एक मृत अश्व दिखा जिसकी पीठ में एक बाण लगा हुआ था। वह बाण विच्मन द्वारा चलाया गया था, पाहन को इसमें तनिक भी संदेह नहीं था। उसने निकट देखना आरंभ किया तो उसे शीघ्र ही विच्मन का शव भी दिख गया।

इसका एक ही अर्थ था, कनिका विच्मन के भूरे अश्व को लेकर आगे बढ़ी है। और अब उसी मार्ग पर थोड़ी दूर पश्चात उसे वह अश्व दिखाई दिया था। वह मन ही मन प्रसन्न हुआ। *वह अवश्य ही किसी आवश्यक वस्तु के कारण यहाँ रुकी है; जल, भोजन अथवा कुछ और।* कारण जो भी हो, कनिका को अब कोई नहीं बचा सकता। मुख्य द्वार पर उसके चार सैनिक सज्ज थे जिनके लिए आदेश था कि वह कनिका को देखते ही मारने में एक क्षण का भी विलंब न करें।

मूषक और विडाल की क्रीड़ा को समाप्त करने का समय आ चुका था।

“बाहर जो भूरा अश्व खड़ा है वह किसका है?” पाहन ने स्वामी से प्रश्न किया जिसका नाम भौमिक था।

भौमिक उस क्षण एक बड़े से पात्र से कई छोटे छोटे पात्रों में मदिरा भर रहा था। उसने अपनी आँखों को सिकोड़ कर पाहन को देखा। उसे ऐसे व्यक्ति तनिक भी पसंद नहीं आते थे जो बिना कुछ क्रय किये मात्र प्रश्न पूछते थे।

“मेरा।” उसने रुखे स्वर में उत्तर दिया और पात्रों में मदिरा भरने का कार्य पुनः करने लगा।

“मैं उस अश्व के विषय में पूछ रहा हूँ जिसके पिछले दायें पैरों पर दो श्वेत धारियाँ बनी हुई हैं।” पाहन ने खीझते हुए पुनः प्रश्न किया।

“मैं भी उसी अश्व के विषय में बता रहा हूँ।” भौमिक ने पुनः अपनी दृष्टि मदिरा पात्रों से उठाई।

पाहन ने क्रोधवश अपने दांत भींचे। विच्मन के अश्व को पहचानने में वह भूल नहीं कर सकता था। *परंतु यह बार बार उस अश्व को स्वयं का अश्व क्यों बता रहा था?*

उसने स्वयं को शांत किया और मंद स्वर में बोला, “वास्तविकता में आज मेरी बहन घर से भाग गयी है। वह भूरा अश्व उसी का था। इसी कारण मैं उसके विषय में प्रश्न कर रहा हूँ।” पाहन ने अपने मुख पर नकली झेंप भरी मुस्कान प्रकट करते हुए कहा। वास्तविकता में उसका ह्रदय चाह रहा था कि वह उस बड़े मदिरा पात्र को उठाये और उसे भौमिक के सिर पर दे मारे। इस प्रकार उसे उत्तर प्राप्त होने में तनिक भी विलंब नहीं होता। परंतु वह अनावश्यक जटिल परिस्थिति से बचना चाहता था।

“ओह! आप उस युवती के भाई हैं।” भौमिक ने *‘उस’* शब्द पर बल देते हुए कहा। “अब मुझे समझ आया कि वह इतनी शीघ्रता में क्यों थी।” उसने बाएँ हाथ से अपना सिर खुजाते हुए कहा।

“हाँ। अब बताइए वह कहाँ हैं?”

“वह तो कुछ समय पूर्व ही यहाँ से चली गयी। वह यहाँ आई तो कहने लगी कि उसे दूसरा अश्व चाहिए, भूरा अश्व उसे अधिक नहीं सुहाता। हालाँकि मुझे उसकी बातों पर संदेह था, क्योंकि लोग सदैव बिना अतिरिक्त मूल्य के धीमे और बूढ़े अश्वों के स्थान पर नए अश्व चाहते हैं। परंतु आपकी बहन के पास जो अश्व था वह वास्तव में श्रेष्ठ गुणवत्ता का था। इसी कारण मैंने उसके प्रतिदान में उसे एक सामान्य अश्व दे दिया। यहाँ भीड़ बहुत अधिक है, इसी कारण मैं अभी तक उस अश्व को पीछे बाड़े में नहीं ले जा पाया।”

“ओह।” भौमिक शांत हुआ तो पाहन ने कहा। अब उसे स्पष्ट था कि भौमिक बार बार उस अश्व को अपना क्यों बता रहा था। “आपने उसे जो अश्व दिया उसका रंग क्या था?”

“श्वेत। उस अश्व की बायीं आंख के ऊपर तीन काली चित्तियाँ है।”

“धन्यवाद!” पाहन वहाँ से वापस जाने के लिए मुड़ा। अब उसे पुनः यह ज्ञात करना था कि कनिका किस दिशा में गयी है। उसे अपनी खोज पुनः आरंभ करनी थी।

तभी उसे कुछ सूझा और वह पुनः भौमिक की ओर मुड़ा, “कोई और बात जो आप उसके विषय में मुझे बता सकें। मुझे उसे शीघ्र ही ढूँढना है, घर पर सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।”

“कोई ऐसी विशेष बात तो नहीं,” भौमिक ने सोचने की मुद्रा बनायी, “हाँ, उसने पीछे लगे मानचित्र को देख कर यह प्रश्न किया था कि उत्तराँचल जाने के लिए सबसे निकट मार्ग कौन सा है?” कहकर उसने अपने पीछे दीवार पर टँगे एक पुराने मानचित्र की दिशा में संकेत किया। उसकी स्थिति देखकर प्रतीत होता था कि वह मानचित्र कई वर्षों से यथास्थान टंगा हुआ था और अब तक न जाने कितने पथिकों का मार्गदर्शन कर चुका था।

“और आपने उसे क्या उत्तर दिया?” पाहन ने कहा, क्षण प्रतिक्षण उसका धैर्य समाप्त होता जा रहा था।

“यही कि यहाँ से सबसे निकट मार्ग तो स्वर्ण सेतु ही था, परंतु इस क्षण वहाँ से जाना संभव नहीं। इसके पश्चात दूसरा सबसे निकट मार्ग सोमपर्वत की घाटियों से होकर जाता है, परंतु अभी वहाँ भी सैन्य शिविर लगे हुए हैं, अतः वह मार्ग भी अवरुद्ध है। अब यदि किसी को उत्तराँचल जाना हो तो सबसे निकट मार्ग, जो कि इस समय उपलब्ध है, वह तौजंबन होकर जायेगा।” भौमिक ने अपनी बात समाप्त की और मदिरा पात्रों को एक कतार में रखने लगा।

पाहन ने एक बार पुनः मानचित्र को देखा। उसपर बड़े अक्षरों में *तौजंबन* लिखा हुआ था। “धन्यवाद!” पाहन ने भौमिक से कहा और तत्क्षण बाहर की ओर बढ़ गया।

“आशा करता हूँ कि आपकी बहन आपको शीघ्र ही मिले।” पीछे से उसे भौमिक का स्वर सुनाई दिया जिसपर उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

बाहर अभी भी उसके सैनिक ठीक उसी प्रकार खड़े थे जैसा उसने उन्हें आदेश दिया था। *सज्ज!* उसका अनुमान कि कनिका अवश्य उसी स्थान पर होगी, गलत सिद्ध हुआ था।

उसने अपने सैनिकों को पुनः अपने अश्वों पर बैठने का संकेत किया और धीरे से बोला, “तौजंबन।”

वह अवश्य वहीं जाएगी क्योंकि उसे ज्ञात हो चुका है कि अब वह अधिक समय तक रत्नगढ़ में छिप नहीं सकती, पाहन ने सोचा। वह इतनी मूर्ख नहीं थी कि सोमपर्वत की घाटियों में उत्तराँचल के सैनिकों के पास जाती क्योंकि उसे भी ज्ञात था कि दक्षिणांचल के सैनिक उसे ढूँढ रहे हैं जो उसे मार्ग में ही पहचान लेते। निश्चय ही उसका अगला पड़ाव तौजंबन था और उस मार्ग से उत्तराँचल जाना, जहाँ उसे सहायता प्राप्त होती।

पाहन उछल कर अपने अश्व पर बैठ गया और तौजंबन की ओर जाने वाले मार्ग पर बढ़ गया। उसके पीछे अन्य चार सैनिकों ने भी ठीक वैसा ही किया।

उसे किसी भी मूल्य पर कनिका को तौजंबन में ही समाप्त करना था।

अध्याय 8
तौजंबन

कनिका ने अब तक के जीवनकाल में कई नगर, कई ग्राम, कई हाट देखे थे, परंतु उसने आज तक तौजंबन जैसा नगर नहीं देखा था। चारों ओर स्वेद से भीगे हुए लोग इधर उधर भाग रहे थे। वह अनुमान नहीं लगा पा रही थी कि उस नगर में इतनी ऊष्मा क्यों थी - उस नगर की भौगोलिक स्थिति के कारण, वर्तमान ऋतु के कारण अथवा उन विशाल लोहे की भट्टियों के कारण जहाँ उस नगर का मुख्य कार्य किया जाता था - धातुओं को पिघलाकर भिन्न भिन्न वस्तुओं में ढालने का कार्य।

परंतु शीघ्र ही उसका ध्यान उसकी प्राथमिक समस्या की ओर चला गया। उसकी क्षुधा।

उसने जो अश्व मार्ग के निकट स्थित दुकान से लिया था, वह अत्यधिक धीमा और सुस्त था। *संभवतः इसी कारण वह इतनी सरलता से मेरी बात मान गया था।* उसने उस अश्व को नगर के बाहर ही छोड़ दिया। वह प्रत्येक पग पर अपना कार्य सावधानीपूर्वक कर रही थी। परंतु अब मुख्य समस्या यह थी कि उसके पास एक भी मुद्रा शेष नहीं थी और तीव्र क्षुधा के कारण उसके उदर में पीड़ा भी होने लगी थी।

यदि यह कोई वन होता तो वह सरलता से वृक्षों से फल अथवा कंदमूल खाकर अपनी क्षुधा शांत कर सकती थी। परंतु यह नगर था, यहाँ मुद्रा के बिना कुछ भी नहीं मिलता था। नगर में प्रवेश करने से पहले उसे इस विषय में भी अवश्य विचार करना चाहिए था, कनिका ने सोचा।

नगर के हाट में भोज्य पदार्थों की कई दुकानें थीं और उन्हें देखकर उसके मुख में पानी आ रहा था। परंतु उसे ज्ञात था कि ऐसे व्यापारिक नगर में बिना मूल्य उसे कोई वस्तु प्राप्त नहीं होने वाली थी। उसे स्वयं ही अपनी क्षुधा शांत करने का कोई उपाय करना था।

वह एक छोटे से दुकान की ओर बढ़ गयी जहाँ पीतल और कांस्य जैसी धातुओं की मूर्तियाँ और सजावट की वस्तुएँ विक्रय हो रही थीं। वहाँ विक्रय करने वाला व्यक्ति अकेला था, परंतु वहाँ भीड़ अधिक थी। कदाचित उसकी वस्तुएँ लोगों को अधिक पसंद आ रही थीं। अकेला होने के कारण वह व्यक्ति एक बार में मात्र एक ही ग्राहक से मोल भाव कर सकता था। अपनी बड़ी सी चौपाई पर उसने सभी वस्तुएँ फैला रखी थीं, जहाँ से ग्राहक उन्हें अपने हाथों में उठा उठाकर देख भी रहे थे। उसी चौपाई के एक किनारे उसने अपनी मुद्राओं की थैली भी रखी हुई थी जिसमें से बार बार मुद्राएँ निकालने के कारण कुछ मुद्राएँ बाहर भी निकल कर फैली हुई थीं।

कनिका भी अन्य ग्राहकों की भांति सामान्य रहने का पूरा प्रयास करते हुए मूर्तियाँ उलट पलट कर देखने लगी। अंत में उसने पीतल की एक मूर्ति उठाई और अपने हाथों में लेकर देखने लगी। विक्रेता ने उसे एक बार देखा और पुनः दूसरे ग्राहक की ओर मुड़ गया जो उसे मुद्राएँ दे रहा था।

कुछ क्षणों पश्चात कनिका तीव्रता से वहाँ से आगे बढ़ गयी। ठीक उस दिशा में जहाँ से विक्रेता को मात्र उसकी पीठ दिखाई दे रही थी। इसके अतिरिक्त उसने अपने हाथ भी इस प्रकार आगे किये हुए थे जिससे विक्रेता को वह दिखाई नहीं दे रहे थे।

“ए! रुको।” विक्रेता चिल्लाते हुए उसके पीछे दौड़ा। कनिका ने रुकने का कोई उपक्रम नहीं किया।

विक्रेता दौड़ते हुए उसके समक्ष खड़ा हो गया। “रुको, तुमने अभी अभी जो मूर्ति ली है उसका मूल्य तो देती जाओ,” वह क्रोध में चिल्लाया जिससे निकट खड़े अन्य लोग भी उसी ओर देखने लगे।

“मैंने कोई मूर्ति नहीं ली है।” कनिका ने अनभिज्ञ भाव से कहा।

“मैंने देखा है, जो मूर्ति तुमने अपने हाथों में ली थी, वह अपने स्थान पर नहीं है। तुमने उसका मूल्य नहीं दिया है,” वह एक क्षण रुककर बोला, “इसका एक ही अर्थ है - तुमने चोरी की है।”

“तुम मुझपर मिथ्यारोपण कर रहे हो।” कनिका ने उससे भी अधिक ऊँचे स्वर में कहा।

“यदि तुम्हारा कहना है कि तुमने मूर्ति नहीं ली तो तुम्हें जाँच कराने में कोई समस्या नहीं होनी चाहिए।” विक्रेता ने कहा। वह लोगों की बढ़ती भीड़ से परेशान हो रहा था। उसका अनुमान था कि मूर्ति अवश्य उस लड़की के हाथ में होनी चाहिए थी, परंतु ऐसा नहीं था। *अवश्य उसने उसे कहीं और छुपाया होगा।* साथ ही उसे शीघ्रता से अपनी दुकान पर भी वापस जाना था।

“उचित है, मुझे कोई समस्या नहीं।” कनिका ने कहा, “परंतु जाँच कौन करेगा?”

उत्तर देने के स्थान पर विक्रेता भीड़ में ही खड़ी एक वृद्ध महिला की ओर मुड़ा। वह निकट ही धातु के बर्तन विक्रय करती थी। उसने उसे कुछ संकेत किया जिसे वह महिला तत्क्षण समझ गयी। वह कनिका के निकट पहुँची और उसकी जाँच करने लगी।

कनिका ने कोई प्रतिरोध नहीं किया।

महिला को उसके पास कोई मूर्ति नहीं मिली। वास्तव में उसे कनिका के पास से कुछ भी वस्तु नहीं मिली थी, मात्र उसकी कमर पट्टिका में लटक रही मशक और एक कांस्य मुद्रा के अतिरिक्त।

वहाँ निकट खड़े सभी व्यक्ति अब उस विक्रेता को देख रहे थे और आपस में बातें कर रहे थे।

“मुझे क्षमा करिए।” उस विक्रेता ने कनिका से कहा और शीघ्रता से वापस लौट गया। अपनी शंका के कारण वह इतने लोगों के मध्य मूर्ख बन गया। दुकान के निकट पहुँचते ही उसे वह मूर्ति भी दिख गयी जो भूमि पर गिरी हुई थी।

अब उसे समझ आया कि मूर्ति यथास्थान क्यों नहीं थी। उसने भीड़ में पुनः उस लड़की को देखने का प्रयत्न किया, परंतु वह अपने स्थान से जा चुकी थी।

लोगों की बातों पर ध्यान न देते हुए कनिका शीघ्रता से उस स्थान से आगे बढ़ी। उसका हृदय अत्यधिक तीव्र गति से स्पंदन कर रहा था। उसने जीवन में प्रथम बार चोरी जैसा कृत्य किया था।

जब उसे यह विश्वास हो गया कि वह पर्याप्त दूरी तय कर चुकी है तो वह रुकी। उसने अपनी कसकर बंद की हुई मुट्ठी खोली और उसमें उपस्थित कांस्य मुद्रा को ध्यान से देखा। वही कांस्य मुद्रा जिसे उसने चुराया था।

दुकान से मूर्ति उठाते समय उसने वह कांस्य मुद्रा भी उठा ली थी, परंतु मूर्ति को उसने धीरे से वहीं निकट ही नीचे गिरा दिया था। उसके पश्चात उसने उस कांस्य मुद्रा को अपनी कमर पट्टिका में छिपा लिया और वहाँ से आगे बढ़ गयी। उसे ज्ञात था कि मूर्ति को यथास्थान न देखकर और उसका व्यवहार देखकर विक्रेता अवश्य ही उसके पीछे आएगा और उसकी जाँच करेगा। परंतु जाँच करते समय वह पीतल की मूर्ति खोजेगा, न कि छोटी सी कांस्य मुद्रा। यदि वह मात्र कांस्य मुद्रा वहाँ से उठाती तो विक्रेता अवश्य देख लेता और उस समय जाँच करते समय वह मुद्रा जैसी छोटी वस्तु भी ढूँढता। इसी कारण उसे मूर्ति चोरी का नाटक करना पड़ा।

कुछ और घुमावदार गलियों में बढ़ने के पश्चात वह एक हलवाई की दुकान पर रुकी। वहाँ उस एक कांस्य मुद्रा से उसने खाने की वस्तुएँ लीं। यह भोजन उसके राजभवन के रसोइये द्वारा बनाये गए भोजन जितना स्वादिष्ट नहीं था, परंतु उसकी क्षुधा मिटने के लिए पर्याप्त था।

भोजन समाप्त करने के पश्चात जब उसने जल पिया तो उसे एक तृप्ति का अनुभव हुआ। उसने एक दिन पूर्व भोजन किया था, परंतु मात्र आठ प्रहर में उसे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि वह कई माह से भूखी थी। क्षुधा से तृप्त होने के पश्चात उसका अगला लक्ष्य था उत्तराँचल राजधानी की ओर बढ़ना। यद्यपि तौजंबन भी उत्तराँचल का भाग था, परंतु यहाँ उसे कोई सहायता नहीं प्राप्त होने वाली थी।

वह पैदल ही उस मार्ग पर बढ़ गयी जो राजधानी की ओर जाता था।

वह नगर उसके लिए नया था और उसके मार्ग भी। इसी कारण उसे कई बार स्थानीय लोगों से भी मार्ग पूछना पड़ रहा था। अंततः जब वह नगर सीमा पर पहुँची तो वहाँ एक और आश्चर्य उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

नगर सीमा पर एक सैनिक उपस्थित था जिसकी वेशभूषा ठीक उस सैनिक से मिलती थी जिसे उसने कुछ प्रहर पहले मारा था। वह उस मार्ग से उत्तराँचल जाने वाले सभी व्यक्तियों की जाँच कर रहा था। परंतु जिस तथ्य ने कनिका को आश्चर्यचकित किया था, वह यह था कि वहाँ उपस्थित नगर के सैनिक भी उसकी सहायता कर रहे थे।

यह अवश्य उनमें से एक था जो उसे ढूँढ रहे थे, क्योंकि जहाँ अन्य सैनिक उत्तराँचल जाने वाले वाहनों में रखी वस्तुएँ देख और जाँच रहे थे, वहीं वह सैनिक उत्तराँचल जाने वाले सभी यात्रियों, मुख्यतः स्त्रियों के मुख को देख रहा था।

वह किसी स्त्री को ढूँढ रहा था। कनिका के लिए यह अनुमान लगाना तनिक भी कठिन नहीं था कि वह सैनिक उसे ही ढूँढ रहा था।

उसने कुछ समय प्रतीक्षा करने का निर्णय किया।

निकट ही एक व्यापारी कुछ श्रमिकों को ढूँढ रहा था जो उसके धातु से निर्मित वस्तुओं को बैलगाड़ी में लदवा सके। कनिका भी उन श्रमिकों में मिल गयी। वह जाँच स्थल से मात्र दो सौ पग की दूरी पर थी, जहाँ से वह उस सैनिक को भी देख सकती थी। परंतु उस सैनिक ने संभवतः अपने स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा कि कनिका उससे मात्र कुछ ही दूरी पर है।

लगभग आधे प्रहर के परिश्रम के पश्चात कनिका को दो कांस्य मुद्राएँ प्राप्त हुईं। इतनी देर में वह सैनिक एक क्षण को भी अपने स्थान से हटा नहीं था। यद्यपि कनिका ने उसे अन्य जाँच अधिकारियों को एक पोटली देते हुए अवश्य देखा था। *मुद्राओं से भरी वह पोटली उसकी सहायता करने का मूल्य था।*

कनिका के समक्ष अभी भी समस्या उसी प्रकार बनी हुई थी। वह सैनिक वहाँ से जाने वाला नहीं था, और कनिका किसी भी दशा में उसके सामने नहीं आना चाहती थी। निकट से वह उसे अवश्य ही पहचान जाता और उस दशा में उसे उस सैनिक से द्वंद्व करना पड़ सकता था, जिसमें जाँच अधिकारी भी उस सैनिक की ही सहायता करते। कनिका ने अपने हाथ में रखी दोनों कांस्य मुद्राओं को देखा। उसके पास दो बार भोजन करने के लिए पर्याप्त मुद्रा थी। उसने कुछ समय तौजंबन में ही छुप कर रहने का निर्णय किया।

वह वहाँ से विपरीत दिशा में बढ़ गयी। संध्या घिर आई थी और रात्रि का अँधेरा फैलने से पूर्व उसे कोई सुरक्षित स्थान ढूँढना जहाँ वह रात्रि में सो सके। तौजंबन का पूर्वी भाग घने वनों से घिरा हुआ था और वह हिंसक वन्य जीवों के निकट रात्रि नहीं व्यतीत करना चाहती थी। वैसे भी उसने निर्णय किया था कि वह राज मार्ग से अधिक दूर नहीं जाएगी, इसी कारण वह सावधानी से निकट ही ऐसे संभावित स्थानों को ढूँढ रही थी जहाँ वह विश्राम कर सके।

कुछ ही समय इधर उधर विचरने के पश्चात उसे एक भट्ठी मिली जहाँ कच्चे लोहे से अस्त्र और अन्य वस्तुएँ बनाई जाती थीं। कनिका के बार बार आग्रह करने के पश्चात और उसकी दयनीय स्थिति देखते हुए उस भट्ठी के स्वामी ने उसे रात्रि वहाँ रुकने की आज्ञा दे दी। “यहाँ रात्रि में भी निरंतर कार्य होता रहता है, यदि तुम यहाँ होने वाली तीव्र ध्वनि और ऊष्मा सहन कर सको तो एक कोने में विश्राम कर सकती हो।”

कनिका ने तत्क्षण हाँ कह दिया। वैसे भी उसे सोना नहीं था, क्योंकि निद्रावस्था में वह सावधान नहीं रह सकती थी। मन ही मन उसने निश्चय किया कि वह कल दिन में ही तौजंबन से निकलने का पूर्ण प्रयास करेगी।

उस अस्त्र निर्माणशाला को बहुत लंबे आकार में बनाया गया था जिसके अंत में वह भट्ठी थी जिसमें गर्म पिघला लोहा दूर से ही दिखाई दे रहा था। उसमें एक मोटा रस्सा बांधा गया था जिसको खींचने से पिघले लोहे वाला पात्र हल्का सा टेढ़ा हो जाता था और पिघला लोहा नीचे रखे हुए छोटे पात्रों में भर जाता था। उसके पश्चात उसे मनोवांछित आकार में ढाला जाता था।

कनिका मुख्य द्वार के निकट, कोने में बैठी थी और न चाहते हुए भी वहाँ के क्रिया कलापों को ध्यान से देख रही थी। कभी-कभार कुछ कार्यकारी उसे विचित्र दृष्टि से भी देख रहे थे, मानो ज्ञात करना चाह रहे हों कि स्वेद से लथपथ, मैले-कुचैले वस्त्र पहने वह युवती उस स्थान पर क्या कर रही है।

टन-टन की ध्वनि वहाँ निरंतर सुनाई पड़ रही थी। कुछ ही समय में उसे उस ध्वनि में भी एक ताल दिखाई देने लगी। नियमित अंतराल पर पड़ने वाला प्रहार कुछ ही क्षणों में एक साधारण लोहे के टुकड़े को एक प्राणघातक अस्त्र में परिवर्तित कर दे रहा था।

वह प्रबल के साथ थी, उद्यान के मध्य बैठी हुई। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, सुंदर सुगंधित पुष्पों के अतिरिक्त कुछ अन्य नहीं दिखाई दे रहा था। एकाएक सभी दिशाओं से उसे तीव्र ध्वनि सुनाई देने लगी। उसने सभी ओर देखा, परंतु उसे कोई दिखा नहीं। ध्वनि की तीव्रता पल प्रति पल बढ़ती जा रही थी।

उसने अपनी आँखें खोलीं तो कुछ क्षण उसे यह समझने में लग गए कि वह कहाँ थी। भट्ठी में जल रही अग्नि का ताप उसके शरीर तक भी पहुँच रहा था। बैठे-बैठे ही कब उसकी आँख लग गयी, स्वयं उसे भी ज्ञात नहीं हुआ। वहाँ लोग आपस में बातें कर रहे थे, अवश्य कोई बात थी। और उनके हाव-भाव से यह स्पष्ट था कि वह बात अवश्य गंभीर थी।

कनिका ने एक कर्मचारी से पूछा तो उसने बताया कि कुछ सैनिक यहाँ की जाँच करना चाहते थे, परंतु जब वहाँ के स्वामी ने उन्हें प्रातःकाल आने के लिए कहा तो उन्होंने उसे घायल कर दिया।

“परंतु वह चाहते क्या हैं?” कनिका ने पुनः प्रश्न किया। उसने अनुभव किया कि वह कर्मचारी अपने स्वामी की दशा देखकर तनिक भयभीत था।

“मुझे नहीं ज्ञात। कुछ लोग कह रहे थे कि वह सैनिक निकट के कई स्थानों की जाँच कर रहे हैं।” इतना कहकर वह कर्मचारी भी बाहर की ओर बढ़ गया। सभी के लिए आदेश था कि वह शीघ्र ही वहाँ से बाहर निकल आयें।

कनिका चिंतित हो उठी। *यह जाँच अवश्य उसके लिए ही हो रही थी, और सैनिकों के रहते हुए वह किसी भी दशा में बाहर नहीं जा सकती थी।*

वह किसी मूषक की भांति फँस चुकी थी।

अंततः उसने निर्माणशाला में ही छिपने का निर्णय किया, परंतु समस्या यह थी कि वहाँ छुपने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं था। परंतु यही एकमात्र विकल्प था।

वह पिछले भाग में बढ़ने लगी जहाँ लोहे की कई छोटी बड़ी वस्तुएँ रखी हुई थीं। उनके पीछे छुपने से वह द्वार के निकट से तो नहीं दिखाई देती, परंतु यदि कोई उस स्थान को ढूँढता तो वह छिपी नहीं रह सकती थी। वह एक स्थान पर छिप गई और मन ही मन प्रार्थना करने लगी कि वह सैनिक द्वार के निकट से ही जाँच करके पुनः लौट जाएँ।

परंतु उसकी प्रार्थना अनसुनी रह गयी।

छिपे हुए ही उसने तीन व्यक्तियों की वहाँ प्रवेश करते हुए देखा। उनमें से दो की वेशभूषा ठीक उन सैनिकों जैसी थी जिनका उसने वध किया था। तीसरे व्यक्ति को वह प्रथम बार देख रही। निर्माणशाला के मद्धिम प्रकाश में उसे मात्र उसका विशाल मांसल शरीर ही दिख रहा था।

वह अवश्य ही पाहन होगा, कनिका ने अनुमान लगाया। वह निर्माणशाला में रखी सभी वस्तुओं के पीछे जाकर ध्यानपूर्वक देख रहा था।

कनिका हर संभव प्रयास कर रही थी कि वह किसी भी प्रकार की ध्वनि न उत्पन्न करे, परंतु इस क्षण उसे स्वयं के हृदय स्पंदन की गति भी किसी नगाड़े जैसी प्रतीत हो रही थी।

पाहन अब उसी की ओर बढ़ रहा था। कनिका की हथेलियाँ उसकी तलवार पर कस गयीं। उसके निकट आता स्वर धीरे-धीरे तीव्र होता जा रहा था। वह एक झटके से उठी और उसने अनुमानतः उस दिशा में तलवार से प्रहार किया जहाँ उसे पाहन के होने का अनुमान था।

परंतु उसकी तलवार मात्र वायु को ही चीर पाई। पाहन चौकन्ना था। उसे ऐसे किसी प्रहार का अनुमान था इसी कारण वह नियत समय पर अपने स्थान से पीछे हट गया था।

कनिका ने अपने स्थान पर खड़े पाहन को देखा जो उसे ही ध्यान से देख रहा था। उसकी आँखों में हिंसक भाव थे। कनिका दो पग पीछे हट गयी।

“मैं तुम्हें समर्पण का एक अवसर देता हूँ।” पाहन ने शांत भाव से कहा। उसका स्वर भी उसके शरीर की भांति ही भारी था।

“समर्पण?” कनिका ने उसकी आँखों में घूरते हुए कहा, “जिससे शतबाहु स्वयं मुझे मार सके? उससे कह दो कि यदि वह मुझसे मिलने का इच्छुक हो तो स्वयं यहाँ आये।”

उसने अपने जबड़े भींचे और पाहन पर पूरी शक्ति से प्रहार किया।

पाहन ने बिना अपने पाँव हिलाए, यथास्थान खड़े रहते हुए ही उस प्रहार को रोक दिया। उसने एक झटका दिया तो अपनी तलवार सहित कनिका दो पग पीछे चली गयी। इसके पश्चात पाहन ने प्रथम प्रहार किया जो कनिका की बाँह को छूकर निकल गया। रक्त की एक अत्यंत पतली धारा दिखाई देने लगी।

“महाराज की चिंता तुम न करो,” पाहन मुस्कराया, “अंततः तुम्हें जाना उन्हीं के पास है। जीवित अथवा मृत।”

कनिका ने अपने निकट परिवेश का अवलोकन किया। भट्ठी की ऊष्मा के कारण वह अधिक पीछे नहीं जा सकती थी। उसने उस व्यक्ति के विषय में सोचा जो प्रतिदिन उस भट्ठी में कच्चा लोहा डालता था, संभवतः बारम्बार वह कार्य करने से वह इतनी ऊष्मा झेलने में सक्षम हो गया होगा कि कई प्रहर वहाँ बैठा रह सके।

उसने पाहन पर कई प्रहार किये जिनसे वह सरलता से बचता जा रहा था। उसकी सामान्य से अधिक लंबाई इस समय कनिका के लिए समस्या उत्पन्न कर रही थी, जिसके कारण उसके प्रहारों से बचना कनिका के लिए कठिन होता जा रहा था। पाहन के प्रत्येक प्रहार के कारण उसे एक पग पीछे बढ़ना पड़ रहा था। अग्निकुंड का ताप अब उसके शरीर को झुलसाने लगा था।

पाहन उसकी दशा देखकर मुस्कुरा रहा था। उसके साथ आये दोनों सैनिक दूर खड़े मात्र उन दोनों का द्वंद्व देख रहे थे।

पाहन ने अपने शरीर का संपूर्ण बल अपने हाथ में थमी तलवार की ओर प्रेषित किया और कनिका के हृदय को भेदने के लिए प्रहार किया। कनिका ने अपनी तलवार से उस प्रहार को रोका। पाहन ने उसी क्षण अपनी तलवार को नीचे घुमा दिया। दोनों तलवारों के फँसे होने के कारण कनिका की तलवार भी नीचे हो गयी, और अकस्मात ऐसा होने के कारण वह भी झुक गयी।

पाहन ने उसकी इस अवस्था का लाभ उठाया और अपने दाहिने पैर से कनिका के उदर पर प्रहार किया। कनिका कई पग पीछे भूमि पर जा गिरी। तलवार उसके हाथों से छूटकर नीचे गिरी पड़ी थी जिसे पाहन ने अपने पैरों से दूर फेंक दिया।

“अंत समय में अपने ईश्वर का स्मरण कर लो युवती।” पाहन ने भूमि पर गिरी निःशस्त्र कनिका की ओर बढ़ते हुए कहा। “मृत्यु के साथ ही तुम्हारा उत्तरदायित्व भी समाप्त हो जायेगा।”

राजकुमारी होने के कारण यहाँ की प्रजा के प्रति तुम्हारा एक उत्तरदायित्व है। प्रबल ने उससे कहा था। तब उसने उत्तर दिया था, *जब तुम हो तो मुझे किसी उत्तरदायित्व के विषय में सोचने की आवश्यकता नहीं।*

परंतु स्थितियाँ अब पूर्णतः भिन्न थीं।

उसने किसी प्रकार स्वयं को संभाला और उठ खड़ी हुई। पाहन के रूप में मृत्यु उसके अत्यंत निकट थी। पीछे एक पग भी जाने का स्थान नहीं शेष था। उसने अपनी आँखें बंद की।

अब उसके पास उत्तरदायित्व स्वीकार न करने का विकल्प शेष नहीं था।

उसके बाएँ ओर वह रस्सा लटक रहा था जिसको खींचने से पिघला लोहा नीचे गिरता था। उससे थोड़ी दूर ऊपर वह स्थान था जहाँ एक व्यक्ति बैठ कर कच्चा लोहा भट्ठी में डालता था। वह कूद कर उस स्थान पर चढ़ गयी और उसने अपने शरीर का संपूर्ण बल एकत्र कर उस रस्से को खींच दिया। पिघला लोहा नीचे खड़े पाहन के विशाल वक्ष पर गिरा।

निर्माणशाला पाहन के हृदयविदारक चीखों से गूँज उठी।

कुछ ही क्षणों में उसकी त्वचा और माँसपेशियाँ गल गयीं, परंतु उससे पूर्व ही वह मृत हो चुका था।

पाहन के साथ आये सैनिक स्तब्ध अपने स्थान पर जड़ हो गए। कनिका धीरे से उस स्थान से नीचे उतरी। उसका शरीर भट्ठी की ऊष्मा से झुलस रहा था, परंतु उसके हृदय में ठंडक थी। उसने अपनी तलवार उठाई और दोनों सैनिकों की ओर बढ़ी। परंतु इस क्षण उसके मुख पर ऐसे हिंसक भाव थे कि वह दोनों बिना द्वंद्व किये ही वहाँ से भाग गए।

तब तक कुछ कर्मचारी भी भीतर आ गए थे और आपस में धीमे स्वर में बातें कर रहे थे, परंतु किसी में इतना साहस नहीं था कि वह कनिका से कुछ पूछ पाता।

कनिका ने भी अधिक समय तक वहाँ रुकना उचित नहीं समझा और तीव्रता से बढ़ती हुई उस निर्माणशाला से बाहर निकल गयी।

अध्याय 9
ताम्रपत्र

फनिक को मरुभूमि के उस भवन में आये हुए दो दिवस बीत चुके थे। वर्षों से जिस कार्य को वह तपस्या की भांति कर रहा था, वह अब फलित होने जा रहा था।

मात्र कुछ प्रहर और!

पंथ के निर्माण का जो उद्देश्य था, वह पूर्ण होने वाला था।

उसने कक्ष में इधर उधर बिखरे पत्रों को एकत्र किया और उनमें अग्नि लगा दी। उनका कार्य समाप्त हो चुका था। उसे वह ज्ञान प्राप्त हो चुका था जिसे प्राप्त करने के लिए वह वर्षों से भटक रहा था।

मरुस्थल के निकट स्थित यह वही भवन था जिसमें एक वर्ष पूर्व गोपिक रहता था जिसकी रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु हो गयी थी। उस समय उसने श्रित को आदेश दिया था कि वह मरुभूमि में किसी अन्य व्यक्ति को ढूँढे जो उसकी सहायता कर सके। और श्रित ने अपना कार्य भलीभांति पूर्ण किया था।

उसी समय कक्ष में श्रित और पंथ के दो अन्य सदस्यों ने प्रवेश किया। “प्रणाम आचार्य फनिक!” तीनों ने एक स्वर में उसका अभिवादन किया।

फनिक को मानो उनका स्वर सुनाई ही न दिया हो, उसकी दृष्टि तो उस वस्तु पर टिकी हुई थी जो श्रित के हाथों में थी। श्रित भी फनिक का आशय समझ गया। उसने आगे बढ़कर वह बेलनाकार वस्तु फनिक को दे दी।

फनिक ने पीतल धातु से निर्मित उस वस्तु ध्यानपूर्वक अपने हाथों में लिया, मानो वह संसार की सर्वाधिक अनमोल वस्तु हो।

“उसने अपना वचन पूर्ण किया।” उसे श्रित का स्वर सुनाई दिया।

फनिक ने धीरे से अपना सिर हिलाया। “उसे आश्वस्त करो, हम भी अपना वचन अवश्य पूर्ण करेंगे।” उसकी उँगलियाँ उस बेलनाकार वस्तु के सतह पर घूम रही थीं, “सभी तैयारियाँ आज संध्या तक पूर्ण कर लो। कल प्रातः ही हम अनुष्ठान आरंभ कर देंगे।”

“अवश्य!” श्रित ने कहा और अन्य दो पंथ के सदस्यों के साथ कक्ष से निकल गया। यह फनिक के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण क्षण था और ऐसे समय में वह एकांत में रहना ही पसंद करता था।

उनके जाने के पश्चात फनिक धीरे से अपने आसन पर बैठ गया। उस खोखले बेलन को मात्र ऊपरी भाग से ही खोला जा सकता था जहाँ अग्नि कुल की मुहर लगी हुई थी। मुहर के लिए भी पिघले हुए पीतल का प्रयोग किया गया था जिसका मात्र एक ही अर्थ था - उसे दो सहस्त्र वर्षों से खोला नहीं गया था। यदि सभी तथ्य सही थे, तो उसके भीतर एक विशेष ताम्रपत्र रखा हुआ था। *उसकी यात्रा का अंतिम पड़ाव!*

सहसा उसे उस दिन का स्मरण हो आया जब उसने प्रथम बार आदिपशुओं के विषय में सुना था, जिस दिन वास्तविक रूप से इस यात्रा का आरंभ हुआ था। वह बीस वर्ष पूर्व की बात थी जब वह ज्ञानशिला का एक शिष्य था। यद्यपि सभी लोग उन्हें मिथक मानते थे परंतु आश्रम के छात्रों के मध्य आदिपशुओं की बातें कौतूहल का विषय होती थीं। उसे ज्ञात था कि जिस प्रकार वर्तमान की घटनाएँ भविष्य में जाकर मिथक का रूप ले लेती हैं, उसी प्रकार वर्तमान के मिथकों का भी भूतकाल में कोई न कोई अस्तित्व अवश्य रहा होगा।

अग्नि के बिना धुआं उठता! वह इस सत्य से परिचित था। ज्ञानशिला के विशाल संग्रह में कई प्राचीन अभिलेख रखे हुए थे और उसे विश्वास था कि उनमें अवश्य ऐसी सूचना होगी जो मिथक को सत्य से पृथक कर सकती थी। परंतु प्रधानाचार्य सदैव उसे मना कर देते थे।

“इन अभिलेखों में कुछ विशेष नहीं, मात्र ऐतिहासिक तथ्य भरे हुए हैं।” प्रधानाचार्य ने उससे कहा था।

उसने अनेक प्रयास किये परंतु असफल रहा। हालाँकि उन सभी मिथकों ने उसके मस्तिष्क में एक रूप रेखा अवश्य बना दी थी। ज्ञानशिला से शिक्षा पूर्ण कर वह उत्तराँचल के एक गुरुकुल में आचार्य बन गया, परंतु उसे यह कार्य अधिक समय तक पसंद नहीं आया।

उसका मत था कि यदि आदिपशुओं से जुड़े मिथकों में कोई सत्यता थी तो उसके प्रमाण भी अवश्य मिलेंगे। *सत्य को सदैव के लिए छुपाया नहीं जा सकता।* काल की पर्तों में दबा हुआ वह हमारे निकट ही रहता है। प्रकट होने की प्रतीक्षा में। मात्र आवश्यकता थी उसे ढूँढने की। और यह कार्य एक गुरुकुल में रहते हुए कभी भी नहीं पूर्ण हो सकता था।

उसने कुछ ही समय में आचार्य का कार्य छोड़ दिया और शीघ्र ही पंथ के निर्माण का निर्णय लिया। इस कार्य के लिए उसे धन की आवश्यकता थी जो उसके लिए समस्या थी।

उसने कुछ ऐसे युवकों को चयनित किया जो धनाढ्य परिवारों से थे और उन्हें भी वही स्वप्न दिखाया। उनमें से अधिकांश उसकी सहायता के लिए तैयार हो गए और ग्यारह वर्षों में पंथ में कुछ ऐसे व्यक्ति भी सम्मिलित हो गए थे जो उसकी एक आज्ञा पर अपना शीश भी कटा सकते थे।

अब वह भी साक्षी बनेंगे उस शक्ति के आगमन का, फनिक ने सोचा। *पंथ के सभी सदस्यों को उनकी सेवा का फल अवश्य प्राप्त होगा।*

उसने पीतल की मुहर को तोड़ा और सावधानी से उसके भीतर रखे हुए ताम्रपत्र को निकाला। उसके हाथ काँप रहे थे। ताम्रपत्र पर विशिष्ट रसायन लगाये गये थे जिससे वह इतने वर्षों पश्चात भी पूर्णतः सुरक्षित था। *यदि अब तक के तथ्य सत्य हैं तो शेष तथ्य भी अवश्य सत्य होने चाहिए।*

लगभग दो सहस्त्र वर्ष पूर्व किसी ने उस विशिष्ट ताम्रपत्र पर एक विशेष अनुष्ठान और उससे संबंधित मंत्रों के विषय में लिखा था। फनिक ने दीर्घ श्वास ली और उस ताम्रपत्र को पढ़ने लगा। एक ऐसे अनुष्ठान के विषय में जिससे वह एक आदिपशु को नियंत्रित कर सकता था।

वहाँ से कुछ दूर स्थित अग्नि कुल संप्रदाय आश्रम में महर्षि वह्निमित्र क्रोधित अवस्था में अपने कार्यालय में इधर उधर टहल रहे थे। “यह कार्य अवश्य ही किसी आश्रम वासी का ही है। किसी बाहरी मनुष्य को उस ताम्रपत्र के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं था।”

कार्यालय में उनके अतिरिक्त आचार्य मद्रिक, आचार्य सोवर्मा और आचार्य तिम्नलेश भी उपस्थित थे जो इस क्षण शांतिपूर्ण मुद्रा में खड़े थे। आश्रम प्रमुख के कार्यालय में रखी हुई पीतल धातु से निर्मित एक विशेष बेलनाकार वस्तु अपने स्थान पर नहीं थी। कार्यालय में उसे ऐसे स्थान पर रखा गया था जहाँ से वह सरलता से नहीं दिखती थी और बिना वहाँ प्रवेश किये उस वस्तु को हटाना असंभव था।

आश्रम में कार्यालय ऐसे स्थान पर निर्मित था कि बाहर से वहाँ तक दिन अथवा रात्रि में भी छिप कर पहुँचना असंभव था। इसी कारण महर्षि वह्निमित्र बार बार इसी तथ्य को दुहरा रहे थे कि यह किसी आश्रमवासी का कार्य है। “पिछले कुछ दिनों में कोई भी बाहरी मनुष्य आश्रम में नहीं आया है।”

उन्हें भली भांति स्मरण था कि जब वह ज्ञानशिला से संगोष्ठी के पश्चात आश्रम लौटे थे, तब वह बेलनाकार वस्तु अपने स्थान पर ही रखी हुई थी। ज्ञानशिला में निर्णय सभा के पश्चात प्रधानाचार्य वलक्ष ने उन्हें और महर्षि अम्बं को कुछ ऐसी बातें बतायीं थीं जिनपर उसे इस क्षण तक विश्वास नहीं हो रहा था। *आदिपशुओं का अस्तित्व उतना ही सत्य है जितना आकाश में सूर्य का अस्तित्व!* जब वलक्ष ने यह कहा था तब कुछ क्षणों तक उसके मस्तिष्क में यह बात गूँज रही थी। उसने सदैव उनके अस्तित्व को नकारा ही था और अब यह...। वह आदिपशु अब एकद्वीप के भविष्य पर एक संभावित संकट थे। *और वह ताम्रपत्र उस संकट का माध्यम बन सकता था।*

वह्निमित्र ने धीरे से स्वयं के सिर को हिलाया और अपना ध्यान वर्तमान समस्या पर केंद्रित करने का प्रयत्न किया। यदि वलक्ष ने उसे यह नहीं बताया होता कि उस बेलनाकार खोखले ढांचे में रखे हुए ताम्रपत्र में क्या लिखा है तो उसे स्वयं कभी विश्वास नहीं होता। उस विषय में लोगों के कई मत थे, जिनमें सर्वाधिक प्रचलित मत यही था कि उस ताम्रपत्र में अवश्य ही आदिपशुओं से संबंधित कोई तथ्य है। स्वयं उसने कभी इस मत पर विश्वास नहीं किया। परंतु परिस्थितियाँ अब पूर्ण रूप से बदल चुकी थीं। वर्तमान में उस ताम्रपत्र का अपने स्थान से विलुप्त होना इस बात का प्रमाण था कि कोई अन्य भी उस विषय में जानता था।

इस क्षण उसकी प्राथमिकता यही थी कि शीघ्र ही उस ताम्रपत्र को वास्तविक स्थान पर पहुँचाया जाये।

“आपको इस विषय में कब ज्ञात हुआ महर्षि?” आचार्य सोवर्मा ने प्रश्न किया।

“आज प्रातःकाल ही। कल संध्या समय मैंने स्वयं उसे यथा स्थान देखा था।” वह्निमित्र ने उत्तर दिया।

“हमारे लिए क्या आदेश है महर्षि?”

“हमें अतिशीघ्र ही उस ताम्रपत्र को ढूँढ यहाँ वापस लाना होगा।” वह्निमित्र धीरे से अपने आसन पर बैठ गए।

“क्षमा करियेगा महर्षि, परंतु क्या हम जान सकते हैं कि उस ताम्रपत्र में क्या है?” आचार्य तिम्नलेश ने तनिक संकोच भरे स्वर में पूछा।

महर्षि ने अपनी दृष्टि उठाई और कुछ क्षणों तक तिम्नलेश के मुख को देखा, परंतु कोई उत्तर नहीं दिया।

“संभवतः मंत्र विद्या के मंत्र।” आचार्य मद्रिक ने धीरे से कहा, “कइयों का यही मत है।”

“यह पूर्णतः असत्य है,” सोवर्मा ने धीरे से अपना सिर हिलाया, “मंत्र विद्या के मंत्र कहीं भी लिखित नहीं हैं।”

“हाँ, परंतु यह नियम आश्रमों की स्थापना के पश्चात बनाये गए थे। और वह ताम्रपत्र उससे भी प्राचीन हो सकता है।” मद्रिक अपने मत पर टिका हुआ था, “यदि यह सत्य नहीं है तो आप ही इसपर प्रकाश डालिए कि उस ताम्रपत्र में क्या लिखा है?”

“आदिपशुओं से संबंधित कोई तथ्य।” सोवर्मा ने कहा। दोनों अपने स्वर को धीमा रखने का प्रयत्न कर रहे थे, परंतु इसमें वह असफल रहे।

“उस ताम्रपत्र में क्या है और क्या नहीं, इसपर तर्क करना व्यर्थ है।” महर्षि वह्निमित्र ने तनिक झुंझलाहट भरे स्वर में कहा, “हमें किसी भी दशा में वह ताम्रपत्र पुनः इस आश्रम में चाहिए।”

इससे पूर्व कि महर्षि उन्हें कुछ और बता पाते, सायक ने कक्ष में प्रवेश की अनुमति माँगी।

“आओ!” महर्षि ने प्रश्नवाचक दृष्टि से सायक को देखा। वह परेशान लग रहा था।

“महर्षि! मरुस्थल के निकट ग्राम से कुछ लोग अपनी समस्या लेकर आये थे।” सायक ने कहना आरंभ किया, “कुछ लोग मरुस्थल में किसी प्रकार का अनुष्ठान कर रहे हैं। ग्रामवासियों ने जब उनसे इस विषय में कुछ प्रश्न पूछे तो उन्होंने कुछ भी बताने से मना कर दिया। मात्र इतना ही नहीं, वह सभी मरुभूमि वासी नहीं हैं और उन्होंने ग्रामवासियों पर हिंसक प्रहार भी किये हैं।”

“हूँ!” महर्षि ने धीरे से कहा, “यह बात तुम हमें कुछ समय पश्चात भी बता सकते थे।”

“अ... एक अन्य बात भी है महर्षि।” सायक ने शीघ्रता से आगे जोड़ा, “अन्यथा मैं आपके कार्य में बाधा नहीं उत्पन्न करता।”

महर्षि ने कुछ कहने के स्थान पर पुनः प्रश्नवाचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

“ग्रामवासियों के अनुसार उनमें से एक के पास पीतल की बनी हुई एक बेलनाकार वस्तु थी।”

“क्या?” महर्षि का स्वर अप्रत्याशित रूप से तीव्र था, “क्या उन्होंने स्पष्ट बताया।”

सायक ने सहमति में अपना सिर हिलाया।

“परंतु वह हैं कौन?” आचार्य तिम्नलेश ने पूछा।

“यह तो ज्ञात नहीं हो सका,” सायक ने बताया, “उनके आक्रमण के कारण ग्रामवासी उनसे तनिक भयभीत भी हैं।”

“वह जो भी हैं, हमें उन्हें किसी भी दशा में रोकना होगा।” महर्षि ने कहा, “वह ताम्रपत्र शीघ्र ही अपने वास्तविक स्थान पर होना चाहिए।”

“परंतु यह प्रश्न तो अभी भी यथावत है कि आश्रम से वह ताम्रपत्र किसने चुराया।” मद्रिक ने पूछा।

“इस विषय में मैं अभी भी अपने मत पर दृढ़ हूँ कि यह कार्य अवश्य ही किसी आश्रम वासी का है।” महर्षि वह्निमित्र अब पुनः अपने कक्ष में एक दिशा से दूसरी दिशा में टहलने लगे थे, “यदि हम उन्हें बंधक बना सकें तो हमें इस प्रश्न का उत्तर अवश्य प्राप्त हो जायेगा कि किस आश्रमवासी ने उन्हें यह ताम्रपत्र दिया है।”

कक्ष में कुछ क्षणों के लिए शांति व्याप्त हो गयी जिसे आचार्य मद्रिक ने भंग किया, “परंतु यह कार्य करेगा कौन? क्या हम आचार्यों को वहाँ जाना चाहिए?”

"मेरे अनुसार यह उचित नहीं होगा," आचार्य तिम्नलेश ने कहा। वह सायक की ओर मुड़े, "वह कुल कितने लोग हैं?"

"ग्रामवासियों के अनुसार वह कुल पाँच लोग थे।" सायक ने ग्रामवासियों की बात दुहराते हुए कहा।

"हूँ।" आचार्य सोवर्मा किन्हीं गहरे विचारों में डूबे हुए थे, "क्या आप वही कहना चाह रहे हैं जो मैं समझ रहा हूँ?"

आचार्य तिम्नलेश के मुख पर स्वतः एक क्षीण मुस्कान प्रकट हो गयी, "जी आचार्य। मेरा मत है कि हमें आश्रम के शिष्यों को इस समस्या के समाधान हेतु भेजना चाहिए।"

अंतिम निर्णय के लिए सभी की दृष्टि महर्षि वह्निमित्र पर आकर टिक गयी जो धीमे धीमे अपना सिर हिला रहे थे, "उचित है।" कुछ क्षण पश्चात उन्होंने कहना आरंभ किया, "आचार्य तिम्नलेश, ऐसे छात्रों का चयन करने का कार्य आपका।"

"अवश्य।"

"एक प्रहर पश्चात सभी चयनित छात्रों को कार्यालय आने का आदेश दे दीजिये। वह सीधा यहाँ से ही मरुस्थल के लिए प्रस्थान करेंगे।" अंततः वह कक्ष में टहलने के स्थान पर अपने आसन पर बैठ गये। उन्हें शीघ्र ही जानना था कि यह कृत्य किसने किया था।

छात्रों के लिए बनाये गये भवनों की पश्चिम दिशा में वृक्षों की एक लंबी कतार थी। ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य की किरणें अपने संपूर्ण वेग से धरती को आच्छादित करती थीं, तब वृक्षों की शीतल छाया ही आश्रमवासियों को आश्रय देती थी।

शिखी, केतुभ और दत्र के साथ एक विशाल वृक्ष की छाया में बैठा हुआ था। महर्षि वह्निमित्र ने इस सत्र में शिखी को ग्रंथ की सैद्धांतिक कक्षाएँ लेने की आज्ञा दी थी और उसे न चाहते हुए भी उन विषयों को पढ़ना पड़ रहा था। उन कक्षाओं में पढ़ाये गए पाठ उसके मस्तिष्क में शीघ्रता से नहीं जाते थे, उन पाठों की अपेक्षा जो शस्त्र की कक्षाओं में पढ़ाये जाते थे। इसके लिए वह कभी कभार केतुभ की सहायता ले लेता था। आरंभ में उसे दत्र द्वारा सुझाया गया यह उपाय अधिक पसंद नहीं था, परंतु शीघ्र ही वह केतुभ पर भी विश्वास करने लगा था। हालाँकि कभी कभी वह केतुभ के नाटकीय व्यवहार पर झुँझला अवश्य जाता था।

"अब बताओ, महाग्रंथ और धर्मग्रंथ में मूल अंतर क्या है?" केतुभ ने शिखी से प्रश्न किया। उसके व्यवहार से स्पष्ट था कि उसे पढ़ाने में भी उतना ही आनंद आता है जितना पढ़ने में।

"महाग्रंथ एकद्वीप के प्रथम महाराज देवतुल्य की कथा है और धर्मग्रंथ महर्षि याचि की कथा। दोनों ही ग्रंथों में उनके जीवन की छोटी छोटी कहानियों और उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन है।" शिखी ने किसी रट्टू तोते की भांति बताया। उसे बस इस सत्र के समाप्त होने की प्रतीक्षा थी।

"उत्तम!" केतुभ ने प्रसन्न होते हुए कहा, "पूर्णतः सही उत्तर दिया तुमने। मुझे ज्ञात था कि तुम अवश्य ही एक उत्तम छात्र सिद्ध होगे।"

शिखी ने अपनी आँखें सिकोड़ी, उसे केतुभ का यह व्यवहार प्रसन्न नहीं आया। *क्या वह साधारण ढंग से मुझे पाठ नहीं पढ़ा सकता? जिस प्रकार आचार्य अपनी कक्षा में पढ़ाते हैं, जहाँ किसी को भी कुछ भी अतिरिक्त कहने की आज्ञा नहीं रहती।*

उसने दत्र की दिशा में देखा जो थोड़ी दूर बैठा अपनी लाठी में लगे खुटके को बार बार दबा रहा था। जैसे ही उसमें लगा नुकीला फल बाहर आता था, वह खुटके को वापस घुमा देता था जिससे वह पुनः अंदर चला जाता था। शिखी की भांति वह भी ग्रंथ की कक्षा में जाता था, परंतु कक्षा में पढ़ाये गए पाठ उसके लिए पर्याप्त थे। शिखी ने सर्वप्रथम उससे ही कहा था कि वह उसे पाठ समझा दे, परंतु यह उसके वश की बात नहीं थी। इस कारण उसने ही केतुभ का नाम सुझाया था।

"दोनों ही ग्रंथों में लगभग एक ही समयकाल का वर्णन है, परंतु इसके पश्चात भी कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिन्हें भिन्न भिन्न प्रकार से लिखा गया है।" केतुभ अभी भी बताये जा रहा था। "जैसे नामराक की कथा। महाग्रंथ के अनुसार देवतुल्य ने उसका वध कर दिया था, वहीं धर्मग्रंथ के अनुसार महर्षि याचि के उपदेश सुनकर वह सदैव के लिए वन में चला गया था।"

"परंतु यदि घटनाएँ एक हैं, तो उनके विवरण भिन्न क्यों हैं?" शिखी ने प्रश्न पूछा। केतुभ प्रायः जान बूझकर ऐसे तथ्यों का प्रयोग करता था जो सामने वाले के मस्तिष्क में जिज्ञासा उत्पन्न कर देते थे। "कौन सा विवरण सत्य है और कौन सा असत्य?"

कुछ कहने से पूर्व ही केतुभ अपना सिर हिलाने लगा, "यहाँ प्रश्न सत्य अथवा असत्य का नहीं है। यह प्रश्न है दृष्टिकोण का। अगणित मनुष्यों और घटनाओं को समाहित करने वाले ग्रंथों को मात्र एक व्यक्ति ने ही लिखा होता है। एक मनुष्य अपने दृष्टिकोण से शेष मनुष्यों को जिस प्रकार देखता है, वह उसी प्रकार का वर्णन लिखता है। वर्षों पश्चात जब हम उन्हें पढ़ते हैं तब उन्हें ही पूर्ण सत्य मान लेते हैं, जबकि वास्तविकता में वह मात्र एक मनुष्य का अनुभव होता है।" केतुभ ने अपनी बात पूरी करने के पश्चात शिखी की ओर ध्यान से देखा। उसके मुख पर दिख रहे भावों से स्पष्ट था कि उसे केतुभ द्वारा बताई गयी बातें पूर्णतः नहीं समझ में आई हैं।

"इसका एक सरल उदाहरण देता हूँ। यदि तुम युद्ध में लड़ रहे दो पक्षों के सैनिकों से यह पूछोगे कि वह युद्ध क्यों लड़ रहे हैं तो वह एक जैसा ही उत्तर देंगे, 'अपने कर्तव्य के निर्वहन के लिए।' जबकि एक दूसरे के लिए वह शत्रु हैं। अपने अपने दृष्टिकोण से दोनों सैनिक अपना कर्तव्य निभा रहे, परंतु एक दूसरे के लिए वह शत्रु हैं।" केतुभ ने पुनः समझाने का प्रयास किया।

"इससे पूर्व भी तुम्हें इसी प्रकार सरलता से समझाना चाहिए था।" शिखी ने कहा।

"एक दिन तुम आश्रम के छात्रों के सर्वाधिक प्रिय आचार्य बनोगे।" दूर बैठे दत्र ने केतुभ से कहा। वह अभी भी पूर्ववत अपना कार्य कर रहा था, परंतु यह भी स्पष्ट था कि वह उनकी बातें भी सुन रहा था।

"धन्यवाद दत्र!" केतुभ ने बिना दत्र की दिशा में देखते हुए कहा, वह अभी भी शिखी को समझा रहा था। "दृष्टिकोण का यह सिद्धांत हमारे जीवन के कई दर्शनों पर भी प्रयुक्त होता है जैसे मृत्यु।"

पवित्र अग्नि कृपा करे! इसे रोकना सरल नहीं। दूर बैठे दत्र ने मुस्कराते हुए सोचा।

"कुछ लोगों के लिए मृत्यु जीवन का अंत है और कुछ..."

"और कुछ लोगों के लिए मुक्ति का मार्ग।" शिखी ने केतुभ की बात को मध्य में काटते हुए कहा, "इस विषय में मैंने भी पढ़ा है। मृत्यु पश्चात जीवात्मा शरीर का त्याग करती है और ब्रह्मात्मा में विलीन हो जाती है और इस प्रकार वह जीवन के सभी भावों से मुक्त हो जाती है। सभी दुखों, सभी सुखों से मुक्त। परंतु जो मुझे समझ नहीं आता, वह यह है कि यदि मृत्यु ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है तो स्वयं मनुष्य के जीवन का क्या लक्ष्य है? क्या वह निरर्थक नहीं हो जाता?"

शिखी शांत हुआ तो वहाँ सन्नाटा पसर गया। उसने मात्र एक श्वास में ही पूरी बात समाप्त कर दी थी। दत्र भी अपनी लाठी को किनारे रख उनकी बातें सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

शिखी की बातों के प्रतिउत्तर में क्या कहा जाये, यह विचार करने में केतुभ को भी कुछ क्षण लग गए। "तुम्हारे प्रश्न पूर्णतः उचित हैं, और विचारणीय भी। परंतु ऐसा नहीं है कि उनके उत्तर नहीं हैं। हालाँकि वह तनिक जटिल हैं।" अंततः उसने कहा।

"हुँह! परंतु इस क्षण रहने दो।" शिखी ने अपने स्थान से उठते हुए कहा, "इन प्रश्नों पर हम अगली बार चर्चा करेंगे। बस किसी प्रकार यह सत्र समाप्त हो जाएँ।" उसने एक दीर्घ श्वास ली।

"यदि तुम्हें यह कठिन लगता है तो तुमने ग्रंथों की कक्षाएँ क्यों चुनीं?" केतुभ भी अपने स्थान से खड़ा हो गया। संध्या होने वाली थी और उससे पूर्व दत्र और शिखी को शस्त्र अभ्यास के लिए रंगशाला पहुँचना था।

"क्योंकि यह महर्षि वह्निमित्र का आदेश है।" दत्र ने उनकी दिशा में बढ़ते हुए उत्तर दिया।

"ओह! अब समझा।" केतुभ ने कहा।

"क्या समझ गए?" शिखी ने केतुभ को घूरा।

"यही कि महर्षि ने आदेश दिया है कि तुम्हारे लिए ग्रंथ की कक्षाएँ पढ़ना अनिवार्य है।" केतुभ सावधानीपूर्वक अपने शब्दों का चयन कर रहा था। "आश्रम में यह भी चर्चा है कि वह मंत्र विद्या के लिए तुम्हारा चयन करने वाले हैं।"

शिखी ने कोई उत्तर नहीं दिया। केतुभ ने खँखारकर अपना गला साफ करने के पश्चात पुनः पूछा, "क्या यह सत्य है?"

"महर्षि ने मुझसे इस विषय में कभी कोई चर्चा नहीं की।" शिखी ने धीमे स्वर में कहा। स्वयं उसने भी पिछले कुछ माह में कइयों के मुख से यही सुना था, परंतु उसे अभी भी यह ज्ञात नहीं था कि इन बातों का आधार क्या था? संभवतः महर्षि वह्निमित्र इसका उत्तर जानते थे, परंतु उसने उनसे इस विषय में प्रश्न पूछने का साहस कभी नहीं किया।

छात्र भवन के निकट पहुँचते ही केतुभ अपने कक्ष में चला गया और शिखी एवं दत्र रंगशाला की ओर बढ़ गए।

"तुम्हें अपने 'मृत्यु सिद्धांत' जैसे प्रश्नों के विषय में कम से कम लोगों से चर्चा करनी चाहिए," दत्र ने उससे कहा, "*'कम से कम'* से मेरा तात्पर्य है कि किसी से भी नहीं।"

"परंतु मैंने तो मात्र एक साधारण सा प्रश्न ही पूछा था।" दत्र ने सरलता से अपने कंधे उचकाए।

वह दोनों अभी रंगशाला के प्रवेश द्वार तक पहुँचे ही थे कि एक छात्र ने उन्हें मध्य में ही रोक दिया। "तुम दोनों के लिए आचार्य तिम्नलेश का संदेश है।" उस छात्र ने उनसे कहा।

"क्या?" दत्र ने कहा।

"उन्होंने कहा है कि तुम दोनों शीघ्र ही महर्षि वह्निमित्र के कार्यालय में पहुँचो।"

अध्याय 10
अभियान

अग्नि कुल संप्रदाय के प्रमुख महर्षि वह्निमित्र के कार्यालय में उपस्थित आचार्य तिम्नलेश ने अपने समक्ष आठों छात्रों को ध्यानपूर्वक देखा।

उत्तम! उन्होंने मन ही मन विचार किया, *उन पाँच व्यक्तियों को रोकने के लिए यह पर्याप्त होंगे।*

अपने आसन पर बैठे महर्षि वह्निमित्र ने स्वयं को शांत कर लिए था, परंतु उनका मस्तिष्क अभी भी सभी प्रकार की संभावनाओं पर विचार कर रहा था। उस कक्ष में उपस्थित आचार्यों और छात्रों ने संभवतः पहली बार महर्षि को इतना व्याकुल देखा था।

"आप सभी को एक विशेष कार्य के लिए चयनित किया गया है।" आचार्य तिम्नलेश ने छात्रों को संबोधित करते हुए कहना आरंभ किया। "कुछ समय पूर्व किसी ने कार्यालय से एक विशेष वस्तु चोरी कर ली है।"

तिम्नलेश ने एक क्षण रुककर सबके मुख को देखा और पुनः कहने लगा, "यह अक्षम्य कृत्य किसने किया है यह हमें नहीं ज्ञात, परंतु संयोग से हमें उस वस्तु की वर्तमान स्थिति ज्ञात है। कुछ व्यक्ति, जो कि मरुभूमि वासी नहीं हैं, उस वस्तु के साथ मरुस्थल के निकट देखे गए हैं। मात्र यही नहीं, उन्होंने ग्रामवासियों पर आक्रमण भी किया है। आप सभी का कार्य है कि उन व्यक्तियों से वह वस्तु पुनः प्राप्त करके उसे शीघ्र ही कार्यालय लाया जाये।"

सभी छात्रों ने तिम्नलेश की बात को समझने का प्रयत्न किया, परंतु वह पूर्ण रुप से स्थिति और उसकी गंभीरता को समझने में असमर्थ थे।

"वीतज, विकेश, शिखी, दत्र, कीयप, आतुन, जय और शालिक।" तिम्नलेश ने बारी बारी सभी छात्रों को देखा, "आप सभी विभिन्न युद्ध कलाओं में पारंगत है, एकद्वीप के सर्वश्रेष्ठ आश्रमों में से एक में आप सभी ने शिक्षा प्राप्त की है। हमारी सूचना के अनुसार वह पाँच हैं, आशा है आप आठ लोग यह कार्य करने में सक्षम होंगे।"

"अवश्य आचार्य!" आठों ने एक स्वर में कहा।

"उत्तम! परंतु इस कार्य आपका कई प्रकार के संकटों से सामना हो सकता है। आपमें से कोई यदि इस कार्य को न करना चाहे तो अभी भी वापस लौट सकता है।"

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सभा में कुछ क्षणों के लिए मात्र सबके श्वास लेने के ध्वनि सुनाई देती रही। वह सभी योद्धा थे और एक योद्धा किसी भी दशा में युद्ध से पीछे नहीं हटता।

"उचित है। जय आप सभी में आयु अनुसार सबसे बड़ा है। किसी भी संदेह की अवस्था में आप सभी उसी के निर्णय को प्राथमिकता देंगे।"

सबने मात्र सहमति में सिर हिलाया।

"परंतु वह वस्तु है क्या आचार्य?" जय ने पूछा।

"पीतल धातु से निर्मित एक बेलनाकार ढाँचा जिसके भीतर एक ताम्रपत्र है।" उत्तर स्वयं महर्षि वह्निमित्र ने दिया। वह अपने आसन से उठकर उन सभी के समक्ष पहुँचे, "वह वस्तु इस आश्रम की धरोहर है। आशा है आप सभी उसे वापस लाने के लिए अपना संपूर्ण प्रयास करेंगे।"

"आप सभी शीघ्र ही अपने शस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ लेकर आश्रम के मुख्य द्वार पर पहुँचिये," आचार्य तिम्नलेश ने वार्तालाप की डोर को पुनः अपने हाथों में लेते हुए कहा, "वहाँ आठ अश्व आपके लिए तत्पर हैं।"

आदेश प्राप्त होते ही आठों छात्रों ने उनका अभिवादन किया और कक्ष से चले गए।

"यह सभी अवश्य ही अपने कार्य में सफल होंगे।" उनके जाने के पश्चात महर्षि ने धीरे से कहा, मानो स्वयं को सांत्वना दे रहे हों।

"मैंने महर्षि को कभी इतना चिंतित नहीं देखा।" अपने कक्ष की ओर बढ़ते हुए शिखी ने कहा। हालाँकि उसका कथन असत्य था। लगभग एक वर्ष पूर्व जब उसने वन में मायावियों का वध किया था तब भी महर्षि इसी प्रकार चिंतित थे।

"मैं तुम्हारी तरह महर्षि के मुख के भाव तो नहीं देख सकता था, परंतु हाँ, उनका हृदय स्पंदन और स्वर कुछ भिन्न था," दत्र ने कहा। "ऐसी क्या विशेषता है उस वस्तु में?"

"विशेषता उस ताम्रपत्र में है।" शिखी ने विचारपूर्ण स्वर में कहा। महर्षि का व्यवहार उसे अत्यंत विचित्र प्रतीत हो रहा था।

शीघ्र ही वह अपने कक्ष तक पहुँच गया। "शीघ्र ही मुख्य द्वार पर भेंट करो।" उसने दत्र से कहा।

दत्र ने धीमे से अपना सिर हिलाया और अपने कक्ष की दिशा में बढ़ गया। प्रत्येक दिन उसी मार्ग पर आवागमन करने के पश्चात अब उसे मार्ग ढूँढने के लिए अपनी लाठी की भी आवश्यकता नहीं थी।

शिखी ने अपने कक्ष से अपनी तलवार, जल के लिए मशक और कुछ अन्य वस्तुएँ एकत्र कीं। उसके पश्चात कुछ विचार कर वह आश्रम द्वार की ओर बढ़ने से पूर्व महर्षि वह्निमित्र के कार्यालय की ओर बढ़ गया।

कार्यालय में महर्षि के अतिरिक्त कोई नहीं था। आचार्य तिम्नलेश एवं अन्य आचार्य वहाँ से जा चुके थे। शिखी को अपने समक्ष देख महर्षि तनिक आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने प्रश्नवाचक दृष्टि से उसे देखा।

शिखी ने झुककर उन्हें प्रणाम किया।

"आयुष्मान भव!" उनके मुख पर एक स्नेहपूर्ण मुस्कान प्रकट हो गयी।

"आज्ञा दें महर्षि। मैं आपको वचन देता हूँ कि उस ताम्रपत्र को लिए बिना आश्रम नहीं लौटूँगा।" शिखी की दृढ़ता देख महर्षि ने कई प्रहर पश्चात चैन की श्वास ली। उनके हृदय में सदैव ही शिखी के लिए एक कोमल स्थान था। संभवतः उसके जन्म के कारण, प्रत्येक शिशु को अधिकार होता है कि वह अपने माता पिता के विषय में जाने, परंतु शिखी इससे वंचित था। अथवा उसके भिन्न रुप के कारण; प्रकृति ने उसे न पूर्ण स्त्री बनाना स्वीकार किया था और न ही पूर्ण पुरुष। अथवा उसकी लगन के कारण, इतनी कम आयु में ही वह आश्रम के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में से एक था।

महर्षि ने वहाँ से प्रस्थान कर रहे शिखी को रोका। उन्होंने अपने आसन के निकट रखी हुई अपनी तलवार को उठाया और शिखी की ओर बढ़ाया, “इसे लो। अग्नि तुम्हारी रक्षा करेगी। *अग्नि अर्तयम पापनाशकम।*”

शिखी ने काँपते हाथों से उस तलवार को स्वीकार किया। उसने अनेकों बार उस तलवार को देखा था, परंतु यह प्रथम अवसर था जब उसने उसका स्पर्श किया था। उसकी मूठ पर एक विशेष प्रकार की अग्नि ज्वाला अंकित थी जो दर्शाती थी कि वह एक विशिष्ट शस्त्र था। *अग्नि अर्तयम पापनाशकम* उसने भी मन ही मन दुहराया, *अग्नि सभी पापों का नाश करती है।*

“महर्षि! यदि आज्ञा हो तो एक प्रश्न पूछना चाहूँगा।” शिखी की दृष्टि अभी भी उस तलवार पर ही टिकी हुई थी।

“अवश्य। क्या पूछना चाहते हो?” महर्षि ने शांत स्वर में कहा।

“वास्तविकता में उस ताम्रपत्र में है क्या?” उसने अपनी दृष्टि तलवार से उठाई और महर्षि के मुख को ध्यान से देखने लगा। *अवश्य ही उस ताम्रपत्र में कुछ विशेषता होगी।*

महर्षि कुछ क्षण मौन रहे, मानो निर्णय ले रहे हों कि वह शिखी को क्या उत्तर दें। “वास्तविकता में उस ताम्रपत्र में क्या है, यह किसी को ज्ञात नहीं।” अंततः उन्होंने कहा। पूर्णतः ज्ञात होने के पश्चात भी उन्होंने उसे सत्य नहीं बताया, “आज से दो सहस्त्र वर्ष पूर्व इस आश्रम के संस्थापक महर्षि अग्नि ने उस ताम्रपत्र पर कुछ लिखा था। उस समय से ही वह ताम्रपत्र इस आश्रम में रहा है। इतने वर्षों में उससे कई प्रकार के मिथक जुड़ चुके हैं। सबके भिन्न भिन्न मत हैं; हालाँकि एक बात पूर्णतया सत्य है। किसी दुष्ट अथवा लोभी मनुष्य के हाथों में उस ताम्रपत्र का एक ही अर्थ है - विनाश।” महर्षि ने अपनी आँखें मूँद लीं, मानो वह कुछ कल्पना कर रहे हों। “और हमें उस अपेक्षित विनाश को घटित होने से पूर्व ही रोकना होगा।”

आश्रम से मरुस्थल के निकट स्थित अंतिम ग्राम तक पहुँचने में उन्हें एक प्रहर से भी कम समय लगा। उन्हें जो अश्व प्रदान किये गए थे, वह सर्वोत्तम गुणवत्ता वाले थे। प्राप्त सूचना के अनुसार आरोपितों को अंतिम बार इसी ग्राम से मरुस्थल की ओर जाते हुए देखा गया था। इसीलिए उन्होंने निर्णय किया कि कुछ भी करने से पूर्व ग्रामवासियों से कुछ प्रश्न पूछे जाएँ।

यह वही ग्राम था जहाँ पिछले वर्ष शिखी, दत्र और केतुभ के साथ कर भिक्षा के लिए आया था। शिखी के लिए सबसे अधिक आश्चर्यचकित करने वाली बात यह थी कि जिस व्यक्ति का शव उन्हें जली हुई अवस्था में पिछले वर्ष प्राप्त हुआ था, आरोपित व्यक्तियों में से एक उसी भवन में रह रहा था।

“वह व्यक्ति यहाँ कुछ माह पूर्व ही आया था।” एक ग्रामवासी ने उन्हें बताया, “कई अन्य बाहरी व्यक्ति भी उससे मिलने निरंतर आते रहते थे, परंतु पिछले एक माह में बाहरी व्यक्तियों के आने की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी थी।”

“वह सभी व्यक्ति कभी भी ग्रामवासियों से कुछ भी बातें नहीं करते थे, इसी कारण हमें तनिक भी अनुमान नहीं था कि वह वास्तव में क्या करते हैं।” दूसरे ग्रामवासी ने उन्हें बताना आरंभ किया, “हालाँकि पिछले कुछ दिनों में हमें यह अवश्य ज्ञात हो गया था कि वह छिप छिपाकर कुछ अनिष्ट कार्य ही करते हैं।”

जय ध्यानपूर्वक सभी की बातें सुन रहा था और आवश्यक प्रश्न पूछ रहा था।

शिखी की दृष्टि विशाल मरुस्थल की ओर टिकी थी, जहाँ अस्त हो रहे सूर्य की रश्मियाँ अत्यंत अद्भुत दृश्य उत्पन्न कर रही थीं। आकाश में स्वर्ण - केसरी रंग के मेघ देख कर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो किसी ने आकाश में मुट्ठी भर रेत छिड़क दी हो।

आखिर क्या रहस्य छिपा था उस विशाल मरुस्थल में।

“अंतिम बार आपने उन्हें कहाँ देखा था?” जय ने ग्रामवासियों से प्रश्न पूछा। जब उन्हें सूचना मिली थी कि उनके शिकायत की जाँच करने के लिए आश्रम से कुछ लोग आये हैं तो कई ग्रामवासी मात्र कौतूहल वश वहाँ एकत्र हो गए थे।

“मरुस्थल की ओर जाते हुए।” एक वृद्ध ने उत्तर दिया, “अंतिम बार हमने उन्हें मरुस्थल की ओर जाते हुए देखा था। उस व्यक्ति से मिलने जब भी कोई बाहरी व्यक्ति आता था तो कुछ ही समय में चला जाता था। परंतु पिछले दो दिनों से चार व्यक्ति यहीं रुके हुए थे। वह कुछ प्रहर के लिए कहीं जाते भी थे, तो पुनः लौट कर यहीं आते थे। फिर जब वह सभी ढेर सारी वस्तुएँ लेकर मरुस्थल में जाने लगे तो मैंने उनसे अंततः पूछ ही लिया कि वह मरुस्थल में क्यों जा रहे हैं।”

वह वृद्ध आगे बोलने से पूर्व कुछ क्षण रुका। उसकी भाव भंगिमा से स्पष्ट था कि अभी उसने मुख्य बात बताई भी नहीं है। “परंतु मेरे प्रश्न पूछने पर उनमें से एक क्रोधित हो उठा। वह ऊँचे स्वर में मुझसे कहने लगा कि मैं उनके कार्य में हस्तक्षेप न करूँ। तभी मैंने उनके पास वह पीतल की बेलनाकार वस्तु देखी।”

“तो क्या आप पहले से उस वस्तु को पहचानते थे?” विकेश ने उस वृद्ध को मध्य में टोका।

“हाँ।” उस वृद्ध ने सहमति प्रकट की। इसके साथ ही उसके मुख पर गर्व के भाव भी प्रकट हो गए, “आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व मैंने भी आश्रम से शिक्षा प्राप्त की थी। उन्हीं दिनों मैंने कार्यालय में उस वस्तु को देखा था और इसी कारण मुझे यह ज्ञात था कि वह वस्तु वास्तविकता में क्या है। उसपर लगी अग्नि कुल की मुहर दुर्लभ है, इसीलिए मैं उसे पहचान गया। उसे देखते ही मैंने उनसे उस वस्तु के विषय में भी प्रश्न पूछना आरंभ कर दिया। तब वह व्यक्ति जो मुझसे ऊँचे स्वर में बात कर रहा था वह अत्यधिक क्रोधित हो गया और उसने मुझे धक्का दे दिया।”

वृद्ध व्यक्ति ने एक गहरी श्वास ली। अपने साथ हुए अपमान को दुहराना उसके लिए सरल नहीं था। “मैं सँभल नहीं पाया और भूमि पर गिर पड़ा। यह देखते ही वहाँ उपस्थित अन्य ग्रामवासी भी मेरी सहायता के लिए आ गए। उनमें मेरा पौत्र भी था जिसने बिना कुछ कहे सीधा उस व्यक्ति पर आक्रमण कर दिया। मेरा पौत्र एक विकट योद्धा है, परंतु वह व्यक्ति भी असाधारण योद्धा था। मेरे पौत्र का एक भी प्रहार उसे छू नहीं पाया और उसके मात्र एक ही प्रहार से मेरा पौत्र धराशायी हो गया। इसके पश्चात हममें से किसी ने उन व्यक्तियों से कुछ नहीं कहा और वह भी बिना कुछ कहे मरुस्थल में बढ़ गए।”

“आपका पौत्र अब कैसा है?” दत्र ने पूछा।

“जीवित है।” वृद्ध ने शांत स्वर में कहा, “वैद्य के अनुसार उसकी एक पसली की हड्डी टूट गयी है। उसे स्वस्थ होने में कुछ माह लगेंगे।”

“क्या वह पैदल ही गए थे या ...?” जय ने पूछा परंतु उससे पूर्व ही उस वृद्ध ने उत्तर देना आरंभ कर दिया।

“वह पैदल ही गए हैं। रेत पर अश्व अधिक समय तक चल नहीं पाते। हाँ, उनके पास वस्तुएँ अधिक थीं इसी कारण उन्होंने एक ऊँट भी अपने साथ लिया था।” उसने बताया।

"हूँ! इसका अर्थ है कि वह पैदल ही बढ़े होंगे।" जय ने धीरे से कहा और अपने साथियों की ओर मुड़ा, "भले ही वह हमसे कई प्रहर पूर्व यहाँ से जा चुके हैं, परंतु मेरा अनुमान है कि वह अधिक दूर नहीं गए होंगे। यदि उन्हें लंबी यात्रा करनी होती तो वह रात्रि का समय चुनते, न कि दिन का जब सूर्य की ऊष्मा असहनीय हो जाती है।"

"मैं सहमत हूँ।" शिखी ने कहा, "मेरा यह भी अनुमान है कि उन्हें रात्रि से पूर्व कहीं पहुँचना था।"

"कहाँ?" दत्र ने पूछा।

"स्पष्ट है कि उन्हें मरुस्थल के मध्य ही कहीं जाना था। दिन अथवा रात्रि, मरुस्थल को पार करना असंभव है, वह भी तब जब अन्य मार्गों के रूप में कई विकल्प हैं।"

जय ने भी सहमति में अपना सिर हिलाया, "रात्रि घिरने वाली है। हमें भी शीघ्र ही उनके पीछे जाना होगा। हम भी अपने अश्वों को यहीं छोड़ देंगे और पैदल ही आगे बढ़ेंगे।"

सभी ने जय की बातों से सहमति प्रकट की। तभी शिखी को कुछ स्मरण हो आया और वह ग्रामवासियों की ओर मुड़ा, "आपने बताया कि बाहरी व्यक्ति भी इस भवन में दो दिनों से रुके हुए थे। जहाँ तक मेरा अनुमान है वह अवश्य ही अश्व के साथ यहाँ आये होंगे। यदि वह यहाँ से मात्र एक ऊँट के साथ गए हैं तो उनके अश्व कहाँ हैं?

"इस भवन के पीछे।" एक ग्रामवासी ने बताया, "वहाँ खाली स्थान पर छप्पर छाया गया है जहाँ वह लोग अपने अश्व बाँधते थे। इस समय भी कुछ अश्व वहाँ बँधे हैं।"

"तुम अश्वों के निकट जाकर जाँच करो।" जय ने शिखी से कहा, "मैं कुछ लोगों के साथ जाकर भवन के भीतर भी एक बार जाँच कर लेता हूँ। यदि हम कुछ प्राप्त हो जायेगा तो हमें उनके पीछे जाने में सहायता मिलेगी।"

"उचित है, कुछ समय पश्चात हम पुनः यहीं मिलेंगे।" शिखी ने कहा और दत्र एवं आतुन के साथ भवन के बगल में बनी पगडंडी पर बढ़ गया। उस मार्ग पर अश्वों के पैरों के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

जैसा कि उन्हें ग्रामवासियों ने बताया था, भवन के पीछे छाए गए छप्पर के नीचे इस समय भी अश्व बंधे हुए थे। शिखी ने उन्हें गिना, वहाँ कुल छः अश्व बंधे थे। *अनुमान से अधिक अश्व!*

"यह अश्व अत्यंत बलशाली है।" दत्र ने एक अश्व की पीठ सहलाते हुए कहा।

"सभी अश्व ऐसे ही हैं।" आतुन ने कहा। "आश्रम से हमें जो अश्व मिले हैं यह उनसे भी उत्तम श्रेणी के प्रतीत होते हैं।"

"यदि ऐसा है तो इनका मूल्य भी बहुत अधिक होगा।" दत्र दूसरे अश्व के निकट पहुँचते हुए बोला।

"हाँ। यह जो भी थे, उनके पास पर्याप्त मात्रा में धन था।" शिखी सभी अश्वों की पीठ में लगी काठ को जाँच रहा था। वह जो भी थे, इतनी शीघ्रता में थे कि उन्होंने अश्वों की पीठ से काठी को भी नहीं निकाला था।

क्या करना चाहते हैं यह लोग।

तभी उसे एक अश्व की काठी में फँसा हुआ एक पत्र मिला। उसने उसे पढ़ना आरंभ किया तो उसके मुख पर आश्चर्य और चिंता के भाव दिखाई देने लगे।

"क्या लिखा है इस पत्र में?" आतुन ने शिखी से पूछा।

शिखी ने वह पत्र आतुन की ओर बढ़ा दिया।

क्षितिज!

आचार्य फणिक का संदेश है कि शीघ्र ही मरुभूमि में उनके भवन पहुँचो। वर्षों से हम जो ढूँढ रहे थे, वह हमें मिलने वाला है। पंथ के अन्य सदस्यों को भी उनकी सहायता का फल प्राप्त होगा।

- श्रित!

"क्या अर्थ है इसका?" आतुन ने अपनी दृष्टि उस पत्र से उठाई जो आकार में अत्यधिक छोटा था।

"हमें यहाँ से चलना चाहिए। यहाँ कुछ भी शेष नहीं।" शिखी ने अंतिम बार उस स्थान को ध्यान से देखते हुए कहा।

तीनों पुनः भवन के अग्र भाग में पहुँचे जहाँ जय और अन्य पहले से ही उपस्थित थे।

"भवन में कुछ भी शेष नहीं है।" उन तीनों को देखते ही जय ने कहा, "यहाँ तक कि छोटे-छोटे बचे हुए टुकड़ों को भी जला दिया गया है। राख के अतिरिक्त हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।" उसकी दृष्टि आतुन के हाथों में लिए हुए पत्र पर थी, "तुम्हें कुछ प्राप्त हुआ?"

"हाँ, यह पत्र एक अश्व की काठी में था।" आतुन ने वह पत्र जय की ओर बढ़ा दिया।

उस छोटे से पत्र को पढ़ते ही जय ने भी वही प्रश्न पूछा, "क्या अर्थ है इस पत्र का?" उसने अपनी दृष्टि शिखी पर टिका दी।

"इसका अर्थ है कोई कुछ ढूँढ रहा था, वह भी कई वर्षों से। इस भवन में जो व्यक्ति रहता था, संभवतः उसका ही नाम आचार्य फणिक है। 'पंथ' और 'अन्य सदस्य', इससे ज्ञात होता है कि वह संख्या में कई हैं और यह भी स्पष्ट है कि उन्हें वह 'वस्तु' मिलने वाली है जिसे वह ढूँढ रहे थे।" शिखी ने अपना अवलोकन बताया।

"परंतु वह है क्या?" इस बार प्रश्न विकेश ने पूछा, "क्या वह लोग ताम्रपत्र के विषय में बातें कर रहे हैं?"

"मुझे नहीं लगता। संभवतः ताम्रपत्र में उस 'वस्तु' को प्राप्त करने के विषय में लिखा गया है।"

"हूँ!" जय ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुन रहा था और साथ ही साथ कुछ विचार भी कर रहा था, "और वह 'वस्तु' जो कुछ भी है, मरुस्थल के मध्य ही है।"

वह बाकियों की ओर मुड़ा और तनिक उच्च स्वर में बोला, "हमें शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करना है। अपने-अपने अश्वों को हम यहीं बाँध देंगे और पैदल ही मरुस्थल में बढ़ेंगे।"

सबने वैसा ही किया। अपने-अपने अश्वों को बाँधने के पश्चात वह सभी रेत के उस विशाल सागर में बढ़ गए। रात्रि की शीतलता में उन्हें आगे बढ़ने में अधिक कठिनाई नहीं आने वाली थी। आकाश में सूर्य अस्त हो चुका था, परंतु चंद्रमा का प्रकाश उन्हें मार्ग दिखाने के लिए पर्याप्त था।

अध्याय 11

मरुस्थल में युद्ध

आज की रात्रि महर्षि वह्निमित्र की आँखों से निद्रा बहुत दूर थी। बार-बार उनका ध्यान इस ओर चला जा रहा था कि मरुस्थल में क्या घट रहा होगा। यद्यपि वह इस विषय में पूर्ण आश्वस्त थे कि आश्रम के आठों छात्र अपना कार्य पूर्ण कर लेंगे, परंतु उन्हें चिंता इसकी थी कि कहीं उनके पहुँचने से पूर्व कुछ अनिष्ट न घट जाये।

पवित्र अग्नि रक्षा करे। वह अपने पर्यंक से उठे और निकट ही रखे घट से जल निकाल कर पीने लगे। कुछ प्रश्न उनके मस्तिष्क को सागर में उठे भँवर की भांति घुमा रहे थे। *'उन व्यक्तियों को उस ताम्रपत्र के विषय में कैसे ज्ञात था?' 'कौन हैं वह व्यक्ति?'* और सबसे मुख्य प्रश्न *'किसने उनके कार्यालय में रखे हुए ताम्रपत्र को चुराने का साहस किया?'*

वह उस आश्रम के प्रमुख थे; स्वयं उनके कार्यालय से कुछ गायब हो जाना अत्यंत निराशाजनक बात थी। परंतु शिखी ने उन्हें वचन दिया था कि वह उस वस्तु को लिए बिना आश्रम नहीं लौटेगा। इस विचार मात्र से ही उनके हृदय को शीतलता पहुँची।

वह अपना वचन अवश्य पूर्ण करेगा। मात्र उनके ही हृदय में शिखी के लिए वात्सल्य नहीं था, शिखी भी उन्हें आश्रम प्रमुख नहीं अपितु पितृतुल्य समझता था। वर्षों पूर्व जब शतबाहु काले वस्त्रों में लिपटे हुए एक शिशु को लेकर उनके पास आया था, तब उन्हें नहीं ज्ञात था कि उस शिशु से भविष्य में उन्हें कितना लगाव हो जायेगा।

वह कितना भी प्रयास करते थे, परंतु आश्रम के लोग शिखी के विषय में भिन्न प्रकार की बातें करते थे। कइयों का मत था कि उसे आश्रम में शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। वह बातें उसके कानों तक भी पहुँचती थीं परंतु उसने कभी भी किसी से शिकायत नहीं की। उन सभी बातों को वह अपने हृदय में समेटे रहता था। जैसे अग्नि सभी आहुतियों को अपने भीतर समाहित कर लेती है।

बिना किसी प्रतिरोध के वह उनके प्रत्येक आदेश का पालन करता था। उन्होंने उसे नृत्य की कक्षाएँ लेने को कहा, उसने वह भी किया। उन्होंने उसे ग्रंथ की कक्षाएँ लेने का आदेश दिया और उसने वह भी किया। परंतु मन ही मन वह जानते थे कि उसके भीतर जल रही अग्नि को शीतल करने के लिए यह पर्याप्त नहीं था।

मरुस्थल की भूमि पर्याप्त मात्रा में शीतल हो चुकी थी। रेत का स्वभाव ऐसा ही था, तनिक देर में गर्म और तनिक देर में शीतल।

निर्जीव प्रतीत हो रहे उस क्षेत्र में बढ़ते हुए उन आठों को कुछ समय बीत चुका था। जय ने अन्य साथियों से कहा, “यद्यपि ग्रामवासियों ने कहा है कि वह सभी व्यक्ति इसी दिशा में आगे बढ़े हैं, परंतु यहाँ से आगे हम सभी को दो भागों में बँट जाना चाहिए।”

“मैं भी सहमत हूँ।” शिखी ने कहा। एक ही दिशा में बढ़ते रहना अधिक श्रेयस्कर सिद्ध नहीं होता।

“परंतु क्या दो भागों में बँटने से हमारी शक्ति भी आधी नहीं रह जाएगी?” विकेश उस योजना से अधिक आश्वस्त नहीं प्रतीत हो रहा था।

आगे बढ़ने के स्थान पर वह रुककर उस योजना के लाभ और हानियों पर चर्चा करने लगे।

“ग्रामवासियों के अनुसार वह पाँच थे; हम दो भागों में बँट जायेंगे तो एक दल में चार रहेंगे।” जय कहने लगा, “मेरे अनुसार हममें से चार भी उनके लिए पर्याप्त होंगे। इसके पश्चात भी, यदि एक दल अधिक संकट का अनुभव करेगा तो वहीं रुककर और छिपकर दूसरे दल की प्रतीक्षा करेगा।”

“उचित है।” विकेश ने सहमति में सिर हिलाया।

“परंतु हम यह किस प्रकार सुनिश्चित करेंगे कि दोनों दल किसी एक समय पुनः मिल जायेंगे?” इस बार आतुन ने अपनी शंका प्रकट की। “रात्रि के समय दिशाहीन हो भटक जाना सामान्य है।”

“इसका उत्तर सरल है।” जय धीरे से मुस्कराया, “हम ज्यामिति की सहायता लेंगे। दोनों दल यहाँ से साठ अंश के कोण पर आगे बढ़ेंगे और एक प्रहर पश्चात पुनः साठ अंश के कोण पर मुड़ जायेंगे। उसके पश्चात आधे प्रहर और चलने पर दोनों दल पुनः मिल जायेंगे।”

ज्यामिति का यह नियम अत्यंत सरल था। दत्र ने मन ही मन जय की प्रशंसा की। साठ अंश के कोण पर मुड़ने से वह एक समबाहु त्रिभुज की रचना करते, अर्थात एक ऐसा त्रिभुज जिसकी तीनों भुजाएँ समान आकार की हों।

“यदि मार्ग में कोई समस्या आ गयी और दूसरा दल नहीं मिला तो पुनः इसी स्थान पर लौट आना है और प्रतीक्षा करनी है।” जय ने अपनी बात समाप्त की।

आकाश में चंद्रमा की स्थिति से समय का अनुमान लगाना उन सभी को ज्ञात था, इस कारण इस योजना में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं दिख रही थी।

वह सभी अपनी क्षमताओं के आधार पर दो भागों में बँट गए और जय के बताये अनुसार भिन्न दिशाओं में बढ़ गए। जय ने एक प्रहर की सीमा दो कारणों से चुनी थी। पहली यह कि एक प्रहर में वह जितनी दूरी तय करते उससे मरुस्थल का एक विशाल भाग नाप सकते थे। पूर्ण चंद्रमा भी उनके इस कार्य में सहायक ही सिद्ध होने वाला था। दूसरा कारण यह था कि उन्हें वापस लौटने में कुल तीन प्रहर लगने वाले थे और उससे अधिक समय उस मरुस्थल में व्यतीत करना घातक सिद्ध हो सकता था।

शिखी के दल में उसके अतिरिक्त दत्र, आतुन और विकेश थे। “मैं एक बार पुनः कहता हूँ, यदि संकट अधिक हो तो छिपकर दूसरे दल की प्रतीक्षा करना अथवा वापस लौट आना।” उनके अलग होते समय जय ने उनसे दुबारा कहा था।

वह बिना रुके आधे प्रहर तक एक ही सीध में चलते रहे। मार्ग में कई स्थान पर रेत के ऊँचे टीले थे जिन्हें पार करने के लिए उन्हें उसपर चढ़ना पड़ रहा था।

अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से वह दोनों दिशाओं का अवलोकन कर रहे थे कि उन्हें कुछ ऐसा संकेत दिखे जिससे स्पष्ट हो कि वहाँ कुछ मनुष्य हैं। और शीघ्र ही उन्हें वह संकेत प्राप्त हुआ।

बायीं दिशा में दूर उन्हें एक प्रकाश दिखाई दिया। *यह अवश्य वही होंगे,* शिखी ने सोचा, उसका अनुमान सत्य सिद्ध हुआ कि वह व्यक्ति मरुस्थल में अधिक दूर तक नहीं गए होंगे।

“क्या आरोपित व्यक्ति उस प्रकाश स्रोत के निकट होंगे?” विकेश ने उत्सुकतावश पूछा। दूर से यह ज्ञात करना असंभव था कि वह प्रकाश कैसा है और उसके निकट क्या है?

“क्या संभावना है कि वह एक वास्तविक प्रकाश स्रोत ही हो।” आतुन ने कहा।

"अर्थात?" विकेश ने अपनी भौंहों को ऊँचा करते हुए कहा।

"वह कहना चाह रहा है कि संभवतः वह वास्तविक प्रकाश न होकर मात्र मृगतृष्णा हो।" उत्तर शिखी ने दिया।

"मृगतृष्णा और रात्रि के समय?" विकेश आश्वस्त नहीं हुआ, "मेरा मत है कि हमें उसी दिशा में बढ़ना चाहिए। यदि उस स्थान पर कुछ नहीं हुआ तो हम एक घड़ी के भीतर पुनः इसी स्थान पर लौट आयेंगे और अपेक्षित दिशा में बढ़ेंगे।"

"क्या तुम कुछ अनुमान नहीं लगा सकते?" आतुन ने शांत खड़े दत्र से कहा।

"नहीं। रेतीली भूमि के कारण मैं असमर्थ हूँ।"

"हम उस प्रकाश की दिशा में ही बढ़ेंगे।" शिखी ने निर्णयात्मक स्वर में कहा। "परंतु सीधे मार्ग से नहीं।"

आतुन ने प्रश्नवाचक दृष्टि से उसे देखा।

"यह संभव है कि वहाँ कुछ मनुष्य हों जिन्हें हम यहाँ से न देख पा रहे हों, परंतु इसकी संभावना भी है कि वह हमें अपनी ओर बढ़ता देख सकते हैं और आक्रमण कर सकते हैं।" शिखी ने कहा, "इसी कारण हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि वह हमें सरलता से न देख पायें।"

"किस प्रकार?" विकेश ने पूछा।

"इस स्थान के निकट कई छोटे बड़े रेत के टीले बने हैं, हमें धीरे-धीरे उनके पीछे छुपते हुए आगे बढ़ना होगा।"

"उचित है।" दत्र ने रेत में अपनी लाठी घुमाते हुए कहा।

आतुन और विकेश ने भी सहमति प्रकट की और वह चारों छिपने का पूर्ण प्रयत्न करते हुए प्रकाश की दिशा में बढ़ने लगे। शीघ्र ही वह उस अंतिम टीले तक पहुँचे जो प्रकाश के अत्यंत निकट था।

"यहाँ से आगे क्या करना है? इसके विषय में हमें विचार करना होगा।" आतुन ने धीमे स्वर में कहा।

"वहाँ कुल सात व्यक्ति हैं," दत्र का स्वर सुन सभी उसकी ओर मुड़े, "तीन व्यक्ति चल रहे हैं और चार स्थिर हैं।"

"सात?" विकेश ने फुसफुसाते हुए कहा, "परंतु हमें तो सूचना मिली थी कि वह मात्र पाँच हैं।"

शिखी शांत था। जिस प्रकाश स्रोत को देख वह वहाँ आये थे वह वास्तव में अग्नि का प्रकाश था। *वह अग्नि प्रज्वलित कर कुछ विशेष कार्य कर रहे थे।*

"हमें रुककर जय की प्रतीक्षा करनी होगी।" आतुन ने कहा, "उसने कहा था कि किसी संकट की दशा में हम उसकी प्रतीक्षा करें।"

"परंतु दो व्यक्तियों का अधिक होना कोई संकट नहीं।" शिखी ने प्रतिवाद किया। "अब तक यह तो सुनिश्चित हो चुका है कि वह किसी प्रकार का अनुष्ठान कर रहे हैं जिसके परिणाम भयावह भी हो सकते हैं।"

'...हमें उस अपेक्षित विनाश को घटित होने से पूर्व ही रोकना होगा।' उसे महर्षि द्वारा कही गयी बात स्मरण हो आई। *प्रतीक्षा करना हानिकारक सिद्ध हो सकता था।*

"दत्र के अनुसार चार व्यक्ति स्थिर हैं, संभवतः वह अनुष्ठान में लिप्त होंगे। शेष बचे तीन व्यक्ति ही हमारे लिए संकट हैं।"

"परंतु यह मात्र अनुमान है, आवश्यक नहीं कि ऐसा ही हो।" विकेश ने कहा, "यद्यपि एक बात से मैं अवश्य सहमत हूँ।"

विकेश ने अपने हाथों में थमे धनुष को कुछ ऊँचा उठाया, "हमें इसी क्षण आक्रमण करना चाहिए।"

शिखी ने दत्र की ओर देखा। उसका मुख गंभीर था, *वह अवश्य ही कुछ विचार कर रहा था।* "क्या बात है दत्र? तुम चिंतित प्रतीत हो रहे हो। जहाँ तक मेरा अनुमान है यह चिंता आक्रमण के विषय में नहीं होगी।"

"मुझे आक्रमण की कोई चिंता नहीं है शिखी। मैं अकेला ही तीन चार व्यक्तियों को संभाल सकता हूँ। मैं किसी और विषय पर विचार कर रहा था।"

"किस विषय में?"

"क्या उनपर आक्रमण करने से पूर्व हमें उन्हें एक अवसर नहीं देना चाहिए?"

उत्तर आतुन ने दिया, "परंतु उन्होंने ग्रामवासियों पर आक्रमण किया। स्पष्ट है कि वह हिंसक हैं।"

दत्र मौन रहा।

"उचित है। हम उन्हें एक अवसर देंगे।" अंततः शिखी ने कहा, "परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि हम असावधान हो जाएँ। विकेश! तुम एक धनुर्धर हो। हम सभी एक साथ उनके समक्ष जायेंगे और अपना प्रस्ताव रखेंगे। तुम अपनी प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाये रखना। यदि वह एक भी अनुचित कार्य करें तो तुम बिना एक क्षण विलंब किये उनपर प्रहार कर देना।"

"उचित है।" विकेश ने दृढ़ता से अपना सिर हिलाया।

बिना एक क्षण विलंब किये वह आगे बढ़ गए। टीले के ओट से बाहर आते ही उन्हें दूर से साथ व्यक्ति दिखाई दिए। *दत्र का अनुमान कभी गलत नहीं होता।*

भूमि पर लकड़ियों की सहायता से एक विशाल अग्निकुंड का निर्माण किया गया था, परंतु वह प्रज्वलित नहीं था। यद्यपि उसके निकट दो छोटे अग्निकुंड भी बनाये गये थे जिनमें से अग्नि की लपट निकल रही थी। विशाल अग्निकुंड के समक्ष बैठा एक व्यक्ति ताम्रपत्र से कुछ पढ़ रहा था। उसके निकट तीन अन्य व्यक्ति भी बैठे थे, परंतु वह कुछ कार्य नहीं कर रहे थे। इसके अतिरिक्त तीन व्यक्ति उस स्थान के निकट टहल रहे थे, जिनमें से एक के पास कुल्हाड़ी थी और दो के पास तलवार।

सर्वप्रथम कुल्हाड़ी थामे व्यक्ति की दृष्टि उनपर पड़ी। वह उन्हें पहचानने का प्रयत्न कर रहा था, जो कठिन कार्य नहीं था। एक के अतिरिक्त तीन युवकों ने अग्निकुल संप्रदाय के प्रतीक रंग के वस्त्र पहने थे। *वह आश्रम से आये थे,* व्यक्ति ने अनुमान लगाया।

"मरुभूमि आश्रम की ओर से हम तुम्हें आदेश..." शिखी ने कहना आरंभ ही किया था कि कुल्हाड़ी लिए हुए व्यक्ति ने कुल्हाड़ी उनकी ओर फेंक दी। शिखी अविलंब एक दिशा में कूद गया। परंतु कुल्हाड़ी का लक्ष्य विकेश और उसके हाथ में थमा धनुष था जिसपर उसने प्रत्यंचा चढ़ाई हुई थी।

विकेश भी सँभल कर एक दिशा में कूद गया परंतु कुल्हाड़ी उसके हाथों में थमे धनुष से टकरा गयी। विकेश ने भूमि पर गिरे हुए दो भागों में विभक्त अपने धनुष को देखा।

भय से उसका शरीर काँप गया। एक क्षण में उनकी योजना ध्वस्त हो चुकी थी। *उन्हें प्रतीक्षा का विकल्प ही चुनना चाहिए था।*

अग्निकुंड के निकट खड़ा श्रित मुस्कराया। उसकी कुल्हाड़ी ने अपना कार्य कर दिया था। उसने अपने निकट खड़े दोनों तलवार धारकों को आँखों से कुछ संकेत किया और वह उन चारों की ओर बढ़ गए।

किसी भी दशा में वह फणिक के कार्य में बाधा नहीं स्वीकार कर सकता था। किसी भी मूल्य पर उस अनुष्ठान को पूर्ण होना ही था। चाहे वह मूल्य कुछ युवकों का रक्त ही क्यों न हो।

वह सभी शीघ्र ही सँभल गए, परंतु विकेश अब निहत्था था। शिखी और आतुन ने अपनी अपनी तलवार अपने हाथों में ले ली; दत्र ने भी अपनी लाठी में लगा खुटका दबाया और उसकी लाठी दो फलों वाले भाले में परिवर्तित हो गयी।

शिखी ने स्थिति का अवलोकन किया। दो तलवार धारक उसकी ओर बढ़ रहे थे। मुख्य अग्निकुंड के समक्ष बैठे व्यक्ति ने एक बार भी अपनी दृष्टि नहीं घुमाई थी, वह पूर्ववत उस ताम्रपत्र से कुछ पढ़ रहा था।

वही ताम्रपत्र जिसे वापस ले जाने के लिए वह उस स्थान पर आये थे।

और जिसे वापस प्राप्त करना सरल नहीं होने वाला था।

शिखी और आतुन ने निकट पहुँच चुके दोनों तलवार धारकों को रोका। इस बाधा को उन्हें शीघ्र ही पार करना था।

अपने प्रतिद्वंदी के प्रहार और बचाव को देख शिखी आश्चर्यचकित था। उसकी निपुणता यह प्रमाणित करती थी कि उसने अवश्य ही किसी दक्ष गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी। उनका अनुमान पूर्णतः गलत था कि वह सभी साधारण व्यक्ति थे।

शिखी के प्रहारों से वह सरलता से बच जा रहा था। *इस प्रकार तो यह द्वंद्व निरंतर चलता ही रहेगा।*

शिखी ने उस व्यक्ति के हृदय को लक्ष्य बनाकर संपूर्ण बल से प्रहार किया, परंतु उस व्यक्ति ने अपनी तलवार के प्रहार से उस वार को किनारे कर दिया। शिखी ने वह प्रहार अतिरिक्त बल से किया था, इसी कारण वह लड़खड़ा गया था। उसके समक्ष खड़े व्यक्ति ने इस अवसर का लाभ लेते हुए अपनी बायीं कोहनी से शिखी के मुख पर प्रहार किया। इससे पूर्व कि वह अपने दायें हाथ में थमे तलवार से प्रहार कर पाता शिखी दो पग पीछे हट गया।

प्रहार के कारण उसका सिर झनझना गया था। उसकी नासिका से रक्त की कुछ बूँदें टपकने लगीं। यह देख वह व्यक्ति मुस्कुरा उठा, "यही सामर्थ्य शेष है अग्नि कुल में? अपनी वस्तु को वापस लेने के लिए एक किन्नर को भेज दिया।"

शिखी ने अपने जबड़े भींच लिए। महर्षि वह्निमित्र की दी हुई तलवार पर उसकी पकड़ शक्तिशाली होती गयी।

"मुझे जीवन पर्यंत लज्जा आएगी कि मैंने एक किन्नर से द्वंद्व किया था।" उसके समक्ष खड़ा व्यक्ति पूर्ववत मुस्कुराता हुआ बोला।

शिखी ने तलवार को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिया, "चिंतित न हो, तुम्हारे जीवन के साथ साथ तुम्हारी लज्जा भी समाप्त होने वाली है।"

शिखी ने चीखते हुए अपने दोनों हाथ उठाये और उस व्यक्ति के सिर को लक्ष्य बना कर प्रहार किया। उस व्यक्ति ने तत्क्षण अपनी तलवार को ऊपर कर उस प्रहार को रोक लिया। परंतु शिखी का प्रहार इतना वेगपूर्ण था कि उसकी तलवार उस व्यक्ति के तलवार में धँस गयी।

शिखी ने अपनी तलवार को झटका तो उस व्यक्ति की तलवार दूर जा गिरी। उसके मुख से मुस्कान विलुप्त हो चुकी थी। शिखी ने अपनी तलवार घुमाई और अगले क्षण उस व्यक्ति का सिर भूमि पर लुढ़क रहा था।

रक्त से सने शिखी ने अपनी उखड़ी हुई श्वास को नियंत्रित किया। अग्निकुंड के पास खड़ा श्रित अन्य तीन व्यक्तियों से कुछ कह रहा था। श्रित की बात सुन वह तीनों भी अपने स्थान से उठे और सशस्त्र उसकी ओर बढ़ गए।

शीघ्र आओ, शिखी स्वयं में ही बुदबुदाया, *अपनी मृत्यु के निकट।*

कनखियों से उसने देखा कि आतुन अभी भी अपने प्रतिद्वंदी से भिड़ा था। विकेश ने मृत व्यक्ति की तलवार अपने हाथों में उठा ली थी। यद्यपि उसकी धार मध्य से टूट चुकी थी, परंतु निःशस्त्र रहने से श्रेष्ठ था खंडित शस्त्र हाथों में लिए रहना।

उसने आगे बढ़ कर एक व्यक्ति पर प्रहार किया। *शेष दो के लिए विकेश और दत्र पर्याप्त थे।*

उसी क्षण फणिक ने विशाल अग्नि कुंड को भी प्रज्वलित कर दिया। कुछ ही क्षणों में अग्नि की विशाल लपटें आकाश को छूने लगीं। रात्रि दिन में परिवर्तित हो चुकी थी। अग्नि कुंड से निकलने वाली आँच फणिक को झुलसा रही थी, परंतु वह अपने स्थान पर ही बैठ तीव्र स्वर में कुछ मंत्रों का उच्चारण करने लगा।

विकेश और आतुन के प्रतिद्वंदी उन पर हावी होते जा रहे थे। विकेश दो समस्याओं से जूझ रहा था। प्रथम, तलवार उसका मुख्य अस्त्र नहीं था, जबकि उसका प्रतिद्वंदी तलवार विद्या में निपुण था। द्वितीय, उसकी तलवार खंडित थी जिससे वह उचित प्रकार से प्रहार करने से अक्षम था। उसके प्रतिद्वंदी का एक वार उसके कंधे में धँसा और उसके मुख से एक हृदयविदारक चीख निकली। उस व्यक्ति ने विकेश के कंधे में धँसी तलवार को थोड़ा सा घुमा दिया और विकेश पुनः चीख उठा।

पीड़ा असहनीय थी। उसकी तलवार उसके हाथों से छूट गयी और वह घुटनों के बल भूमि पर बैठ गया।

विकेश की चीख सुन एक क्षण के लिए आतुन का ध्यान भंग हुआ जो कि उसके लिए एक घातक भूल थी। उससे द्वंद्व कर रहे व्यक्ति ने इस अवसर का लाभ उठाया और अपने तलवार की मूठ से आतुन के सिर पर एक भीषण प्रहार किया। अगले ही क्षण वह बेसुध अवस्था में भूमि पर गिर पड़ा।

वह उसे समाप्त करने वाला था कि विकेश से द्वंद्व कर रहे व्यक्ति ने उसे कुछ संकेत किया। दोनों ने एक बार थोड़ी दूर पर द्वंद्व कर रहे शिखी की ओर देखा, अपना सिर हिलाया और उसकी दिशा में बढ़ गए।

फरसा लिए हुए व्यक्ति से द्वंद्व कर रहे दत्र को शीघ्र ही इस समस्या के विषय में ज्ञात हो गया। *उसे शीघ्र ही सहायता के लिए जाना होगा।* वह अपने प्रतिद्वंदी के गतिमान पैरों और हाथों से वायु में उत्पन्न होने वाली सूक्ष्म कंपन से उसकी स्थिति का आकलन तो कर पा रहा था, परंतु उसके फरसे का आकलन करने में उसे कठिनाई आ रही थी।

उससे द्वंद्व कर रहे व्यक्ति का एक ही लक्ष्य था, उसकी लाठी को तोड़ना। यद्यपि उसका फरसा सामान्य आकार से कुछ बड़ा था परंतु वह दत्र तक नहीं पहुँच पा रहा था। यदि वह उसकी लाठी को तोड़ देता तो दत्र निःशस्त्र हो जाता। और निःशस्त्र प्रतिद्वंदी को परास्त करना सरल था।

दूर खड़ा श्रित ध्यानपूर्वक शिखी को देख रहा था जो तीन व्यक्तियों से एक साथ लड़ रहा था। उसकी दृष्टि शिखी के प्रत्येक दाँव का आकलन कर रही थी। *क्या वह तीनों उस किन्नर को परास्त कर सकेंगे?* उसके मस्तिष्क में बार बार यह प्रश्न घूम रहा था।

शिखी ने अपने आक्रमण की गति असामान्य रुप से बढ़ा दी थी। उन तीनों को प्रहार करने का अवसर भी नहीं प्राप्त हो रहा था। उसकी दृष्टि दूर खड़े श्रित से टकराई जो उनका द्वंद्व देख मुस्कुरा रहा था।

उसे यह द्वंद्व शीघ्र ही समाप्त करना था। उससे कुछ दूर भूमि पर पड़े विकेश के कंधे से रक्त तीव्रता से बह रहा था। उसे उपचार की आवश्यकता थी।

शिखी ने अपने आक्रमण की गति और भी तीव्र कर दी। वह तीनों उत्तम तलवार योद्धा थे, परंतु वह उनसे श्रेष्ठ था। कुछ ही समय में वह तीनों निहत्थे और घायल अवस्था में भूमि पर पड़े थे।

तीनों के परास्त होने से भूमि में कंपन कुछ कम हुई जिसका लाभ उठाने का निर्णय दत्र ने किया। उसने अपना संपूर्ण ध्यान केंद्रित किया; अब वह अपने प्रतिद्वंदी की श्वास को भी सुन सकता था। वायु को चीरते उसके फरसे से जो क्षीण ध्वनि उत्पन्न हो रही थी, वह उसे सुन सकने में सक्षम था। उसने लाठी के एक किनारे से उसके फरसे के एक प्रहार को रोका और इससे पूर्व कि उससे द्वंद्व कर रहा व्यक्ति कुछ सँभल पाता उसने अपनी लाठी को मध्य से घुमाया और दूसरे सिरे से उसकी ग्रीवा को भेद दिया।

दोनों हाथों से अपने गले से बह रहे रक्त को रोकने का प्रयास करता वह व्यक्ति भूमि पर गिरने के कुछ ही क्षणों में मृत हो चुका था।

बिना विलंब किये वह भूमि पर पड़े विकेश के पास पहुँचा। रक्तस्राव अधिक होने से उसके प्राण भी संकट में पड़ सकते थे। वह एक वस्त्र की सहायता से उसके घाव से बह रहे रक्त को रोकने का प्रयास करने लगा।

शिखी ने दत्र को देखा तो अपने घायल साथियों के प्रति आश्वस्त हो गया। “तुम इनका ध्यान रखना, तब तक मैं इस कथा का अंत करके आता हूँ।” जबड़े भींचे हुए शिखी ने कहा और अग्निकुंड की दिशा में बढ़ गया।

दत्र ने धीरे से सहमति में अपना सिर हिलाया।

फणिक ने मंत्रों के उच्चारण की गति और अधिक तीव्र कर दी थी। अग्नि का ताप अब उसे झुलसा नहीं रहा था। अपने शरीर के भीतर उसे अग्नि का अनुभव हो रहा था, ऐसी अग्नि जो उसे ऊर्जा प्रदान कर रही थी। *अग्नि अब मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकती,* यह पूर्णतः वैसा ही था जैसा उस ताम्रपत्र में लिखा था। *अब मात्र प्रतीक्षा थी उस आदिपशु की जो सहस्रों वर्षों से उसी मरुस्थल में रहता था।*

अपनी सफलता के इतने निकट होने की कल्पना करते ही उसका हृदय दुगनी गति से स्पंदन करने लगा था। *अब मात्र कुछ क्षणों की प्रतीक्षा और, उसके पश्चात वह मेरे नियंत्रण में होगा।* एक ऐसी शक्ति उसकी दास बनने वाली थी जिसे परास्त करना संपूर्ण धरा पर किसी भी मनुष्य के लिए संभव नहीं था।

अध्याय 12
अग्नि का प्रतिबिंब

अग्नि की ऊँची लपटें मरुस्थल को एक स्वर्णमयी आभा प्रदान कर रही थीं। रात्रि के उस मौन में अग्निकुंड के निकट बैठे फणिक द्वारा मंत्रों का उच्चारण वातावरण को भयावह बना रहा था। परंतु द्वंद्व के लिए सज्ज, एक दूसरे की ओर बढ़ रहे श्रित और शिखी का ध्यान उस ओर नहीं था।

वह दोनों किसी सिंह की भांति धीमी गति से आगे बढ़ रहे थे। श्रित ने शिखी की आँखों को ध्यान से देखा, जिनमें उसे अग्नि का प्रतिबिंब दिखाई दे रहा था। वह धीमे से मुस्कराया, जिसे देख शिखी का क्रोध बढ़ गया। पहले से ही आक्रामक मुद्रा में आ चुके शिखी ने प्रथम प्रहार किया।

शिखी के प्रथम प्रहार को श्रित ने सरलता से रोक लिया। अगले कुछ क्षणों में उसने अपने संपूर्ण बल और कौशल का प्रयोग करते हुए श्रित पर कई वार किये, परंतु वह सरलता से उन सभी से बच जा रहा था। *मानो उसे पूर्व में ही ज्ञात हो कि वह कौन सा वार करने वाला है।*

उसके मुख पर आये आश्चर्य के भाव का परिहास करते हुए श्रित पुनः मुस्कराया। मानो कहना चाह रहा हो *क्या मैं तुम्हारी अपेक्षा से अधिक निपुण हूँ? क्या तुमने मेरे साधारण योद्धा होने की कल्पना की थी?*

और उसी क्षण शिखी को ज्ञात हुआ कि कुछ समय पूर्व श्रित मात्र उसे द्वंद्व करते नहीं देख रहा था, अपितु उसके प्रहार और बचाव की प्रत्येक चाल को देख और समझ रहा था। वह थका हुआ था जबकि उसका प्रतिद्वंदी इस क्षण अधिक स्फूर्तिवान था। उसका प्रतिद्वंदी उसके युद्ध कला से परिचित था जबकि वह अपने प्रतिद्वंदी के युद्ध कौशल के विषय में अभी-अभी जान रहा था, उसके प्रत्येक प्रहार के साथ।

श्रित ने अब बचाव करते हुए आक्रामक प्रहार करना भी आरंभ कर दिया। प्रत्येक प्रहार प्राण भक्षक था जिससे बचने के लिए शिखी को अपना संपूर्ण ध्यान और बल लगाना पड़ रहा था। *यह कोई सामान्य योद्धा नहीं है।* श्रित अपनी कलाइयों को जिस दक्षता के साथ मोड़कर तीव्रता से प्रहार कर रहा था, उससे अनुमान लगाया जा सकता था कि उसे तलवार चलाने का वर्षों का अनुभव है।

उनसे कुछ दूरी पर दत्र वस्त्र के टुकड़े से विकेश के घाव से बह रहे रक्त को रोकने का असफल प्रयास कर रहा था। कुछ क्षणों पूर्व आतुन की चेतना भी लौट आई थी, परंतु अभी भी उसके सिर में तीव्र पीड़ा हो रही थी। उसने तनिक दूर द्वंद्व लड़ रहे शिखी और श्रित को देखा। यह बता पाना असंभव था कि दोनों में कौन विजयी होगा। संभवतः शिखी को सहायता की आवश्यकता थी, परंतु आतुन के लिए इस क्षण अपने स्थान पर खड़े होना भी कठिन था।

“दत्र!” आतुन ने विकेश के घाव को ध्यान से देखा।

“हूँ।” दत्र चिंतित था। इस क्षण उसे कोई भी मार्ग नहीं सूझ रहा था।

“रक्त स्राव बहुत अधिक हो रहा है।”

“मुझे भी ज्ञात है।” दत्र ने तनिक झुंझलाहट भरे स्वर में कहा, “मैं इसे रोकने का पूर्ण प्रयास कर रहा हूँ।”

“परंतु यह कार्य नहीं कर रहा है।”

दत्र ने कोई उत्तर नहीं दिया। इस तथ्य से वह भी अनभिज्ञ नहीं था। शत्रु की तलवार ने संभवतः विकेश के कंधे की किसी शिरा को काट दिया था।

आतुन अपनी पीड़ा को भूल चुका था। विकेश के शरीर का रक्त रेतीली भूमि में गिरकर लुप्त होता जा रहा था। उसे ज्ञात था कि दत्र भी इस तथ्य से परिचित है, परंतु इसके पश्चात भी उसने कहा, “यदि कुछ ही समय में रक्त स्राव नहीं रुका तो विकेश की मृत्यु हो जाएगी।”

उनके पास संभवतः विकेश को आश्रम तक पहुँचाने का समय भी शेष नहीं था और उस वीरान मरुस्थल में उपचार के किसी साधन का तो कोई प्रश्न ही व्यर्थ था।

श्रित ने एक प्रहार किया जिसे शिखी ने अपनी तलवार से भूमि की ओर धकेल दिया। श्रित ने अवसर का लाभ लिया और उसके उदर पर अपने पैरों से प्रहार किया। शिखी कुछ पग पीछे हट गया। *इसे पराजित करना सरल नहीं।* शिखी अब इस तथ्य से पूर्णतः परिचित हो चुका था।

एक क्षण अपने स्थान पर रुककर, दीर्घ श्वास लेकर उसने मन ही मन कुछ निर्णय किया। श्रित को परास्त करने के लिए ऐसे दाँव की आवश्यकता थी जिससे वह सर्वथा अपरिचित हो। कुछ माह पूर्व सीखे गए नृत्य के ताल उसके मस्तिष्क में गूँजने लगे।

उसने अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाया, *प्रथम ताल।* अगले क्षण उसने अपना बायाँ हाथ आगे बढ़ाया, *द्वितीय ताल।* और उसके अगले क्षण उसने अपनी गति बढ़ा दी। उसकी प्रत्येक अगली गति, पिछले गति से भिन्न होती थी जिसे समझना श्रित के लिए भी नामुमकिन था। वह आक्रामक प्रहार करना चाहता था, परंतु शिखी के प्रहारों को समझना और उनसे स्वयं का बचाव कर पाना ही कठिन होता जा रहा था।

शिखी उस ‘नृत्य’ में रम सा गया, अन्यथा वह श्रित के मुख पर उत्पन्न भावों को अवश्य देखता। उसके मुख से मुस्कान विलुप्त हो चुकी थी। निकट ही जल रही अग्नि के प्रकाश में शिखी का रूप भयावह प्रतीत हो रहा था। *क्या यह कोई विक्षिप्त है?* शिखी को इस क्षण देख वह यही विचार कर रहा था।

जब शिखी रुका तो वह बुरी तरह हाँफ रहा था। उसने अपने संपूर्ण बल का प्रयोग किया था। परिणामस्वरुप श्रित का शरीर तीन स्थानों से हल्का कट चुका था जिससे निकलने वाला रक्त भूमि पर गिर रहा था। अंततः वह स्वयं को बचा पाने में सफल हुआ था। *परंतु अधिक समय तक नहीं।* यदि शिखी पुनः कुछ ऐसे ही प्रहार करना आरंभ कर देता तो इस बार संभवतः वह स्वयं को बचा भी नहीं पाता।

श्रित ने अपनी तलवार को रेत में धँसाया और अपनी ओर बढ़ते शिखी की ओर रेत को उछाल दिया। असावधान शिखी के आँखों में रेत पड़ते ही वह क्षणिक रुप से अंधा हो गया।

कुटिल मुस्कान लिए हुए श्रित ने शिखी पर प्रहार किया, परंतु शिखी ने अनुमान लगाते हुए उस प्रहार को रोक दिया। परंतु उस प्रहार का वेग इतना अधिक था कि शिखी अपनी पीठ के बल भूमि पर जा गिरा।

मुस्कुराता हुआ श्रित, अपनी तलवार को कसकर पकड़े हुए, भूमि पर गिरे शिखी की ओर बढ़ गया, जो अपनी आँखों से रेत निकालने का प्रयत्न कर रहा था।

फणिक अब ताम्रपत्र के अंतिम भाग में पहुँच चुका था। ताम्रपत्र के अनुसार उसमें लिखे मंत्र किसी भी व्यक्ति के शरीर के भीतर उपस्थित अग्नि तत्व को जागृत कर सकते थे। *और यह तथ्य पूर्णतः सत्य था,* फणिक इसे स्वयं अनुभव कर रहा था।

अग्नि तत्व को जागृत करना कठिन साधना द्वारा भी संभव था, परंतु अग्नि देव ने इस कार्य के लिए मंत्रों की रचना भी की थी। परंतु उनके कुछ शिष्य ऐसे थे जो किसी साधना के बिना ही उन मंत्रों की सहायता से अग्नि तत्व को जागृत करना चाहते थे।

बिना परिश्रम किये हुए प्राप्त होने वाली शक्ति का वास्तविक मूल्य, उस शक्तिधारक को कभी ज्ञात नहीं हो सकता। महर्षि अग्नि देव इस तथ्य से भली भांति परिचित थे। इसी कारण उन्होंने उन मंत्रों को मुहर लगाकर आश्रम मुख्यालय में सुरक्षित रख दिया। सरलता से लक्ष्य प्राप्त करने की चाह रखने वाले छात्रों से दूर, जहाँ वह दो सहस्त्र वर्षों से उसी अवस्था में रखा हुआ था।

परंतु अब यह मंत्र मुझे मेरे लक्ष्य तक पहुँचाने वाले हैं, फणिक मन ही मन अत्यधिक प्रसन्न था। इतने वर्षों तक अनगिनत लोककथाओं, किंवदंतियों का अवलोकन करने के पश्चात उसे ज्ञात था कि संभवतः मरुभूमि के मरुस्थलों में एक आदिपशु रहता था। वह किन कारणों से वहाँ छिपकर रहता था इस विषय में उसे नहीं ज्ञात हो सका। परंतु उसे इतना ज्ञात था कि वह आदिपशु 'अग्नि का रूप' था जिसके स्पर्श मात्र से कोई भी वस्तु जल सकती थी।

ऐसी कुछ अन्य किंवदंतियों के विषय में भी उसे ज्ञात हुआ था, परंतु कुछ भी प्रामाणिक नहीं था। परंतु पिछले वर्ष गोपिक की रहस्यमयी परिस्थितियों में हुई मृत्यु का अवलोकन करने से उसे विश्वास हो गया कि उसकी मृत्यु उसी आदिपशु के स्पर्श से हुई थी। यह प्रमाण ऐसा था कि उसने अपना और पंथ का पूरा ध्यान उसी पर लगा दिया।

परंतु अब उसके समक्ष मुख्य समस्या यह थी कि वह उस आदिपशु को नियंत्रित कैसे करे? साधारण मनुष्य मात्र उसे स्पर्श करते ही मृत हो सकता था। उसके लिए आवश्यकता थी अग्नि तत्व को जागृत करने की जिससे उस आदिपशु का स्पर्श उसे कोई हानि न पहुँचा पाये।

और तब उसे ज्ञात हुआ उस ताम्रपत्र के विषय में जिसमें शरीर के अग्नि तत्व को जागृत करने के विषय में लिखा गया था। *अग्नि उस आदिपशु को आकर्षित करने में भी सहायक होने वाली थी।*

अग्नि की लपटें अब कुछ धीमी पड़ने लगी थीं। उसी क्षण भूमि में कुछ हलचल हुई। *रेतीली भूमि के भीतर कोई विशाल वस्तु रेंग रही थी।* अग्निकुंड में रखी लकड़ियाँ इधर उधर गिर गयीं। *उनका कार्य समाप्त हो चुका था।* जलती लकड़ियों के कुछ टुकड़े उसके ऊपर भी गिरे परंतु उसके शरीर पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

अत्यधिक उत्तेजना के कारण वह ठीक प्रकार से श्वास भी नहीं ले पा रहा था। "वह आ गया।" फणिक ने धीमे स्वर में कहा और अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ।

शिखी ने अश्रु भरे नेत्रों से श्रित को अपनी ओर बढ़ते हुए देखा। श्रित ने भूमि पर असहाय गिरे हुए शिखी के उदर को लक्ष्य बना प्रहार करना ही चाहा था कि अचानक भूमि में एक कंपन हुआ। उसने कठिनाई से स्वयं को गिरने से संभाला। अगले क्षण एक और कंपन हुआ और इस बार वह स्वयं को संभाल नहीं पाया और मुँह के बल भूमि पर गिरने लगा। शिखी ने उसी क्षण अपनी तलवार आगे कर दी जो श्रित का उदर भेदते हुए उसकी पीठ के आर-पार हो गयी।

शिखी उठ खड़ा हुआ। भूमि में कंपन समाप्त हो चुकी थी। उसने नीचे गिरे हुए श्रित को देखा जो शीघ्र ही मरने वाला था। उसके नेत्रों में यह उम्मीद थी कि शिखी अपनी तलवार से उसके इन अंतिम कुछ क्षणों की पीड़ा को समाप्त कर देगा, परंतु शिखी ने उसकी ओर से अपना मुँह घुमा लिया।

श्रित ने धीरे से खांसा तो उसके मुख से रक्त की एक पतली धार निकल गयी। श्वास लेने में उसे अत्यंत कठिनाई हो रही थी। अपने जीवन के कुछ महत्वपूर्ण क्षण उसकी आँखों के समक्ष तैरने लगे। *वह एक योद्धा था।* उस गुरुकुल में ऐसा कोई नहीं था जो उसे द्वंद्व में परास्त कर सके। आचार्य फणिक का उससे मिलना और एक प्राचीन शक्ति के विषय में बताना, उन दृश्यों को वह देख सकता था। अपने जीवन का अधिकांश समय उसने आचार्य फणिक का आदेश मानने में बिता दिया था। *परंतु वह गलत नहीं थे, वह शक्ति मात्र एक कल्पना नहीं थी, अपितु वास्तविकता थी।* उसने अपनी आँखें बंद कर लीं, सब कुछ अंधकार में डूब गया। अंतिम श्वास लेते समय उसके हृदय में यह संतोष था कि उसने अपना जीवन एक महान उद्देश्य को समर्पित किया था।

शिखी ने श्रित के शव को देखा और एक गहरी श्वास ली। *अपने जीवन का चयन उसने स्वयं किया था, जो उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हो चुका था।* उसने अग्निकुंड की दिशा में देखा, फणिक वहाँ नहीं था। वह अकेला ही मरुस्थल में बढ़ता जा रहा था। *परंतु क्यों?* शिखी ने आँखें सिकोड़ उसे ध्यान से देखा। *ताम्रपत्र अभी भी उसके हाथों में था।*

उन्हें उस ताम्रपत्र के साथ पुनः आश्रम लौटना था। *उसने महर्षि को वचन दिया था।*

उसने अपने साथियों की ओर देखा; दत्र और आतुन, विकेश का रक्त स्राव रोकने का पूर्ण प्रयास कर रहे थे। उस स्थिति में वह कुछ नहीं कर सकता था। उसी क्षण उसने एक निर्णय लिया। उसने दूर जाते फणिक को देखा और स्वयं भी तीव्रता से उसी दिशा में बढ़ गया।

"यह क्या था?" आतुन ने भूमि में हुए कंपन के विषय में पूछा। रात्रि का समय होने के कारण वह तनिक भयभीत भी था।

"ज्ञात नहीं। पिछले वर्ष भी मैंने इसी प्रकार के कंपन का अनुभव किया था। वह जो भी था, अब हमारे निकट नहीं है।"

आतुन अधिक आश्वस्त नहीं हुआ।

"परंतु इस क्षण हमारी मुख्य समस्या कुछ और है।" दत्र ने कहा, "मुझे ज्ञात है कि विकेश का रक्त स्राव रोकने के लिए हमें क्या करना होगा।"

"क्या?"

दत्र ने आतुन को समझाया। आतुन ने सहमति में अपना सिर हिलाया और अग्नि कुंड की दिशा में बढ़ गया। फणिक और शिखी निकट कहीं भी नहीं दिखाई दे रहे थे। उसने एक मोटी लकड़ी उठाई जिसका एक किनारा अभी भी दहक रहा था, और पुनः विकेश की ओर बढ़ गया। मन ही मन यह प्रार्थना करते हुए कि दत्र का उपाय प्रभावी हो।

“जैसा समझाया है, ठीक उसी प्रकार इस कार्य कर को करना।” दत्र ने निकट पहुँच चुके आतुन से कहा। स्वयं दत्र ने भूमि पर बेसुध पड़े विकेश के दोनों हाथ कसकर पकड़ लिए।

आतुन ने काँपते हाथों से अग्नि विकेश के घाव में छुआ दी। विकेश एक क्षण के लिए चेतना में आया, उसके मुख से एक हृदयविदारक चीख निकाली, और दूसरे ही क्षण वह पुनः बेसुध हो गया।

पवित्र अग्नि कृपा करे। दहनकर्म करने के पश्चात आतुन ने वह लकड़ी दूर फेंक दी और भूमि पर बैठ गया। अग्नि ने अपना कार्य कर दिया था। रक्तस्राव बंद हो चुका था।

दत्र ने भी विकेश के दोनों हाथ छोड़ दिए। “अब कम से कम विकेश की मृत्यु रक्तस्राव से नहीं होगी।” उसने ध्यान लगाकर ज्ञात करना चाहा कि फणिक और शिखी कहाँ हैं, परंतु उसे कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। इसका अर्थ था कि दोनों उस स्थान के निकट कहीं नहीं थे। *और वह क्या था जो कुछ समय पहले भूमि के भीतर चल रहा था।*

फणिक को ऐसा लग रहा था मानो वह पागल हो जायेगा। अग्नि तत्व जागृत होने के पश्चात उस आदिपशु को उसके समक्ष आ जाना चाहिए थे, परंतु वह अभी भी भूमि के भीतर ही था।

कुछ देर पूर्व श्रित से लड़ रहा किन्नर बालक उसके पीछे आ रहा था, इसका अर्थ था कि श्रित मृत था। *संभवतः पंथ के सभी सदस्य मृत थे।* परंतु उनका यह त्याग व्यर्थ नहीं गया था। वह अपने लक्ष्य के अत्यंत निकट था। आश्रम से आये युवक उसके कार्य में बाधा न उत्पन्न करें, इसीलिए वह उस स्थान से दूर चला आया था। परंतु उनमें से एक अभी भी उसके पीछे थे।

मात्र कुछ क्षण और। फणिक ने अपना ध्यान केंद्रित किया। आदिपशु के आने के पश्चात वह उन युवकों को मात्र कुछ क्षणों में समाप्त कर सकता था।

परंतु उस क्षण के आने तक उसे प्रतीक्षा करनी थी।

किसी के आने की आहट सुन दत्र और आतुन ने उस दिशा में देखा। अंधकार में दूर से यह बताना असंभव था कि वह कौन हैं। *कहीं वह पंथ के सदस्य न हों?* आतुन ने एक क्षण के लिए विचार किया। इस क्षण वह द्वंद्व करने की स्थिति में नहीं थे। परंतु जैसे ही उसे आगंतुकों के विषय में ज्ञात हुआ, उसके चेहरे पर एक मुस्कान आ गयी।

वह जय और उनके अन्य तीन साथी थे, वीतज, कीयप और शालिक। “इसे क्या हुआ?” जय ने विकेश को देख कर पूछा।

आतुन ने शीघ्रता से समझाया, किस प्रकार उन्होंने उन व्यक्तियों को देखा था और किस प्रकार वह उनके अनुमान के विपरीत साधारण व्यक्ति नहीं थे। शिखी उनके प्रमुख के पीछे गया था और विकेश भूमि पर पड़ा था, “अभी इसकी स्थिति स्थिर है, परंतु अधिक समय तक नहीं। हमें शीघ्रता से इसे आश्रम पहुँचाना होगा।”

“तुम लोग इतनी शीघ्रता से यहाँ कैसे पहुँच गए।” दत्र ने पूछा, “तुम्हें तो विपरीत दिशा में बढ़ना था।”

“वीरान मरुस्थल में इस विशाल अग्निकुंड से उठने वाली अग्नि को अनदेखा करना असंभव था। और रात्रि के इस प्रहर इतनी विशाल अग्नि का अर्थ था कि अवश्य ही यहाँ कुछ न कुछ गड़बड़ है। जैसे ही हमने प्रकाश देखा, हम सीधा इसी दिशा में बढ़ गये।” जय ने बताया।

“ओह!” दत्र ने धीरे से कहा, मानो यदि वह देखने में सक्षम होता तो यह साधारण सी बात नहीं पूछता।

“परंतु लगता है हम तनिक देर से पहुँचे।” वीतज ने कहा।

“नहीं, तुम लोग बिल्कुल सही समय पर आये हो। जितना संभव हो, उतना शीघ्र विकेश को आश्रम पहुँचाओ, मैं शिखी की सहायता हेतु जा रहा हूँ।”

“मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।” जय ने कहा।

दत्र ने कोई उत्तर नहीं दिया और उस दिशा में बढ़ गया जिधर पहले फणिक और उसके पश्चात शिखी गया था। विकेश को आश्रम पहुँचाने के लिए चार लोग पर्याप्त थे।

“तुम्हें हमारी प्रतीक्षा करनी चाहिए थे।” जय ने उसके पीछे आते हुए कहा।

दत्र ने पुनः कोई उत्तर नहीं दिया। वह जय को समझा सकता था कि किस प्रकार उन्होंने अनुमान लगाया था कि वह उन व्यक्तियों को संभाल लेंगे और किस प्रकार उनका यह अनुमान गलत सिद्ध हुआ था। परंतु इस क्षण उसे मात्र शिखी की चिंता थी।

फणिक को अपने पीछे भूमि में कुछ हलचल का अनुभव हुआ। अब तक का सर्वाधिक तीव्र कंपन। उसने मुड़कर देखा, वहाँ कोई नहीं था। उसके माथे पर बल पड़ गए। वहाँ शिखी भी नहीं था। *वह इस प्रकार कहाँ विलुप्त हो गया।*

परंतु उसने आगे बढ़ने का निर्णय किया। जब तक उसका उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता, रुकना सुरक्षित नहीं था। परंतु जैसे ही वह मुड़ा, अपने सामने का दृश्य देख उसकी श्वास उसके गले में ही अटक गयी।

भगवान एकेश्वर कृपा करें। भय और आश्चर्य से वह जड़ हो गया। *वह उसके समक्ष था।*

रक्तिम लाल वर्ण, पंद्रह हाथ लंबा, तीन हाथ चौड़ा, यह वही आदिपशु था जिसके विषय में उसने पढ़ा था। *अग्निकृमि!* उसका गोल मुख खुला हुआ था जिसमें उसके नुकीले दांत दिखाई पड़ रहे थे।

परंतु सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि उसके ऊपर शिखी खड़ा था। मानो वह भूमि पर खड़ा हो। जिस अग्निकृमि के स्पर्श से उसकी त्वचा को जल जाना चाहिए थे, उसके ऊपर वह आराम से खड़ा था।

फणिक ने ध्यान केंद्रित कर उस आदिपशु को अपने नियंत्रण में करना चाहा, परंतु वह असफल रहा। वह झुँझला उठा। अग्निकृमि को उस व्यक्ति के नियंत्रण में रहना चाहिए जो अग्नि तत्व को जागृत करने में सक्षम हो, क्योंकि ऐसा माना जाता था कि वह अग्नि को भाँप लेते थे। परंतु इस क्षण शिखी उस आदिपशु को नियंत्रित कर रहा था, *परंतु कैसे?*

फणिक को अपने मस्तिष्क पर अधिक बल नहीं देना पड़ा। आदिपशु आगे बढ़ा और उसका शरीर उसके नीचे दब गया। अग्नि तत्व जागृत होने के कारण वह उसके ताप को तो सहन कर गया, परंतु उस विशाल आदिपशु के शरीर के नीचे वह कुचला गया। क्षण भर में उसकी जीवात्मा उसके शरीर का त्याग कर चुकी थी।

अधिकांश जीवन जिसे वह प्राप्त करना चाहता था, अंततः वही उसकी मृत्यु का कारण बना।

वहाँ से कुछ दूर खड़ा जय अपने जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य देख रहा था। दत्र वह दृश्य देख नहीं सकता था, परंतु उसके मुख के भाव से स्पष्ट पता चल रहा था कि वह अधिकांश भाग को अनुभव कर सकता था।

शिखी उस आदिपशु से नीचे उतरा, अगले ही क्षण वह आदिपशु भूमि में विलुप्त हो गया। कुछ क्षण भूमि में हलचल हुई और पुनः सब शांत हो गया। शिखी ने फणिक के कुचले हुए शव के निकट से ताम्रपत्र उठाया और पुनः जय और दत्र को ओर बढ़ गया।

महर्षि द्वारा जो कार्य उन्हें सौंपा गया था, अंततः वह पूर्ण हो चुका था।

अध्याय 13
दलपति

सभी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। अरिदमन के नेतृत्व में सेना शीघ्र ही उत्तराँचल राजभवन से प्रस्थान करने वाली थी। शस्त्र, खाद्यान्न, अश्व सब एकत्रित किये जा चुके थे।

“क्या तुम हमारे साथ नहीं आओगे?” कौस्तुभ ने शील से पूछा।

इस क्षण दोनों राजउद्यान में बैठे हुए थे। भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्पों की मिश्रित सुगंध वातावरण में फैली हुई थी।

“नहीं।” शील ने मनभावन पुष्पों को देखते हुए कहा। “पिछले कुछ दिन मेरे लिए अत्यंत स्मरणीय थे। परंतु अभी मुझे पुनः मेघपुरम जाना होगा।”

कौस्तुभ ने मात्र सहमति में सिर हिलाया। एक वर्ष मेघपुरम में व्यतीत करने के पश्चात उसे भी उस स्थान से लगाव हो गया था। और अब उसी स्थान पर उसका प्रवेश निषेध था, यह स्मरण करते ही उसका मन अशांत हो गया।

“हालाँकि प्रधानमंत्री महात्य से मेरी यात्रा के विषय में बात करने के लिए धन्यवाद। वास्तव में मैं अपनी यात्रा को लेकर चिंतित था, परंतु अब नहीं।” शील ने कहा। महात्य ने मेघपुरम जा रहे कुछ औषधि एकत्र करने वालों के साथ उसकी यात्रा का भी प्रबंध कर दिया था।

“उन औषधिकारों के साथ तुम्हें मार्ग में कोई कठिनाई नहीं आयेगी।” कौस्तुभ ने कहा और एक छोटी सी पोटली शील की ओर बढ़ा दी।

“यह क्या है?” शील ने उसे खोला तो आश्चर्यचकित रहा गया। वह भगवान एकेश्वर की एक प्रतिमा थी जिसे मात्र एक पत्थर को गढ़कर बनाया गया था। “यह तो वही मूर्ति है जो हमने उस दिन हाट में देखी थी।”

“हाँ।” कौस्तुभ ने मुस्कराते हुए कहा। “एक छोटी सी भेंट।”

उसने उद्यान से बाहर देखा तो वहाँ पाँच व्यक्ति अपने-अपने अश्वों पर बैठे थे, “अब चलो। उनका दल भी आ गया।”

शील ने भी मुड़कर उन सभी को देखा और अपने स्थान से उठकर खड़ा हो गया। दोनों उद्यान से बाहर आ गए।

“हम शीघ्र ही पुनः मिलेंगे।” शील ने कहा।

“अवश्य!” कौस्तुभ ने धीरे से कहा। उसे ज्ञात नहीं था कि ऐसा अवसर कब आयेगा अथवा आयेगा भी नहीं।

उसने एक अंतिम बार दृष्टि से ओझल होते शील को देखा और युद्धशाला की ओर बढ़ गया। *शीघ्र ही उसे भी सिंधुपद के लिए प्रस्थान करना था।*

राजभवन के युद्धशाला में सभी सैनिक उपस्थित थे जहाँ से वह किसी भी क्षण प्रस्थान करने वाले थे। पदातिक सैनिकों ने समानांतर रचना बनाई हुई थी और अश्ववाहक सैनिक अपने-अपने अश्वों पर आवश्यक वस्तुएँ लाद रहे थे।

“यहाँ से सर्वप्रथम हम सिंधुपद प्रदेश जायेंगे।” अरिदमन सभी दलपतियों को समझा रहे थे। “वर्तमान में उनकी ही सेना प्रसान नगर के बाहर डेरा डाले हुए है। वह हमें उचित रुप से स्थिति से अवगत करायेंगे।”

“क्या उसके पश्चात हम सीधे प्रसान नगर पर आक्रमण कर देंगे?” एक दलपति ने पूछा। अरिदमन ने उस लंबे, बलिष्ठ और तनिक श्यामल वर्ण के युवक को देखा। उसका नाम अमोघ था और वह तलवार धारी सैनिकों के एक दल का दलपति था।

“नहीं।” अरिदमन ने कहा, “आक्रमण से पूर्व हम प्रयास करेंगे कि नगर के भीतर की वर्तमान स्थिति ज्ञात करें। यही हमारी पहली प्राथमिकता होगी। जब तक हम यह सुनिश्चित नहीं कर लेते कि हमारे आक्रमण से नगर वासियों को कोई हानि नहीं पहुँचेगी, तब तक हम कुछ नहीं करेंगे।”

कुछ क्षणों पश्चात उन्होंने पुनः कहा, “आपको यह भी ज्ञात होगा कि हमारे साथ प्रस्थान कर रहे कुछ सैनिकों को युद्ध का अनुभव नहीं है, इसीलिए दलपति के रूप में आपका यह अतिरिक्त दायित्व भी होगा कि आप उन्हें युद्ध के लिए भी तत्पर करते रहें।”

सभी ने एक साथ सहमति में अपना सिर हिलाया। सेना का अधिकांश भाग हस्तिन के पास रहने के कारण, सेना के इस भाग में उप सेनापति नहीं थे। दलपतियों को सीधा सेनापति अरिदमन से संपर्क रखना था।

कौस्तुभ उनका उत्साह देख अवाक था। *उनमें तो अभी भी किसी नवयुवक जितनी ऊर्जा थी।*

“कोई अन्य प्रश्न?” अरिदमन ने सभी पर दृष्टिपात करते हुए कहा। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया तो वह पुनः बोले, “उचित है। आप सभी प्रस्थान कर सकते हैं।”

सभी ने सहमति में अपना सिर हिलाया और अरिदमन का अभिवादन कर वहाँ से चले गए। कौस्तुभ भी वहाँ से जाने वाला था कि अरिदमन ने उसे रोक लिया। “तुम युद्ध के विषय में चिंतित तो नहीं हो?” उन्होंने पूछा।

“नहीं!” कौस्तुभ ने कहा। वास्तव में वह चिंतित था। अभी तक उसने आश्रम में युद्ध विद्या और शस्त्र संचालन की शिक्षा ली थी, परंतु युद्ध में भाग लेना पूर्णतः भिन्न था।

अरिदमन ने अपना सिर हिलाया। “आशा करता हूँ युद्ध के पश्चात मुझे अपने चयन पर संदेह नहीं होगा। विकट से वक्त योद्धा भी जब रणक्षेत्र में प्रवेश करता है तो उसके पास मात्र दो ही विकल्प होते हैं। वह या तो जीवित लौटेगा अथवा मृत। यह युद्ध साधारण नहीं होने वाला; प्रयास करना कि जब तुम युद्ध से लौटो तो जीवित अवस्था में, न कि मृत।”

इसके पश्चात वह अपने शस्त्रों की ओर मुड़ गए, जो कौस्तुभ के लिए संकेत था कि उनकी वार्ता अब समाप्त हो चुकी है।

कौस्तुभ अपने दल के निकट के बढ़ गया। उसके दल में अधिकांशतः अम्राली के सैनिक थे जिन्हें युद्ध का पर्याप्त अनुभव था, इसी कारण वह उनके प्रदर्शन को लेकर चिंतित नहीं था। *अब वह एक छात्र नहीं था,* इस विचार मात्र से ही उसके मुख पर एक मुस्कान आ गयी।

“अद्भुत धनुष है।” एक स्वर सुनकर वह अपने विचारों से बाहर निकला। यह अमोघ का स्वर था जो जो निकट खड़ा उसके त्रैनाक धनुष को देख रहा था। “मैंने सुना है इससे मंत्र विद्या का प्रयोग भी संभव है।”

"हाँ! यह मेघपुरम के पूर्व प्रमुख महर्षि तेजस का धनुष है।"

अमोघ ने उसकी बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अपनी तलवार को निकाल हवा में चलाने लगा, "मेरी तलवार के विषय में ज्ञात है तुम्हें?" उसने गर्व भरे स्वर में पूछा और स्वयं ही उत्तर भी देने लगा, "मैं इसे संहारक बुलाता हूँ। कम से कम तीन सौ वर्ष पुरानी है। यह यदि किसी के शरीर के किसी अंग को छू भी जाये, तो उसका वह अंग क्षण भर में ही भूमि पर होगा।"

"अद्भुत!" कौस्तुभ ने प्रभावित होते हुए कहा।

अमोघ मुस्कुरा उठा, उसने अपनी तलवार को पुनः म्यान में रख दिया। "मैंने सुना है यह तुम्हारा प्रथम युद्ध होगा।"

"हाँ! यह मेरा प्रथम युद्ध है।" कौस्तुभ ने कहा।

"प्रथम युद्ध और वह भी दलपति के रूप में।" अमोघ ने पुनः मुस्कराते हुए कहा, "बहुत कम लोगों को ऐसा अवसर प्राप्त होता है। एक नवीन दलपति होने के कारण मैं तुम्हें एक शिक्षा देना चाहता हूँ।"

"शिक्षा?" कौस्तुभ ने संदेह की दृष्टि से उसे देखा। उसका चरित्र उसकी समझ से बाहर था।

"हाँ! शिक्षा। कभी भी अपने दल के सैनिकों से उस कार्य की अपेक्षा न करना, जो तुम स्वयं न कर सको।"

"अवश्य!" कौस्तुभ ने कहा। अमोघ ने कितनी सरलता से उसे एक महत्वपूर्ण बात बता दी थी।

अमोघ और कौस्तुभ टहलते हुए अपने अपने अश्वों के पास पहुँचे। तभी कौस्तुभ ने राज भवन की दिशा से दो युवतियों को अश्वों पर बैठे उसी ओर आते हुए देखा।

"इस प्रकार क्या देख रहे हो?" अमोघ ने आश्चर्यचकित कौस्तुभ को देखते हुए पूछा, "तुम्हें ज्ञात नहीं क्या?"

"किस विषय में?"

"राजकुमारी वसुधा भी हमारे साथ युद्ध में जायेंगी।" अमोघ ने अपना स्वर धीमा कर लिया, "हालाँकि मुझे इस विषय में चर्चा तो नहीं करनी चाहिए, परंतु मैंने सुना है कि राजकुमारी और महाराज में एक लंबी बहस हुई है।"

कौस्तुभ ने चौंककर अमोघ की ओर देखा।

"श्शश!" उसने अपने होंठों पर उँगली रखी और कहा, "किसी को ज्ञात नहीं होना चाहिए कि मैंने तुम्हें यह बात बताई है।"

कौस्तुभ अभी भी ध्यान से उन दोनों युवतियों को देख रहा था जो उनसे कुछ दूरी पर खड़े अरिदमन की दिशा में बढ़ रही थीं। राजकुमारी वसुधा को वह भलीभांति पहचानता था, परंतु उसके आश्चर्य का कारण वह नहीं, उसके साथ बढ़ रही दूसरी युवती थी।

वह उसे पहचानने में भूल नहीं कर सकता था।

"राजकुमारी के साथ आ रही वह दूसरी युवती कौन है?" उसने अमोघ से पूछा।

"ओह, वह। वह तो महाराज के बहन की पुत्री उर्वी है।"

उर्वी! कौस्तुभ ने उसे पहले भी देखा था। *उसने उर्वी को एक वर्ष पूर्व सरोवर के निकट देखा था।*

एक वर्ष पूर्व -

"तुम्हें पूर्ण रूप से ज्ञात है कि उस ऋषि ने क्या कहा था?" अपने कक्ष में बैठी वसुधा ने बेला से पूछा। वसुधा, बेला और उर्वी इस समय एक गंभीर विषय पर चर्चा कर रही थीं।

"हाँ!" बेला ने कहा, "मैंने स्वयं सुना था पिताश्री को इस विषय में बातें करते हुए। मृकल नाम के उस ऋषि के विषय में लोग कहते हैं कि वह भविष्य बता सकता है। उन्होंने कहा था 'तुम्हारा वंश ही तुम्हारे वंश का विनाश करेगा,' और यह सुनते ही महाराज अत्यंत क्रोधित हो गए।"

वसुधा के माथे पर चिंता की लकीरें उभर आयीं। उसने अपने वस्त्र के किनारे को अपनी उँगलियों में फँसाया और उसे घुमाने लगी। "परंतु उस ऋषि ने ऐसा क्यों कहा?"

"तुम्हें तो मामाश्री के स्वभाव के विषय में ज्ञात ही है।" उर्वी ने कहा, "संभवतः उन्होंने उस ऋषि की किसी बात का उल्टा अर्थ निकाल लिया हो और उनपर क्रोधित हो गए हों जिसके परिणामस्वरुप उस ऋषि ने ऐसा कहा।"

वसुधा ने उर्वी की ओर देखा और बोली "कोई ऋषि किसी व्यक्ति के विषय में ऐसी असामान्य बात नहीं कहता। और ऋषि इत्यादि तो क्रोध न करने के लिए विख्यात होते हैं।"

उर्वी ने सहमति में अपना सिर हिलाया। उसने ऋषियों के मध्य पर्याप्त समय व्यतीत किया था इसी कारण वह उनके स्वभाव से भी परिचित थी।

"मैं उस मृकल ऋषि से मिलना चाहती हूँ।" वसुधा ने दोनों को बारी-बारी देखते हुए कहा।

"परंतु क्यों?" बेला ने उलझन भरी दृष्टि से उसे देखा, "महाराज को तुम्हारा उस ऋषि से मिलना तनिक भी पसंद नहीं आयेगा।"

"जिस वंश में के विषय में उस ऋषि ने कहा है, मैं भी उसका ही अंग हूँ।"

"परंतु यह संभव नहीं है। वह ऋषि यहाँ से जा चुके हैं।" बेला ने कहा।

"परंतु वह होंगे तो इस राज्य में ही न?" वसुधा ने हठी स्वर में कहा, "हम स्वयं उनके पास जायेंगे।"

बेला ने कोई उत्तर नहीं दिया। कभी-कभी वह इसी प्रकार वसुधा के हठ के आगे निरुत्तर हो जाती थी।

"मुझे तो मामा श्री का भय है।" उर्वी ने कहा।

"पिताश्री के विषय में मैंने भी विचार किया है।" वसुधा ने कहा, "यदि उस ऋषि ने उनसे ऐसे शब्द कहे हैं तो वह किसी भी दशा में मुझे उस ऋषि के निकट नहीं जाने देंगे। परंतु मेरे पास इस समस्या का भी समाधान है।"

उर्वी और बेला ने पहले आपस में देखा और उसके पश्चात वसुधा को देखा।

“हम छिप कर जायेंगे।” वसुधा ने धीमे से मुस्कराते हुए कहा।

“यह तो और भी कठिन है।” वसुधा की मुस्कुराहट देख बेला थोड़ा झुँझला गयी। “युद्ध अभ्यासों में छिप कर जाने के कारण महाराज के कड़े निर्देश हैं कि आपको कहीं बाहर न जाने दिया जाये।” उसे समझ नहीं आ रहा था कि राजकुमारी उस ऋषि ने मिलने के लिए इतनी व्याकुल क्यों हैं।

उर्वी ने बेला की बातों को ही बढ़ाते हुए कहा, “और इसके लिए मामाश्री ने सेनापति हस्तिन को निर्देश दिए हैं। मुझे तो यह संभव नहीं लगता कि हम उनके पहरे से बचकर जा सकेंगे।”

“मुझे सेनापति हस्तिन का व्यवहार समझ नहीं आता।” बेला ने कहा। उसे ज्ञात था कि सेनापति का महाराज कीर्तिवर्धन से कई बार वाद विवाद हो जाता था, परंतु उसके पश्चात भी वह सदैव पूरी तल्लीनता से उनके आदेशों का पालन करता था।

“तुम दोनों इतनी सरलता से निराश क्यों हो गयी।” वसुधा ने पुनः कहा, “पिताश्री ने मात्र हमें सेना के साथ युद्ध अभ्यासों पर जाने से रोका है। परंतु मेरे पास एक अन्य उपाय है।”

“क्या?” दोनों ने एक साथ पूछा।

“हम भ्रमण पर जायेंगे।” वसुधा ने बताया, “उसके लिए तो पिताश्री भी हमें रोक नहीं पायेंगे।”

बेला ने एक गहरी श्वास ली, वसुधा के पास हर बाधा से निकलने का उपाय था। उसने अंतिम समस्या के विषय में वसुधा को बताया। “संभवतः वह तुम्हें न रोकें, परंतु वह हमें कभी भी अकेले नहीं जाने देंगे। सेनापति के विश्वासपात्र चयनित सैनिक सदैव हमारे साथ रहेंगे।”

“उनके विषय में हम बाद में कुछ न कुछ अवश्य सोच लेंगे।” वसुधा ने कहा। “मैं पिताश्री को सूचित कर के आती हूँ।”

“परंतु...” बेला के कुछ कह पाने से पूर्व ही वह वहाँ से जा चुकी थी। बेला ने निराश भाव से अपने सिर को धीरे से हिलाया और उर्वी की ओर मुड़ी। “मुझे भय है कि राजकुमारी की यह हठी स्वभाव किसी दिन उनके लिए समस्या न बन जाये।”

उर्वी शांत थी, समय के साथ उसे भी ज्ञात हो गया था कि कुछ विषयों में वसुधा किसी की नहीं सुनती। इसी कारण वह बेला की भांति उसके निर्णयों का अधिक विरोध नहीं करती थी।

तीन दिवस पश्चात राजकुमारी और उनके साथ चल रहा एक छोटा सा दल एक निर्जन स्थान में यात्रा कर रहा था। निर्जन होने के पश्चात भी हरियाली होने के कारण वह स्थान रमणीय लग रहा था। कच्चे मार्ग के निकट छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं जिनके कारण दूर तक देख पाना असंभव था।

वसुधा की पालकी के आगे अपने अश्व पर बैठी बेला का हृदय असामान्य रुप से स्पंदन कर रहा था। वसुधा ने उसे ऐसा कार्य दिया था जिसमें पकड़े जाने का संकट बहुत अधिक था। मन ही मन वह अपने पिता से डांट खाने की कल्पना भी करने लगी।

उनकी सूचना के अनुसार ऋषि मृकल का कोई स्थायी निवास स्थान नहीं था। वह सदैव अत्यधिक एकांत स्थानों पर रहते थे और भिक्षा माँग कर जीवन यापन करते थे। उस स्थान से थोड़ी ही दूर पर एक सरोवर था, जिससे कुछ दूरी पर ऋषि मृकल ने अपना वर्तमान निवास स्थल बनाया था। उनकी योजना यह थी कि वह दल सहित उस सरोवर के निकट रुकते और उतने समय में वसुधा उस ऋषि से मिलने वाली थी।

उर्वी वसुधा के साथ पालकी के भीतर ही बैठी हुई थी। इसका उद्देश्य यह था कि वसुधा की अनुपस्थिति में यदि कोई पालकी के भीतर झाँकता तो वह वसुधा के सोये होने अथवा तनिक अस्वस्थ होने की बात कह सकती थी। किसी भी सैनिक अथवा परिचारिका में इतना साहस नहीं था कि वह राजकुमारी वसुधा को बिना किसी कारण के परेशान करता।

वसुधा को पालकी के स्थान पर अश्व पर बैठ कर यात्रा करना अधिक पसंद था, परंतु अपनी योजना के कारण उसने पालकी में ही यात्रा करने का निर्णय लिया।

“इस योजना में बहुत संकट है।” बेला ने अपना प्रतिरोध व्यक्त किया था परंतु वसुधा भी अपने निर्णय पर दृढ़ थी।

“हमारे पास यही एकमात्र विकल्प है।”

इसके पश्चात बेला ने कुछ और नहीं कहा और वसुधा का साथ देने के लिए तैयार हो गयी।

कुछ ही समय पश्चात उन्हें सरोवर दिखने लगा। बेला ने अपने अश्व को तनिक धीमा किया और अपने पीछे चल रही पालकी के साथ-साथ चलने लगी। उसने धीरे से वसुधा को बुलाया।

“क्या हुआ?” वसुधा ने धीरे से पालकी का आवरण हटाया और बाहर झाँका।

“शीघ्र ही हम सरोवर के निकट पहुँचने वाले हैं। जैसा तय हुआ था, तय्यप को आदेश दे दीजिएगा।” बेला का स्वर सावधान और धीमा था।

वसुधा ने सहमति में सिर हिलाया और पुनः आवरण से पालकी के द्वार को ढक दिया। उतने समय में बेला को उर्वी भी दिखी जो परेशान दिख रही थी। वह भी उनकी योजना का अंग थी और पकड़े जाने के भय से ही व्याकुल थी।

तय्यप राजकुमारी के साथ चलने वाले उस छोटे से दल का प्रमुख था। स्वयं सेनापति हस्तिन ने उसे यह आदेश दिया था कि वह राजकुमारी की रक्षा करे और उन्हें कुछ भी अनुचित करने से रोके। इसी कारण वह बहुत सतर्क था। यात्रा आरंभ करने से पूर्व उसने पालकी की अच्छे से जाँच की थी कि कहीं उसमें कोई शस्त्र आदि तो नहीं छिपाए गए हैं।

उसे यह आदेश प्राप्त हुआ था कि वह वसुधा को किसी भी स्थान पर जाने से न रोके, मात्र उन्हें अपनी दृष्टि से ओझल न होने दे। जब उसे ज्ञात हुआ कि राजकुमारी पालकी में यात्रा करेंगी तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। अश्व की तुलना में पालकी की गति अत्यंत धीमी थी।

वह दल की प्रथम पंक्ति में चल रहा था जब उसे राजकुमारी का आदेश प्राप्त हुआ–“राजकुमारी जी ने कहा है कि दल को कुछ समय के लिए सरोवर के निकट रोका जाये। निरंतर पालकी में यात्रा करने के कारण उनका स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं लग रहा, इसी कारण वह कुछ समय के लिए रुकना चाहती हैं।”

तय्यप ने ध्यानपूर्वक सैनिक द्वारा लाया हुआ संदेश सुना और सामने दिख रहे विशाल सरोवर को देखा। वसंत ऋतु के कारण सरोवर के निकट छोटे-छोटे कई पौधे उग आये थे जिनमें भिन्न-भिन्न वर्ण के पुष्प लगे थे।

"उचित है।" उसने धीरे से कहा। इस स्थान पर रुकने में उसे कोई हानि नहीं दिख रही थी। उसने एक संकेत किया और उसके पीछे चल रहे अश्व एक-एक कर रुकते गए।

उसने ऊँचे स्वर में सैनिकों से कहा, "कुछ समय तक हम इसी स्थान पर रुकेंगे। तब तक आप सभी निकट के वृक्षों पर लदे फल खाइए, सरोवर का शीतल पीजिये और विश्राम करिए।"

बेला ने मन ही मन एक राहत की श्वास ली। तय्यप ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। वसुधा ने अपने पिता से वन में भ्रमण करने की आज्ञा ली थी और जान बूझकर वह मार्ग चुना था जहाँ मध्य में वह सरोवर पड़ता।

बेला ने राजकुमारी की पालकी को सरोवर से कुछ दूर पहले ही घने वृक्षों के निकट रुकवा दिया। उनकी योजना के लिए यह आवश्यक था। वसुधा ने एक बार पालकी से बाहर आकर सभी से कह दिया कि वह विश्राम करने वाली है और संध्या से पूर्व उन्हें कोई परेशान न करे। बेला ने भी सभी सेवकों और दासियों को आदेश दिया कि वह सरोवर के निकट जाकर विश्राम करें।

"सब चले गए?" पालकी के भीतर बैठी उर्वी ने पूछा।

"हाँ। और तुम भी परेशान न होना। मैं शीघ्र ही वापस लौटूँगी। यदि इस मध्य कोई पालकी के निकट आये तो उसे वही कहना जैसा हमने निश्चय किया था।"

उर्वी ने धीमे से सहमति में अपना सिर हिलाया।

वसुधा धीरे से पालकी के दूसरे द्वार से बाहर आई और वृक्षों की ओट में छुपते हुए कुछ ही क्षणों में दृष्टि से ओझल हो गयी।

तय्यप ने दो सैनिकों को पालकी के निकट भेज दिया, कुछ अन्य सैनिकों को उस स्थान के चारों ओर पहरा देने का आदेश दिया और स्वयं सरोवर के निकट बैठ गया। वह मन ही मन निश्चिंत था कि ऐसे शांत मनोरम स्थान पर कुछ नहीं होने वाला।

वसुधा कुछ दूर तक छिपते हुए ही वन में आगे बढ़ी और शीघ्र ही आश्वस्त हो गयी कि कोई उसके पीछे नहीं आ रहा। प्रथम तो उसे विश्वास था कि किसी को अनुमान भी नहीं होगा कि कोई ऋषि उस स्थान पर रह रहा होगा और द्वितीय कोई यह भी नहीं विचार करने वाला था कि वसुधा उस ऋषि के पास जा रही थी।

उसे वन में अधिक भटकना नहीं पड़ा क्योंकि शीघ्र ही उसे वृक्षों के मध्य बनी एक छोटी सी कुटी दिखाई दी। एकमात्र कुटी। उसके निकट उसे खरगोश, हिरण और कई छोटी छोटी गिलहरियाँ दिखाई दीं। मुख्य द्वार के स्थान पर मात्र दो लकड़ियाँ तिरछी कर के लगायी गयीं थी, संभवतः बड़े पशुओं का प्रवेश रोकने के लिए, वसुधा ने सोचा, क्योंकि खरगोश, गिलहरी जैसे छोटे पशु तो सरलता से भीतर बाहर विचर रहे थे।

उसे कोई दिखाई नहीं दिया तो उसने पुकारा, "कोई है?"

आगे ही क्षण द्वार पर एक तेजस्वी पुरुष प्रकट हुए। काली घनी दाढ़ी और घनी मूंछों के मध्य उनके मुख का अत्यंत कम भाग ही स्पष्ट दिख रहा था। संभवतः यही कारण था कि वसुधा उनकी आयु का अनुमान नहीं लगा सकी। उन्होंने प्रश्नवाचक दृष्टि से अपने द्वार पर खड़ी युवती को देखा। उसी क्षण दो गिलहरियाँ दौड़ते हुए उनके पाँव पर चढ़कर चली गयीं।

वसुधा ने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए, "मेरा नाम वसुधा है ऋषिवर! मैं बहुत दूर से यहाँ आपसे मिलने आई हूँ।"

"परंतु किस प्रयोजन से?"

"मुझे ज्ञात हुआ है कि आप भविष्यद्रष्टा हैं।" वसुधा ने तनिक सकुचाते हुए कहा, उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह किस प्रकार अपना प्रश्न पूछे।

ऋषि मृकल ने तत्क्षण कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने कुछ समय तक वसुधा को ध्यानपूर्वक देखा और अंततः द्वार पर लगी लकड़ियाँ हटाते हुए उसे भीतर आने को कहा।

वसुधा ने भीतर प्रवेश किया तो मृकल ने एक आसन की ओर संकेत कर उसे बैठने को कहा और निकट ही रखे दूसरे आसन पर स्वयं बैठ गए।

"कहिये, उत्तराँचल की राजकुमारी से यह किसने कहा कि मैं भविष्य देख सकता हूँ।" ऋषि ने मुस्कराते हुए कहा।

"क्या आपने स्वयं महाराज को उनके भविष्य के विषय में नहीं बताया था?"

"भविष्य को देखना और भविष्य के विषय में बताना दोनों भिन्न है।" ऋषि अभी भी मुस्कुरा रहे थे।

उनकी मुस्कुराहट वसुधा के लिए और भी उलझन उत्पन्न कर रही थी। "क्षमा करिए ऋषिवर! दोनों किस प्रकार भिन्न हैं?"

"किसी घटना को देखना उसकी निश्चितता को बताता है वहीं उस घटना के विषय में सुनना उस घटना को सुनिश्चित नहीं करता।" ऋषि ने कहा, "यदि सरल शब्दों में कहूँ तो यह आवश्यक नहीं कि मैं जो बताता हूँ वह घटित ही हो।"

"परंतु आप किस आधार पर भविष्य के विषय में बताते हैं?" वसुधा ने पूछा, "या यह सब मात्र एक मिथ्या है, सामान्य जनों के मनोरंजन का कोई साधन।"

"मनुष्य का भविष्य उसके अतीत का दर्पण होता है। भूतकाल में किये गए कार्यों की प्रतिक्रियाओं का जटिल समूह ही मनुष्य के भविष्य का निर्माण करता है। यह सृष्टि मूलतः पंचभूतों से ही निर्मित है जो कभी नष्ट नहीं होते और सृष्टि के आरंभ से ही विद्यमान हैं। इन्हीं तत्वों में मनुष्य के कर्म भी अभिलेखित रहते हैं जिनके आधार पर यह बताना सरल है कि मनुष्य किन परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करेगा।" मृकल ने एक क्षण का विराम लिया और पुनः कहा, "और भगवान एकेश्वर की कृपा से मैं ऐसा कर सकने में सक्षम हूँ। जिसे लोग सरलीकरण के पश्चात कहते हैं कि मैं उनका भविष्य बता सकता हूँ। परंतु वास्तव में वह वही जान सकते हैं जिसके विषय में यह पंचभूत उसे बताना चाहते हैं।"

"आपने महाराज से यह क्यों कहा कि 'तुम्हारा वंश ही तुम्हारे वंश का विनाश करेगा।'" वसुधा ने अपना मुख्य प्रश्न किया जिसके कारण वह इतना संकट मोल लेकर वहाँ आई थी।

"मैंने मात्र वही कहा जिसका अनुभव किया।" ऋषि ने कहा, "मैं अधिकांश समय एकद्वीप में भ्रमण करता रहता हूँ और भिक्षा एकत्र करता हूँ। उस दिन मैं उत्तराँचल में था जब एक जिज्ञासु व्यक्ति ने मुझसे अपने भविष्य के विषय में पूछा। संयोगवश महाराज भी उस दिन उसी स्थान से जा रहे थे जब उन्होंने मुझे उस व्यक्ति का भविष्य बताते हुए देखा और हठ करने लगे।"

वसुधा कुछ क्षण मौन रही। वह अपने पिता के व्यवहार से अवगत थी। "परंतु आपने उनके वंश के बारे में ऐसा क्या अनुभव किया था?"

"यह बताना संभव नहीं।" ऋषि ने कहा, "जीवन में कुछ प्रश्नों के उत्तर स्वयं ही ढूँढने पड़ते हैं। और न ही यह बताना संभव है कि पंचभूतों ने मुझे मात्र वही क्यों बताया। संभवतः वह कोई संकेत हो जिसे समय आने पर पहचाना जा सके। परंतु जैसा कि मैंने कहा मेरे द्वारा बताया गया भविष्य सदैव निश्चित नहीं रहता।"

"अर्थात वह परिवर्तनशील है?"

"हाँ! परंतु यह सरल नहीं। समय आने पर मात्र कुछ ही व्यक्ति सक्षम होते हैं जो अपने स्वभाव के विपरीत कार्य कर पाते हैं। भविष्य का परिवर्तनशील होना मनुष्य की इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है।"

इसके पश्चात वसुधा ने कोई प्रश्न नहीं किया। ऋषि के व्यवहार से भी यह स्पष्ट था कि अब उनके पास भी बताने को कुछ शेष नहीं। वसुधा अपने स्थान से उठी, उसने ऋषि को प्रणाम किया और पुनः उस सरोवर की दिशा में बढ़ गयी।

बेला ने पालकी के निकट खड़े दोनों सैनिकों को देखा, वह बातें करने में व्यस्त थे, वन की ओर से आती हुई वसुधा कदाचित उन्हें न दिखती। पालकी से थोड़ी दूरी पर कुछ सेविकाएँ भी थीं, परंतु बेला उनकी ओर से निश्चिंत थीं।

तय्यप ने कुछ सैनिकों को पहरा देने के लिए भी नियुक्त किया था, परंतु वह वन की ओर नहीं अपितु मार्ग की ओर पहरा दे रहे थे। अतः वह उनकी ओर से भी निश्चिंत थी।

उसने एक बार पुनः मन ही मन स्वयं को समझाया कि कोई संकट नहीं उत्पन्न होने वाला। उसने साथ लाये मीठे स्वादिष्ट मेवे खाए, शीतल जल पिया और पालकी की ओर मुड़ी। परंतु उसे कुछ ऐसा दिखा कि वह स्तब्ध रह गयी।

एक युवक सभी की दृष्टि बचाते हुए पालकी के निकट पहुँच गया था। मुख और वस्त्र से तो वह युवक अपरिचित प्रतीत होता था। *क्या वह कोई शत्रु है?* कुछ ही क्षणों में बेला के मस्तिष्क में सैकड़ों विचार आये और गए। वह समझने का प्रयास ही कर रही थी कि उस युवक का उद्देश्य क्या है कि उस युवक ने पालकी का आवरण हटा दिया।

"रोको उसे!" बेला अपना संपूर्ण बल लगाकर चीखी और स्वयं भी उस दिशा में दौड़ गयी, "वह राजकुमारी को हानि पहुँचाने वाला है।"

कई सैनिक उस दिशा में दौड़ गए। वह युवक भी हड़बड़ाकर पुनः मार्ग की दिशा में दौड़ गया। बेला पालकी के निकट पहुँची ही थी कि तय्यप भी उसके निकट आकर खड़ा हो गया। वह पालकी के भीतर बैठी उर्वी से बातें करना चाहती थी, परंतु तय्यप के कारण ऐसा नहीं कर सकती थी। बातें करते समय तय्यप यह देख सकता था कि पालकी के भीतर वसुधा नहीं है।

तभी कुछ सैनिक वापस लौटे। "वह युवक भागने में सफल हो गया," एक सैनिक ने कहा।

"हूँ!" तय्यप ने गंभीर स्वर में कहा, "कौन था वो?"

"संभवतः निकट ही रहने वाला कोई ग्रामवासी।" सैनिक ने बताया, "वह दो थे और उनके पास अश्व भी थे। मैंने कुछ ही समय पूर्व उसे यहाँ आने से मना किया था परंतु प्रतीत होता है कि वह युवक नहीं माना।"

तय्यप ने अपना सिर हिलाया और सभी सैनिकों की ओर मुड़ा, "आप सभी पूर्ववत पहरा दीजिये। हम कुछ ही क्षणों में यहाँ से प्रस्थान करने वाले हैं।"

सभी सैनिक वहाँ से चले गए।

"राजकुमारी से आदेश ले लीजिये, हम शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे।" तय्यप ने बेला से कहा।

"परंतु उन्होंने कहा है कि वह कुछ समय तक इसी स्थान पर रुकेंगी।"

"नहीं! हम अधिक विलंब नहीं कर सकते। संध्या होने से पूर्व हमें किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचना होगा।" तय्यप का स्वर दृढ़ था।

बेला पालकी के द्वार की ओर मुड़ी और ठिठक गयी।

"क्या हुआ?" तय्यप ने कहा, जिसकी दृष्टि पालकी के द्वार की ओर टिकी हुई थी।

कहीं तय्यप को हम पर संदेह तो नहीं हो गया, बेला ने मन ही मन सोचा। उसने धीरे से आवरण हटाया और अपनी आँखें बंद कर ली।

"क्या बात है बेला?" उसे वसुधा का स्वर सुनाई दिया। उसने प्रसन्नता से आँखें खोलीं। पालकी के भीतर वसुधा बैठी हुई उर्वी से बातें कर रही थी।

"तय्यप आपसे कुछ कहना चाहते हैं।" बेला ने तय्यप की ओर देखते हुए कहा।

"म... मैं।" बेला के इस प्रकार कहने से तय्यप हड़बड़ा गया, "हाँ। मैं कह रहा था कि हमें शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए।"

"अवश्य।" वसुधा ने मुस्कराते हुए कहा, "आप तैयारियाँ कीजिये।"

तय्यप ने सहमति में सिर हिलाया और अपने सैनिकों की ओर बढ़ गया।

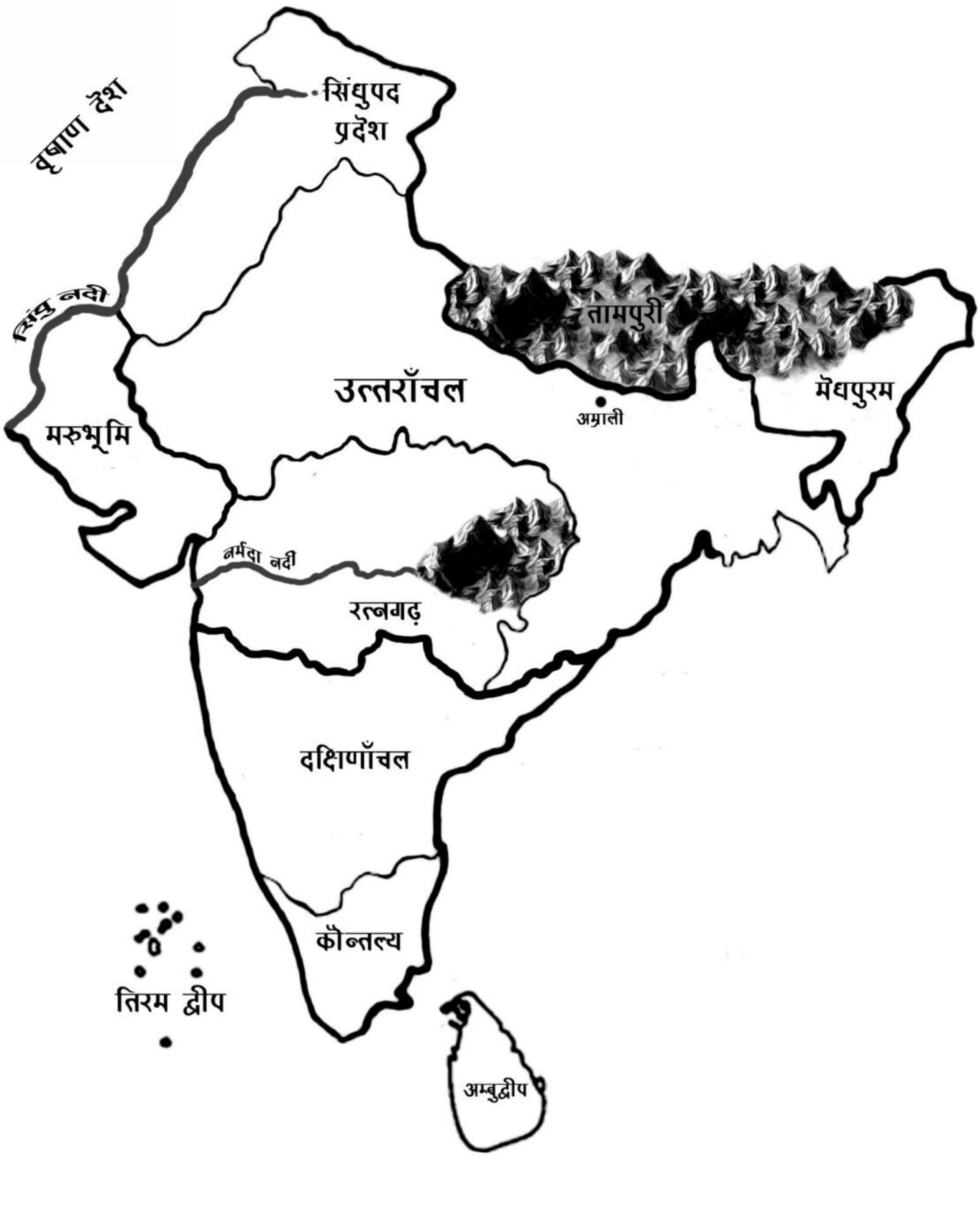
"किस प्रकार किया? यहाँ तो हर क्षण सैनिकों का पहरा था।" बेला ने वसुधा से पूछा। वसुधा के वापस आ जाने से वह अब निश्चिंत अनुभव कर रही थी। कुछ ऐसा ही उर्वी के साथ थे जिसके मुख पर भी मुस्कान दिख रही थी।

"मैं कुछ ही क्षणों पूर्व यहाँ आई। तब यहाँ कोई सैनिक नहीं थे। तुम्हारा और तय्यप का ध्यान मार्ग की दिशा में था। उर्वी मुझे बता ही रही थी कि यहाँ क्या हुआ था।"

"आप पूर्णतः उचित समय पर आयीं। परंतु आप जिस कार्य के लिए यहाँ आई थीं, क्या वह पूर्ण हुआ? क्या उस ऋषि से आपकी भेंट हुई?"

"हाँ।" वसुधा ने एक दीर्घ श्वास लेते हुए कहा, "भेंट भी हुई और उन्होंने मेरे प्रश्नों का उत्तर भी दिया। हालाँकि उनकी बातों का अर्थ अभी मुझे भी नहीं ज्ञात। संभवतः समय से पूर्व सब कुछ ज्ञात करना असंभव है।"

खंड 2


वृषाण देश
सिंधुपद
प्रदेश
सिंधु नदी
उत्तराँचल
तामपुरी
मेघपुरम
अम्राली
मरुभूमि
नर्मदा नदी
रत्नगढ़
दक्षिणाँचल
कौन्तल्य
तिरम द्वीप
अम्बुद्वीप

अध्याय 14
सिंधुपद

सिंधुपद प्रदेश का विशाल राजभवन शतद्रु नदी के तट के निकट स्थित था। राजभवन की ऊँचाइयों से भी दूर तक फैली उस नदी का दूसरा तट नहीं दिखाई देता था। अपने कक्ष में बैठे राजाश्री रुद्रसेन शतद्रु के जल को स्पर्श कर पुनः लौट आने वाली शीतल वायु का आनंद ले रहे थे।

अपने जीवन के सत्तर वर्षों में से चालीस वर्ष उन्होंने इसी राजभवन से संपूर्ण सिंधुपद पर शासन किया था, परंतु जैसा संकट वर्तमान में उनके सामने मुँह बाये खड़ा था, वैसे किसी संकट का सामना उन्हें आज तक नहीं करना पड़ा था।

उसी समय उनके छोटे पुत्र चंद्रसेन और प्रधानमंत्री देवपाल ने कक्ष में प्रवेश किया। रुद्रसेन ने व्याकुल दृष्टि से उन्हें देखा।

“अम्राली के राजाश्री अरिदमन का संदेश आया है।” देवपाल ने कहा।

“क्या?” रुद्रसेन ने पूछा।

“उत्तरांचल की सेना के साथ वह एक प्रहर में यहाँ पहुँच जायेंगे। उन्होंने अनुरोध किया है कि वह अधिक समय यहाँ नहीं रुकेंगे और प्रातःकाल ही यहाँ से प्रसान नगर की ओर प्रस्थान करेंगे।”

“हूँ! उचित है। हम भी नहीं चाहते कि प्रसान नगर से उन वर्षाणों को खदेड़ने में अधिक विलंब हो।” जब से रुद्रसेन को प्रसान नगर पर आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ था, तभी से उनके हृदय में वर्षाणों के प्रति क्रोध और घृणा भर गया था।

“प्रसान नगर से भी भैया का संदेश आया है।” अभी तक शांत खड़े चंद्रसेन ने कहा। उसकी व्याकुलता देख रुद्रसेन ने अनुमान लगाया कि उसे अवश्य ही संदेश से संबंधित कुछ बात करनी थी। उसने प्रश्नवाचक दृष्टि प्रधानमंत्री देवपाल की ओर घुमाई।

देवपाल ने सहमति में अपना सिर हिलाया और कहना आरंभ किया, “सिंधुपद के युवराज और सेनापति प्रतापसेन ने लिखा है कि प्रसान नगर के बाहर स्थिति अभी भी पूर्व की भांति ही बनी हुई है। नगर के भीतर उपस्थित वर्षाणों से वार्ता करने के सभी प्रयास विफल रहे हैं। प्रसान नगर की प्रजा की कैसी स्थिति है, इसके विषय में भी हमें कुछ ज्ञात नहीं हो सका है।”

“प्रजा की स्थिति अवश्य दयनीय होगी।” चंद्रसेन ने क्रोधित स्वर में कहा, “उत्तराँचल की सेना के आने के पश्चात हम प्रसान नगर की बाह्य प्राचीरों को तोड़कर उन वर्षाणों को वहाँ से भगायेंगे।”

“परंतु राजकुमार, यह न भूलें कि उत्तराँचल की मात्र आधी से कम सेना ही हमारी सहायता हेतु यहाँ आ रही है।” देवपाल ने धीमे स्वर में कहा, “और प्रसान नगर में कितने वर्षाण हैं, हमें इसका भी अनुमान नहीं।”

“युद्ध पर चर्चा हम अरिदमन के यहाँ आने के पश्चात करेंगे।” रुद्रसेन ने दोनों को शांत कराते हुए कहा, “राजकुमार! आप राजभवन में उपस्थित सभी सैनिकों को एकत्र करिए और उन्हें सूचित करिए कि आप प्रातःकाल ही प्रस्थान करेंगे। प्रधानमंत्री! आप अभ्यास क्षेत्र में अरिदमन और उनके सैनिकों के रुकने की व्यवस्था करिए। एक रात्रि के शिविर लगाने हेतु अभ्यास क्षेत्र पर्याप्त होना चाहिए।”

देवपाल और चंद्रसेन ने राजाश्री का अभिवादन किया और कक्ष से चले गए।

रुद्रसेन कक्ष के गवाक्ष तक पहुँचा और शतद्रु के तट को देखने लगा। वहाँ से आने वाली वायु उसके श्वेत हो चुके केशों को झुलाने लगी। उसे ज्ञात था कि चंद्रसेन सदैव से ही बल को बुद्धि से अधिक प्राथमिकता देता था, जो कि उचित नहीं था।

अरिदमन अपनी सूचना के ही अनुरुप सेना सहित मध्यान्ह तक सिंधुपद पहुँच गया। देवपाल ने पूर्व में ही राजभवन के प्रांगण में बने विशाल युद्ध अभ्यास क्षेत्र को रिक्त करा दिया था जहाँ सेना ने अपने अपने शिविर लगाने आरंभ किये। देवपाल के अनुनय करने के पश्चात भी अरिदमन ने राजभवन की किसी कक्ष के स्थान पर स्वयं अपना शिविर बनाने का निर्णय लिया।

संध्या समय राजकुमार चंद्रसेन टहलते हुए सभी शिविरों का निरीक्षण करने के पश्चात एक स्थान पर खड़ा था। सूर्य अस्त हो चुका था, परंतु आकाश में कुछ लालिमा अभी भी शेष थी। कुछ सैनिक अपने शिविर लगा चुके थे, कुछ अभी भी लगा रहे थे। कुछ सैनिकों ने एकाएक बढ़ गयी ठंड से बचने के लिए अलाव भी जला लिए थे।

एक सैनिक चंद्रसेन के निकट आया और सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

“क्या हुआ?” चंद्रसेन ने उस सैनिक से पूछा। वह सिंधुपद का एक सैनिक था जिसे चंद्रसेन ने किसी विशेष कार्य से भेजा था।

“उन्होंने मना कर दिया।” सैनिक ने धीरे से कहा।

चंद्रसेन ने धीरे से अपना सिर हिलाया और उस सैनिक को वहाँ से जाने का संकेत किया। उसके पश्चात वह स्वयं उस ओर बढ़ गया जहाँ दो युवतियाँ अपना शिविर लगा रही थीं।

“उत्तराँचल की राजकुमारी वसुधा मेरा अभिवादन स्वीकार करें।” उसने धीरे से कहा।

वसुधा पूरी तल्लीनता से अपने शिविर के एक कोने को बार बार सही कर रही थी, जो वायु के वेग से भूमि से उखड़ जा रहा था। उसके निकट खड़ी उर्वी भी उसकी सहायता कर रही थी, हालाँकि अपने सम्मिलित प्रयासों के पश्चात भी वह दोनों सफल नहीं हो सकी थीं।

वसुधा उस अपरिचित स्वर की दिशा में मुड़ी।

“राजकुमार चंद्रसेन।” वसुधा ने अत्यंत कठिनाई से उसे पहचाना। उसके मस्तिष्क में कई वर्षों पूर्व के बालक चंद्रसेन की छवि उभर आई। उसने अंतिम बार चंद्रसेन को वर्षों पूर्व देखा था जब वह अपने पिता के साथ सिंधुपद आई थी।

हालाँकि वर्तमान में उसके समक्ष खड़े चंद्रसेन में अधिक अंतर नहीं आया था। उसका शरीर लंबा हो गया था, वक्ष चौड़ा हो गया था, भुजाएँ बलिष्ठ हो गयी थीं, परंतु उसके मुख पर अभी भी एक कोमलता थी। उसके भीतर उस गंभीरता का अभाव था जो उनके भीतर होता है जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय रणक्षेत्र के मध्य बिताया हो।

“आपने हमारा आतिथ्य का अनुरोध क्यों अस्वीकार कर दिया।” चंद्रसेन ने कहा।

“मैं यहाँ अतिथि नहीं अपितु एक सैनिक के रूप में आयी हूँ।” वसुधा ने निर्विकार भाव से कहा, “इसी कारण मैंने भी अन्य सैनिकों की भांति शिविर लगाने का चयन किया है। यदि कभी पुनः सिंधुपद आना हुआ तो मैं अवश्य ही आपका आतिथ्य स्वीकार करूँगी।”

चंद्रसेन मुस्कराया। “यदि एकद्वीप की सभी युवतियाँ आपके जैसे विचार रखतीं तो हमारा सैन्य बल तत्क्षण दुगुना हो जाता।”

“क्या हमारा प्रधान पुरुष समुदाय इसकी अनुमति देगा?” वसुधा ने पूछा।

चंद्रसेन को एक क्षण के लिए कोई उत्तर नहीं सूझा, फिर अगले ही वह क्षण वह हँसने लगा। “एक बात तो निश्चित है, आपके विचार औरों से पूर्णतः भिन्न हैं।” वह तनिक गंभीर हुआ और बोला, “आपने हमारा आतिथ्य तो स्वीकार नहीं किया, परंतु कुछ दूर तक हमारे साथ विचरण तो अवश्य कर सकती हैं न? इसी माध्यम से हमें अपने साथ युद्ध करने वाली राजकुमारी के विषय में कुछ जानने का अवसर भी प्राप्त हो जायेगा।”

वसुधा ने उर्वी की ओर देखा जो अपने कार्य में व्यस्त थी। कुछ समय की अनुपस्थिति से उसे कोई समस्या नहीं होने वाली थी। उसने चंद्रसेन की ओर देखा और सहमति में अपना सिर हिलाया। “अवश्य! मुझे कोई समस्या नहीं।”

दोनों चलते हुए अभ्यास क्षेत्र से बाहर पहुँच गए।

“मुझे ज्ञात हुआ है कि भैया प्रसान नगर जाने से पूर्व सिंधुपद आये थे।” वसुधा ने कहा। उसके मस्तिष्क में कई प्रश्न थे जिनके उत्तर उसे चंद्रसेन से प्राप्त हो सकते थे। इसी कारण उसने चंद्रसेन के साथ विचरण करना स्वीकार किया था।

“हाँ, परंतु मात्र कुछ समय के लिए। उन्होंने किसी को बताया नहीं कि वह किसी विशेष उद्देश्य से प्रसान नगर जा रहे थे।” चंद्रसेन ने स्मरण करते हुए कहा। “उस समय युवराज से मेरी भेंट भी नहीं हो पायी थी।”

“भैया को अवश्य संदेह रहा होगा कि वर्षाण कुछ आपत्तिजनक करने वाले हैं। अंततः उनका संदेह सत्य सिद्ध हुआ।” वसुधा ने अपना सिर झुका लिया। उसकी आँखें भर आयीं थीं।

“युवराज की मृत्यु का शोक हम सभी को है।” चंद्रसेन कुछ क्षण रुककर बोला, “संभवतः उनकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने के पश्चात ही वह शोक कुछ कम होगा।”

वसुधा ने एक गहरी श्वास ली। *उसके लिए वह शोक जीवन पर्यंत नहीं समाप्त होने वाला था।* “शत्रु की स्थिति के विषय में आपके क्या विचार हैं?” उसने पूछा। “हमें तो सभी सूचना मात्र पत्रों के माध्यम से ही प्राप्त होती थी, परंतु आप तो शत्रु के निकट हैं।”

“शत्रु प्रबल है।” चंद्रसेन का स्वर गंभीर हो गया। “परंतु हम भी उसका मुंहतोड़ उत्तर देंगे। उन्होंने हमारी जन्मभूमि पर आक्रमण किया है, और वह भी कायरों की भांति। परंतु उन्हें नहीं ज्ञात कि जन्मभूमि की रक्षा के लिए हमारा प्रत्येक सैनिक दस सैनिकों के समान है।”

“वर्षाणों के विषय में मैंने भी कई कथाएँ सुनी हैं। उनके पशुत्व के विषय में, उनकी निर्दयता के विषय में।” वसुधा ने भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से सुनी हुई बातों का स्मरण करते हुए।

“वह सभी बातें पूर्णतः सत्य हैं। वर्षाण मूलतः घुमंतू प्रवृत्ति के लोग हैं, परंतु पिछले पचास वर्षों से वह अधिक सामाजिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी ओर से बढ़ता व्यापार इसका प्रमाण था। दो वर्षों पूर्व असाक के राजा बनने से स्थिति में और सुधार आया था। मैंने सुना है वह अपने पूर्वजों की भांति ही निर्दयी है, परंतु घुमंतू जीवन के विपरीत अपनी प्रजा के लिए ठहराव भरा जीवन चाहता है।”

“परंतु एक प्रश्न का उत्तर हमें अभी भी नहीं ज्ञात।” वसुधा ने दूर क्षितिज में उग आये चंद्रमा को देखते हुए कहा, “उन्होंने ऐसा क्यों किया?”

“इसका वास्तविक उत्तर तो संभवतः वही दे सकते हैं।” चंद्रसेन ने कहा, “हालाँकि हमें संदेह है कि असाक को ऐसा करने के लिए दक्षिणांचल के महाराज शतबाहु ने प्रेरित किया है।”

वसुधा ने भी कइयों के मुख से यह संभावना सुनी थी, और अब उसे स्वयं ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह मात्र संभावना नहीं, वास्तविकता थी।

“शतबाहु के रत्नगढ़ पर आक्रमण से यह स्पष्ट है कि वह संपूर्ण उत्तराँचल पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था।” चंद्रसेन ने आगे कहा, “अथवा ऐसा कहें कि वह संपूर्ण एकद्वीप पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि वह पुनः आक्रमण करेगा। वह एकद्वीप को पुनः एक कर उसका महाराज बनना चाहता है।”

“उत्तराँचल और दक्षिणांचल पुनः एक होंगे।” वसुधा ने क्रोधित स्वर में कहा, “परंतु शतबाहु की मृत्यु के पश्चात। उसकी मृत्यु ही दोनों राज्यों के विलय का मार्ग प्रशस्त करेगी।”

पर्वतराज हिमालय के निकट होने के कारण उत्तराँचल और अम्राली की अपेक्षा सिंधुपद के वातावरण में ठंड अधिक थी। सूर्यास्त होते ही यह ठंड अप्रत्याशित रूप से बढ़ गयी थी, संभवतः शतद्रु से आने वाली वायु का भी इसमें योगदान था।

सभी दलपतियों का शिविर एक स्थान पर लगाया गया था। अरिदमन ने राजकुमारी वसुधा को भी एक दलपति के समकक्ष पद दिया था, इसी कारण उसका शिविर भी अन्य दलपतियों के निकट ही लगाया जा रहा था।

ठंड की अधिकता के कारण अधिकांश लोगों ने अलाव जला लिए थे और अग्नि के निकट बैठ बातें करने में व्यस्त थे। वर्षाणों के विषय में, युद्ध की रणनीति के विषय में, सिंधुपद के वैभव के विषय में और कुछ अपने परिवार के विषय में बातें कर रहे थे।

एक लंबी यात्रा के पश्चात कौस्तुभ स्वयं को थका हुआ अनुभव कर रहा था। वह कुछ समय से अमोघ के साथ एक अलाव के निकट बैठा था। अमोघ, कुछ अन्य दलपति और कुछ सैनिक पिछले युद्धों के विषय में चर्चा कर रहे थे जिसमें कौस्तुभ को तनिक भी रुचि नहीं थी। उनकी वार्ता के मध्य रह-रह कर जल रही लकड़ियों के चटकने की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

कौस्तुभ अपने स्थान से उठा और अपने शरीर को गतिशील करने के लिए शिविरों के मध्य टहलने लगा। अपने शिविर के निकट से गुजरते समय उसने नासन को देखा जो ध्यान से उसे ही देख रहा था। उत्तराँचल से प्रस्थान करने से कुछ ही क्षण पूर्व प्रधानमंत्री महात्य ने उसे सूचित किया था कि नासन उसका अंगरक्षक है।

“परंतु महोदय, मुझे अंगरक्षक की कोई आवश्यकता नहीं।” कौस्तुभ ने प्रतिरोध किया था। परंतु महात्य ने उसकी एक न सुनी। उस समय कौस्तुभ को अनुभव हुआ कि अवश्य ही महाराज ने महात्य को उसे दिए गए वचन के विषय में बताया होगा।

कारण जो भी रहा हो, यह स्मरण करते ही कि 'नासन उसका अंगरक्षक था,' उसे विचित्र अनुभव होता था। कौस्तुभ को पिछले पड़ाव का स्मरण हो आया जहाँ वह शिविर के निकट टहल रहा था। तब नासन बिना कुछ कहे ही उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उसने नासन को अत्यंत कठिनाई से समझाया कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

कुछ और दूर बढ़ने के पश्चात कौस्तुभ ने अपने पग राजकुमारी वसुधा के शिविर की ओर मोड़ दिए। उत्तराँचल में भी उसे वसुधा से बातें करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। *उनके मस्तिष्क में अभी भी मेरी बुरी छवि ही होगी।* वास्तव में वह भयभीत था, इस कारण नहीं कि उसने कोई गलत कार्य किया था। अपितु इस कारण कि वह वसुधा के समक्ष अपना पक्ष नहीं रख पाया था।

वह वसुधा के शिविर के बाहर पहुँचा तो उसे शिविर से बाहर निकलती हुई उर्वी दिखाई दी। एक क्षण के लिए दोनों के नेत्र मिले और कौस्तुभ को अपनी हृदय गति बढ़ती हुई प्रतीत हुई।

"अ... राजकुमारी वसुधा," कौस्तुभ के कंठ से अत्यंत कठिनाई से कुछ शब्द निकले, "क्या वह शिविर में हैं?"

"नहीं।" उर्वी ने मात्र इतना ही कहा। वह कुछ क्षणों तक अपने स्थान पर खड़ी रही और उसके पश्चात शिविर के बाहर एकत्र की हुई लकड़ियों को जलाने का प्रयास करने लगी।

कौस्तुभ के समक्ष वह दृश्य घूम गया जब उसने प्रथम बार उसे देखा था, सरोवर के निकट।

उर्वी ने अलाव जलाने के लिए लकड़ियाँ मँगवायी थीं और अरणी की सहायता से अग्नि प्रज्वलित करने का प्रयास करने लगी। उसने लकड़ी की छड़ी को तीव्रता से मथा और फूँका, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ।

वास्तव में ध्यान केन्द्रित न होने के कारण वह सफल नहीं हो पा रही थी। तीन दिवस पूर्व वह बेला और वसुधा के साथ कौस्तुभ के विषय में ही बातें कर रही थी। बेला उन्हें बता रही थी कि जिस युवक को उन्होंने सरोवर के निकट देखा था, वही युवक एक सव्यसाची के रूप में राजभवन में उपस्थित था।

उसने सहायता के लिए निकट ही खड़े राजकुमारी के अंगरक्षकों को बुलाने का निर्णय किया, परंतु उससे पूर्व कौस्तुभ उसके निकट पहुँच गया।

"लाइए, मैं आपकी सहायता कर देता हूँ।" कौस्तुभ ने हाथ बढ़ाते हुए कहा।

उर्वी ने बिना किसी प्रतिरोध के अरणी उसकी ओर बढ़ा दी।

"मेघपुरम आश्रम से अग्नि जलाने का मुझे बहुत अनुभव है।" कौस्तुभ ने मुस्कराते हुए कहा और लकड़ी की छड़ी को मथने लगा। शीघ्र ही धुआँ दिखने लगा, उसने नीचे झुककर फूँक मारी। अगले ही क्षण अग्नि की लौ दिखने लगी। उसने सावधानीपूर्वक वह अग्नि लकड़ियों तक पहुँचायी और कुछ ही समय में अलाव में पर्याप्त अग्नि थी।

"धन्यवाद! आश्रम में मैंने भी कई बार अरणी का प्रयोग किया है, परंतु राजभवन में इसका अवसर नहीं प्राप्त होता।" उर्वी ने तनिक झेंपते हुए कहा।

"आश्रम? क्या आपने भी किसी आश्रम से शिक्षा ली है?" कौस्तुभ अपनी उत्सुकता को रोक नहीं पाया।

"ऐसा कह सकते हैं।" उर्वी ने धीरे से कहा, मानो यह निर्णय ले रही हो कि कौस्तुभ को क्या क्या बताये। "मेरा जन्म तामपुरी में ही हुआ था और अपने जीवन के अधिकांश वर्ष मैंने वहीं बिताये हैं।"

"ओह! परंतु फिर आप उत्तराँचल..." कौस्तुभ ने अपनी बात अधूरी छोड़ दी। वह उर्वी के विषय में और अधिक जानना चाह रहा था।

उर्वी उसकी मनोदशा समझ रही थी। उसने स्वयं ही अपने विषय में बताना आरंभ किया। "मेरे पिता तामपुरी आश्रम के आचार्य थे जिनसे मेरी माँ का विवाह हुआ था। परंतु मेरे जन्म के कुछ वर्षों पश्चात एक दुर्घटना से मेरे पिता का निधन हो गया। अपार दुःख के कारण मेरी माँ ने सांसारिक जीवन का त्याग कर दिया और तपस्वियों जैसा जीवन व्यतीत करने लगीं। जब मामाश्री को यह समाचार प्राप्त हुआ तो वह अविलंब तामपुरी पहुँचे और मेरी माँ को समझाने का प्रयत्न किया।"

वह आगे बोलने से पूर्व एक क्षण रुकी। उसने एक दीर्घ श्वास ली और पुनः कहने लगी, "परंतु मेरी माँ अपने निर्णय पर अटल थीं। उनके मन में मेरे लिये भी मोह शेष नहीं था। मेरा पालन पोषण उन्होंने अन्य आचार्य पत्नियों के ऊपर छोड़ दिया था। मामाश्री मुझे उत्तराँचल लिवा लाये और उन्होंने विधिपूर्वक मुझे गोद ले लिया।"

"क्या आप अभी भी अपने माँ से मिलने तामपुरी जाती हैं?" कौस्तुभ ने पूछा। वह उर्वी के स्वर में छिपे दुःख को भाँप रहा था। किसी के लिए ऐसी परिस्थितियों का सामना करना सरल नहीं होता।

"हाँ, अब तो मैं प्रायः तामपुरी जाती हूँ। मेरी अधिकांश शस्त्र शिक्षा भी वहीं हुई है और शेष वसुधा के साथ। माँ अभी भी वैसे ही है, अधिकांश समय अपनी आराधना में लीन। जब मैं उनके निकट जाती हूँ तो वह मुझसे बातें अवश्य करती हैं। सत्य कहूँ तो मेरे लिए वही पर्याप्त है।" उर्वी ने कहा।

कौस्तुभ ने एक लकड़ी उठाई और उसकी सहायता से अलाव की अग्नि को सही करने लगा। कुछ लकड़ियों के हिलाते ही पुनः अग्नि की लपटें दिखने लगीं। उर्वी से कुछ ही समय बातें कर वह सहज अनुभव करने लगा था। "आपके अनुभव स्पष्ट रूप से आपके गंभीर स्वभाव में झलकते हैं।"

"तुम मुझे 'आप' कहना छोड़ सकते हो।" उर्वी ने मुस्कराते हुए कहा। "क्या तुम अपने विषय में नहीं बताओगे? मैंने आश्रम में कई आचार्यों को देखा है जो मंत्र विद्या ज्ञाता हैं, परंतु मैं प्रथम बार किसी सैनिक से मिल रही हूँ जिसे मंत्र विद्या ज्ञात है।"

कौस्तुभ भी मुस्कराया, "मंत्र विद्या ज्ञात होने से कोई अंतर नहीं पड़ने वाला, क्योंकि उनका प्रयोग निषेध है।"

"ज्ञात है मुझे।" उर्वी ने कहा, "परंतु तुमने किस प्रकार मंत्र विद्या सीखी।"

"किस प्रकार! इसका उत्तर तो कठिन है। सच कहूँ तो घटनाएँ घटती गयीं और अंततः मुझे मंत्र विद्या की शिक्षा के लिए चयनित कर लिया गया।"

कौस्तुभ ने संक्षेप में उसे सभी बातें बतायीं, किस प्रकार वह अम्राली के लिए निकला था और मेघपुरम पहुँच गया; किस प्रकार मार्ग में महाराज से उसकी भेंट हो गयी और उसे त्रैनाक का प्रयोग करना पड़ा। हालाँकि उसने महाराज से लिए वचन के विषय में नहीं बताया, क्योंकि उसे अनुभव हो गया था कि अभी उर्वी को उस विषय में नहीं ज्ञात।

"तुम्हारी यात्रा तो मेरी कल्पना से भी अधिक दुष्कर थी।" उर्वी ने कहा, "सामान्यतः लोग एक दो प्रयासों के पश्चात ही पराजय स्वीकार कर लेते हैं।"

"जब हम किसी कठिन लक्ष्य का चुनाव करते हैं, तब सर्वप्रथम वह लक्ष्य ही हमारी परीक्षा लेता है। परंतु अंत सुखद तो सब सुखद।" कौस्तुभ ने मुस्कराते हुए कहा।

उर्वी भी मुस्कुरायी। अलाव की अग्नि से उत्पन्न होने वाले क्षण प्रतिक्षण बदलते प्रकाश में उसका मुख दीप्तिमान हो रहा था। कौस्तुभ को अनुभव हुआ कि उसकी शिराओं में बहते रक्त की गति कुछ बढ़ सी गयी है।

मैं यह क्या कर रहा हूँ। अगले ही क्षण उसके मुख पर मुस्कान के स्थान पर गंभीरता थी। उसने तो महाराज से वसुधा से विवाह का वचन लिया था।

“मुझे चलना चाहिए, रात्रि अधिक हो गयी है।” उसने कहा और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये अपने शिविर की ओर बढ़ गया।

अलाव के निकट बैठी उर्वी उसे जाते हुए देखने लगी, कुछ क्षणों पूर्व प्रकट हुई मुस्कान अभी भी उसके मुख पर उपस्थित थी।

अपने शिविर की ओर बढ़ते हुए वसुधा ने मुस्कुराती हुई उर्वी और दूर जाते हुए कौस्तुभ को देखा। जब उसे बेला ने बताया था कि कौस्तुभ ही वह युवक था जिसने एक वर्ष पूर्व सरोवर के निकट उनके शिविर में घुसने का प्रयत्न किया था, उसी समय उसे कुछ संदेह हुआ था। *उसने अकारण ही पिताश्री से मुझसे विवाह करने का वचन नहीं लिया था।* वसुधा सभी कड़ियों को एक करने का प्रयास कर रही थी। *उसने सरोवर के निकट उर्वी को देखा था और उसे राजकुमारी समझ लिया था।*

वसुधा उर्वी के निकट पहुँची जो किन्हीं विचारों में लुप्त थी। उसने उर्वी और बेला को महाराज द्वारा दिए गये वचन के विषय में नहीं बताया था।

“वसुधा! अधिक विलंब हो गया तुम्हें।” उर्वी ने उसे देखते हुए कहा, “आओ, अलाव की अग्नि का आनंद लो।”

“अभी नहीं। थकावट के कारण विश्राम करने का मन कर रहा है।” वसुधा ने कहा और शिविर के भीतर बढ़ गयी। समय के साथ उसे स्पष्ट हो गया था कि उसका संदेह सत्य है। उसने कौस्तुभ को लोभी और धूर्त समझा था, परंतु वास्तविकता उससे भिन्न थी। वह सभी नियति के एक क्रूर चक्र में फँसे हुए थे।

अध्याय 15

युद्धवीर

कौन्तल्य के वनों में दो दिनों से वह शिविर लगा हुआ था। मुख्य शिविर में बैठा युद्धवीर कुछ आश्चर्य और कुछ उत्सुकता से अपने समक्ष बैठे आगंतुक को देख रहा था। वह उससे सीधा यह प्रश्न पूछना चाहता था कि *तुम यहाँ क्यों आये हो?* परंतु यह अशिष्टता होती। वह दक्षिणांचल के महाराज शतबाहु से अशिष्ट व्यवहार नहीं करना चाहता था।

"दक्षिणांचल के महाराज मेरा प्रणाम स्वीकार करें।" उसने बिना हाथ जोड़े कहा।

उसके समक्ष बैठा शतबाहु मात्र एक क्षण के लिए मुस्कराया। युद्धवीर के स्वर में छिपे व्यंग्य को भाँपना कठिन नहीं था, "तुम्हें ज्ञात है कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं। हम दोनों एक दूसरे से बाल्यकाल से ही जानते हैं।"

"वह भूतकाल की बातें हैं।" युद्धवीर ने रुष्टता से कहा, "और मुझे वर्तमान में रहना पसंद है।"

शतबाहु ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अग्नि कुल आश्रम जाने से पूर्व युद्धवीर के साथ ही शिक्षा ली थी, इसी कारण वह उसकी उन क्षमताओं से भी परिचित था जिनकी उसे इस समय आवश्यकता थी। परंतु पिछले कई वर्षों से वह उससे मिला नहीं था।

"मैं यहाँ तुमसे सहायता माँगने आया हूँ।" अंततः शतबाहु ने कहा।

"तुम्हें विश्वास है न कि तुम उचित स्थान पर आये हो? मैं भला तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ? सहायता के लिए तुम्हें संभवतः कौन्तल्य के राजाश्री मणिनंद के पास जाना चाहिए था, या उनके बड़े पुत्र और कौन्तल्य के प्रधानमंत्री श्रीनंद के पास, अथवा कौन्तल्य के सेनापति..."

"मैं उचित स्थान पर आया हूँ।" शतबाहु ने तनिक उच्च उच्च स्वर में कहा। "कौन्तल्य के राजाश्री, प्रधानमंत्री और सेनापति मेरे लिए उपयोगी नहीं। मेरी सहायता एकमात्र तुम ही कर सकते हो, युद्धवीर, कौन्तल्य के राजाश्री के जामाता।"

"किस प्रकार?" युद्धवीर ने शतबाहु को गंभीर देख अपने व्यंग्य बाणों को विराम दे दिया।

"तुम्हें तो युद्ध के विषय के ज्ञात ही होगा..." शतबाहु ने पुनः धीमे स्वर में कहना प्रारंभ किया। उसने युद्धवीर को संक्षिप्त में युद्ध के विषय में, उसकी योजना के विषय में और वारिमित्र की मृत्यु के विषय में बताया। "जलपति के बिना दक्षिणांचल की जलसेना नेतृत्वविहीन है।"

युद्धवीर ने शांतिपूर्वक शतबाहु की बातों को सुना और अंत में पुनः अपने ही प्रश्न को दुहराया, इस बार अपने प्रत्येक शब्द पर बल देते हुए, "परंतु मैं किस प्रकार तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ?"

शतबाहु ने तत्क्षण उत्तर नहीं दिया। संभवतः वह उचित शब्दों का चयन कर रहा था। अंततः वह तनिक आगे को झुका और बोला, "मैं तुम्हें दक्षिणांचल के जलपति का पद ग्रहण करने का प्रस्ताव देता हूँ।"

शिविर में शांति छा गयी। शतबाहु युद्धवीर की आँखों में आँखें गड़ाकर उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

"वर्तमान में युद्ध क्षेत्र की क्या स्थिति है?" उत्तर देने के स्थान पर युद्धवीर ने नया प्रश्न पूछा।

शतबाहु ने एक गहरी श्वास ली, वह पुनः सीधा होकर बैठ गया। "हस्तिन अभी भी अधिकांश सेना के साथ रत्नगढ़ में उपस्थित है। जलपति के अधीन रहने वाली सेना का भाग अभी अव्यवस्थित है, इसी कारण हम आगे नहीं बढ़ रहे हैं। परंतु एक कुशल नेतृत्व, कुछ अतिरिक्त सहायता और शेष सैनिकों को सुसंगठित करने के पश्चात हम पुनः आगे बढ़ेंगे।" शतबाहु ने कम से कम शब्दों में युद्धवीर को उत्तर देने का प्रयास किया।

युद्धवीर मौन हो गया।

यह अवश्य ही मेरे धैर्य की परीक्षा ले रहा है। शतबाहु ने मन में सोचा। उसे कुछ ही दिन पूर्व प्रसान नगर की स्थिति की सूचना मिली थी। अरिदमन स्वयं कुछ सैनिकों के साथ प्रसान नगर गया था। यह शतबाहु के लिए एक अच्छा अवसर था। इस समय सोमपर्वत की घाटियों में हस्तिन के अधीन सैन्य शक्ति घट गयी थी और शतबाहु इसका पूर्ण लाभ उठाना चाहता था।

परंतु वह अव्यवस्थित सेना के साथ आक्रमण नहीं करना चाहता था। हालाँकि उसे पूर्ण विश्वास था कि पद्मकेतु संपूर्ण सेना का नेतृत्व कर सकता है, परंतु इस समय उसे भी वारिमित्र की मृत्यु का आघात पहुँचा था। इस समय वह शोक में था और सेनापति के साथ जलपति के भी दायित्वों का निर्वहन नहीं कर सकता था। इसी कारण उसने अविलंब युद्धवीर से भेंट करने का निर्णय लिया।

वह कौन्तल्य राजभवन के मार्ग में ही था कि उसे ज्ञात हुआ कि युद्धवीर किसी महत्वपूर्ण कार्य से वन गया हुआ है तो उसने अपना छोटा सा दल इसी ओर मोड़ लिया। कौन्तल्य में सैन्य गतिविधियाँ अत्यंत कम ही होती थीं और उनकी सेना भी नगण्य थी। इसी कारण राजभवन जाकर कोई लाभ नहीं होने वाला था।

"तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।" अंततः शतबाहु ने ही पूछा।

"मुझे जलयानों का अधिक अनुभव नहीं," युद्धवीर ने कहा, "चाहें वह व्यावसायिक जलयान हों अथवा युद्धक।"

"युद्ध जलयानों से नहीं लड़ा जायेगा, युद्ध भूमि पर ही लड़ा जायेगा। तुम्हें मात्र सैनिकों का नेतृत्व करना है।"

"हूँ।" युद्धवीर ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, मानो वह किन्हीं गहरे विचारों में डूबा हुआ हो, "तुम्हें ज्ञात है कि मैं वन में इस स्थान पर क्या कर रहा हूँ?"

"नहीं।" शतबाहु बोला। वह शीघ्रता में यहाँ आया था और उसे यह ज्ञात करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था कि युद्धवीर ने वन में शिविर क्यों लगाया हुआ है। उसे मात्र इतना ही ज्ञात हुआ था कि युद्धवीर कब लौटेगा यह निश्चित नहीं, इसी कारण राजभवन में प्रतीक्षा करने के स्थान पर वह सीधा वन में ही चला आया था।

"मुझे सूचना प्राप्त हुई है कि शर्पितों का एक दल चुराए हुए कुछ बहुमूल्य रत्नों का व्यापार करने वाला है। संयोग से जो दो व्यक्ति व्यापार के लिए शर्पितों के पास जाने वाले थे, हमने उन्हें बंधक बना लिया है। यह तो तुम्हें भी ज्ञात होगा कि शर्पित रत्नों को छुपा कर रखते हैं। हम यदि आक्रमण कर उन्हें बंधक बना भी लेंगे तो भी हमें रत्न नहीं प्राप्त होंगे। वैसे भी

मेरा अनुमान है कि शर्पितों के इस दल के पास बहुत अधिक मात्रा में रत्न हैं और मेरा लक्ष्य है उनके गुप्त स्थान का पता लगाना। इसीलिए हमने निर्णय लिया है कि छद्म वेश में हमारे दो व्यक्ति उनके पास जायेंगे। रत्नों और उनके मूल्यों का लेन देन होते ही हम निकट ही छिपे अन्य सैनिकों को संकेत करेंगे जो शीघ्र ही उनपर आक्रमण कर देंगे।"

"क्या शर्पित उन दोनों व्यक्तियों को पहचानेंगे नहीं?" शतबाहु ने पूछा।

"नहीं। वह व्यापारी उत्तराँचल के एक नगर से आ रहे थे और अभी तक की सारी वार्ता मात्र पत्रों के माध्यम से ही हुई थी। उन व्यक्तियों के साथ-साथ वह सभी पत्र हमारे अधिकार में हैं।"

"और यदि वह शर्पित नकली व्यापारी को अपने गुप्त स्थान तक नहीं ले गए, तब?" शतबाहु ने पूछा।

युद्धवीर ने अनभिज्ञता से अपने कंधे उचका दिए। "कोई हानि नहीं। वह शर्पित तो हमारे अधिकार में आ ही जायेंगे। वैसे भी मैं राजभवन में बैठा बैठा ऊब ही रहा था।" उसने अपने समक्ष रखे चषक में मदिरा उड़ेली और पीने लगा, "मैं कुछ समय पूर्व यही विचार कर रहा था कि मैं अपने साथ अन्य किसे छद्म वेश में ले जाऊं कि तुम आ गए।"

शतबाहु ने प्रश्नवाचक दृष्टि से उसे देखा। मदिरापान करते हुए युद्धवीर मुस्कुरा भी रहा था।

"मैं चाहता हूँ कि तुम छद्म वेश में मेरे साथ उन शर्पितों के दल में चलो। मैं अपना निर्णय उसके पश्चात ही बता पाऊँगा।" युद्धवीर ने समझाते हुए कहा।

शतबाहु ने कुछ नहीं कहा। उसके समक्ष बैठा व्यक्ति वह युद्धवीर नहीं था जिसे वह बाल्यकाल में जानता था। समय सब कुछ परिवर्तित कर देता है। आचार, विचार, स्वभाव सब कुछ। वह स्वयं भी इस नियम का अपवाद नहीं था। अब वह स्वयं वह 'शतबाहु' नहीं था जो वह दस वर्षों पूर्व हुआ करता था।

"मुझे स्वीकार्य है।" उसने दृढ़ स्वर में कहा।

"उत्तम!" युद्धवीर ने कहा और एक सैनिक को बुलाकर उसे कुछ तैयारियाँ करने का आदेश दिया। "हम आधे प्रहर पश्चात यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

युद्धवीर के साथ साथ शतबाहु ने भी अपने राजसी वस्त्र और आभूषण त्याग दिए और उनके स्थान पर साधारण वस्त्र पहन लिए। उसके पश्चात नियत समय पर दोनों दो साधारण अश्वों के निकट खड़े थे।

"पूर्ण रुप से तैयार?" युद्धवीर ने पूछा।

शतबाहु ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह पुनः युवावस्था में लौट आया हो। जब वह ऐसे ही कार्य किया करता था। जब उसके पितामह की मृत्यु नहीं हुई थी। जब वह एक राजनीतिज्ञ से अधिक एक योद्धा था।

शतबाहु ने अपनी तलवार भी अपने अंगरक्षकों को सौंप दी और उसके स्थान पर एक साधारण तलवार ले ली। युद्धवीर ने अपने साथ स्वर्ण मुद्राओं की एक विशाल पोटली भी रखी हुई थी जो उन्हें मूल्य स्वरुप शर्पितों को देनी थी।

शीघ्र ही दोनों घने वनों की श्रृंखला में बढ़ गए।

"एक अन्य मुख्य बात, तुम्हारा नाम कूरिम और मेरा नाम जार्ता।" युद्धवीर ने शतबाहु को समझाते हुए कहा।

"रत्नों के प्राप्त होने के पश्चात हम क्या करेंगे?" शतबाहु ने प्रश्न किया।

"संकेत। इस समय भी मेरे सैनिक उस स्थान को चारों ओर से घेर रहे हैं। जैसे ही हमने रत्न या उनके रत्न छिपाने की वास्तविक स्थिति ज्ञात होगी हम उन्हें संकेत करेंगे और वह उनपर आक्रमण कर देंगे।"

"यह तो अत्यंत सरल प्रतीत होता है।" शतबाहु ने कहा, "मेरे अनुभव में सरल दिखने वाली वस्तुएँ मरीचिका की भांति होती हैं।"

"शंका का तुम्हारा स्वभाव अभी भी गया नहीं।" युद्धवीर ने हँसते हुए कहा, "यह शंका ही कई बार सरल घटनाओं को जटिल बना देती है। वास्तव में शर्पितों को पकड़ना इससे भी सरल है। यदि रत्नों के भंडार के प्राप्त होने का लोभ न होता तो मैं उनपर सीधा ही आक्रमण कर देता।"

"क्या छिपाए हुए रत्नों को ढूँढना इतना कठिन होता है?"

"हाँ। एक बार उन्होंने भूमि में ही रत्नों को छिपा दिया था। सुनने में यह साधारण लगता है परंतु एक विशाल भूभाग में एक हाथ जितनी भूमि को ढूँढना असंभव कार्य है।"

"यदि हम उन्हें पकड़ कर उन्हें यंत्रणा दें तो?" शतबाहु ने पूछा। उसने दक्षिण के शर्पितों के विषय में मात्र सुना ही था। स्वयं कभी उनसे उसकी प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई थी।

"वह बहुत कठोर होते हैं। शीघ्रता से टूटते नहीं। पिछली बार मैंने ऐसा ही प्रयास किया था परंतु उस शर्पित दल का मुखिया मुख खोलने के स्थान पर मृत्यु को प्राप्त हो गया।" युद्धवीर ने अपनी स्मृतियों को खँगालते हुए कहा। "तो मैंने विचार किया कि क्यों न इस बार कोई अन्य मार्ग अपनाया जाये।"

"यह कार्य तो सेनापति का है।" शतबाहु ने कहा।

युद्धवीर ने अनभिज्ञता से अपने कंधे उचकाए। "प्रश्न कार्य का नहीं आनंद का है। वन के हिंसक पशुओं से भी अधिक हिंसक होता है मनुष्य। कुछ लोगों को हिंसक पशुओं का आखेट करने में आनंद आता है और उससे अधिक आनंद मुझे इस कार्य में आता है।"

वृक्षों की भूलभुलैया में कुछ और दूर बढ़ने के पश्चात उन्हें कुछ लोग दिखाई देने लगे। उनके आने की आहट सुन उनका ध्यान भी शतबाहु और युद्धवीर की दिशा में चला गया। *शर्पितों का दल।*

युद्धवीर ने अश्व की गति कम कर दी। "एक मुख्य बात," उसने शतबाहु ने कहा, "यहाँ सारी वार्ता मैं करूँगा। संभवतः मैंने तुम्हें बताया नहीं, इस छद्म रुप में कूरिम अर्थात तुम मेरे अर्थात जार्ता के दास हो।"

संभवतः? तुमने जान बूझकर मुझे यह बात पहले नहीं बताई। शतबाहु ने क्रोधित नेत्रों से उसे देखा। दल के इतने निकट पहुँच जाने के कारण अब वह बातें भी नहीं कर सकते थे। यदि युद्धवीर उसे यह पहले ही बता देता तो वह अवश्य प्रतिकार करता। *इसी कारण उसने यह बात अंतिम में बताई थी।*

एकद्वीप के अधिकांश सागर तट दक्षिणांचल के अधिकार में आते थे, इसी कारण सागर से निकाले गए बहुमूल्य रत्नों पर भी उनका ही अधिकार था। जैसे-जैसे समय के साथ उन रत्नों की माँग और मूल्य बढ़ते गए, वैसे-वैसे ही उनका महत्व भी बढ़ता गया।

सैकड़ों वर्षों पूर्व तट के निकट बसने वाले जो समुदाय मत्स्य पालन के स्थान पर सागर से रत्न निकालने और तराशने का कार्य करते थे उन्हें शर्पित कहा जाता था। जैसे-जैसे उन रत्नों का महत्व बढ़ने लगा, कुछ शर्पित उन रत्नों को चुराकर स्वयं ही विक्रय करने लगे। जब स्थिति नियंत्रण से बाहर जाने लगी तो उस समय के जलपति ने कड़े नियम बना दिए।

परंतु इससे स्थिति और भी बिगड़ गयी। एक छोटे अंतराल में रत्नों के मूल्य में हुई विशाल वृद्धि ने इस स्थिति को और भी बिगाड़ दिया। शर्पित जिन रत्नों को सागर से निकालते थे उनके मूल्य की तुलना में उन्हें मिलने वाला पारिश्रमिक नगण्य था।

वर्तमान में स्थिति यह थी कि कड़े पहरे के पश्चात भी वह रत्नों को चुराते थे, चोरी से स्वयं भी सागर के अधिकृत घोषित क्षेत्र में जाकर उन्हें निकाल लाते थे और छिपकर स्वयं उन्हें ऐसे व्यक्तियों को विक्रय कर देते थे जो राजकीय मूल्य से तनिक कम मूल्य पर उन्हें प्राप्त करना चाहते थे। यह तंत्र धीरे धीरे इतना व्यापक और जटिल हो गया कि शर्पितों को संपूर्ण रुप से नष्ट कर पाना असंभव हो गया। छिटपुट युद्धों और लड़ाइयों के कारण इतने वर्षों में वह अत्यंत आक्रामक भी हो गए थे।

शर्पितों के छोटे बड़े दलों के पास अपना अपना रत्न भंडार था जिनमें से कुछ रत्न अत्यंत दुर्लभ थे। कई लोग यह भी अनुमान लगाते थे कि उन सभी दलों के रत्न भंडारों का सम्मिलित मूल्य कौन्तल्य के राजकोष से भी कई गुना अधिक था।

शतबाहु और युद्धवीर ऐसे ही एक शर्पितों के दल से मिल रहे थे।

जार्ता के रुप में युद्धवीर ने अत्यंत सरल ढंग से उस दल के मुखिया मोक्का से बातें की। उसने पर्याप्त जानकारियाँ जुटा ली थीं, शतबाहु ने सोचा। मोक्का एक विशाल और बलिष्ठ शरीर का स्वामी था। यद्यपि उसके साथ साथ उसके वस्त्र भी मैले कुचैले थे। उसके अपने केशों को खींच कर पीछे बाँधा हुआ था जिससे उसका मस्तक और भी चौड़ा लग रहा था।

शतबाहु ने अपनी दृष्टि नीचे किये हुए ही दल के अन्य सदस्यों को देखा, उनकी स्थिति मोक्का से कुछ अधिक भिन्न नहीं थी। उसके दो अन्य मुख्य तथ्यों की ओर ध्यान दिया। प्रथम, वहाँ उपस्थित छोटे से छोटे सदस्यों के पास भी शस्त्र थे और द्वितीय रत्नों से संबंधित कार्य करने के पश्चात भी उनमें से किसी के भी शरीर पर किसी भी प्रकार के कोई रत्न नहीं थे।

मोक्का से कुछ बातें करने के पश्चात युद्धवीर ने स्वर्ण मुद्राओं की पोटली शर्पितों को दे दी जिन्हें दो युवा शर्पित गिनने लगे। कुछ ही समय पश्चात उनमें से एक आया और मोक्का के कान में धीरे से कुछ कह गया। मोक्का ने सहमति में सिर हिलाया और उसे जाने का संकेत किया।

“उचित है।” मोक्का युद्धवीर की ओर मुड़ा और अपने भारी स्वर में बोला, “स्वर्ण मुद्राएँ पूरी हैं। अब रत्नों को लेने तुम दोनों को मेरे साथ चलना होगा।”

युद्धवीर ने सहमति में सिर हिलाया। वह मन ही मन प्रसन्न था कि उसकी योजना सुचारु रुप से कार्यान्वित हो रही थी। जैसा कि उसने अनुमान लगाया था रत्न मोक्का ने अपने पास नहीं रखा था अपितु गुप्त स्थान पर ही रखा था। *मात्र कुछ समय और...* उसने अपनी बढ़ती हुई हृदय गति को सामान्य रखने का प्रयास किया।

मोक्का ने अपने साथ मात्र चार अन्य युवाओं को लिया और वन में एक ओर बढ़ गया। ‘जार्ता’ और ‘कूरिम’ भी उनके पीछे पीछे चलने लगे।

“तुमने अत्यंत दुर्लभ रत्नों का चयन किया है।” मोक्का ने मार्ग में आगे बढ़ते हुए कहा, “सूर्यकांत मणि, जो कि सूर्य की रश्मियों को एक विशिष्ट प्रकार से परावर्तित कर एक अद्भुत दीप्ति उत्पन्न करती है, वह संसार में मात्र दो ही है। एक जिसके स्वामी तुम बनने वाले हो और दूसरी दक्षिणांचल के राजभवन में महाराज के राजसिंहासन में लगी है। प्रातः सूर्य की रश्मियाँ जब उसपर पड़ती हैं तो संपूर्ण सभा उसे देखती रह जाती है। दूर-दूर से लोग उसे देखने भी आते हैं।”

दुर्लभ मणि! शतबाहु मन में हँसा। जिस मणि को शर्पित विक्रय कर रहे थे वह उसके सिंहासन में जड़ी मणि से बहुत छोटी थी, परंतु इसके पश्चात भी उसका मूल्य बहुत अधिक था।

“संभवतः आपने भी उसे देखा होगा।” मोक्का ने युद्धवीर से कहा।

“नहीं, मुझे तो अभी तक यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। परंतु कूरिम ने उसे अवश्य देखा है। वह एक बार दक्षिणांचल राजभवन गया था।”

एक बार? शतबाहु एक बार पुनः मन ही मन हँसा, *प्रतिदिन एक बार, उसी सिंहासन पर बैठते हुए।*

“कूरिम?” आगे आगे चल रहे मोक्का ने पीछे मुड़कर युद्धवीर को देखा, “वह कौन है?”

“कूरिम अर्थात मेरा दास।”

“ओह!” मोक्का ने ध्यानपूर्वक ‘कूरिम’ को देखा।

दस पग चलने के पश्चात मोक्का बायीं ओर मुड़ गया। “इस ओर। तुम हमारी समस्या से अवश्य अवगत होगे, यदि हम इन रत्नों को न छुपायें तो कौन्तल्य के सैनिक अविलंब इन्हें राजकोष में जमा कर देंगे। जबकि इन्हें हमने स्वयं सागर से निकाला है और तराशा है।”

“जी हाँ!” युद्धवीर ने कहा, “वैसे आपका क्या मत है कि इसका क्या कारण होगा कि पूरे विश्व में मात्र दक्षिणांचल के तटों के निकट ही यह दुर्लभ रत्न प्राप्त होते हैं?” वह अब प्रत्येक बीतते क्षण के साथ चिंतित होता जा रहा था क्योंकि वह उस स्थान से बहुत दूर बढ़ते जा रहे थे। कुछ समय पश्चात वह इतनी दूर आ जाता कि उसके सैनिकों को उसका संकेत सुनाई ही न पड़ता।

“यह सत्य नहीं अपितु लोगों के मध्य फैली हुई एक भ्रांति है।” मोक्का ने कहा, “सागर से निकाले गए रत्नों में मात्र कुछ ही प्रतिशत रत्न ऐसे हैं जो दक्षिणांचल के तट पर पाए जाते हैं। अधिकांश रत्न तो सागर में प्रत्येक स्थान पर मिल जायेंगे, मात्र उन्हें ढूँढने वाली दृष्टि होनी चाहिए।”

“जो आप लोगों के पास है।”

“हाँ!” मोक्का ने एक गर्व भरी मुस्कान के साथ कहा, “और जो रत्न मात्र इसी क्षेत्र में प्राप्त होते हैं वह साधारण नहीं। हमारे पूर्वजों के अनुसार सहस्त्रों वर्षों पूर्व, एकद्वीप की स्थापना से भी पूर्व, इन रत्नों की आकाशीय वर्षा हुई थी।”

“अद्भुत!” युद्धवीर ने एक बार चारों ओर दृष्टि घुमाई। प्रतीत होता था कि मोक्का कथा सुनाते सुनाते मार्ग ही भूल गया है।

“सामान्य व्यक्ति उनमें भेद नहीं कर सकता।” आगे बढ़ता हुआ मोक्का सहसा रुक गया और पीछे मुड़ा, “परंतु हम... हम उन्हें देखते ही पहचान जाते हैं।”

उसके मुख पर एक ऐसी रहस्यमय मुस्कान प्रकट हुई जिसे देखते ही शतबाहु और युद्धवीर समझ गए कि कुछ गड़बड़ हो चुकी है, परंतु उनके किसी प्रतिक्रिया से पूर्व ही मोक्का के साथ आये चारों शर्पितों ने उन दोनों पर अपने शस्त्र तान दिए।

“जैसे तुम्हारे दास के दाहिने हाथ की अनामिका उँगली में पहनी हुई मुद्रिका में लगा नीला स्फटिक।” मोक्का ने पुनः कहना आरंभ किया, “नील स्फटिक का छोटा भाग। वह नील स्फटिक जो कभी मायावियों की सम्पत्ति हुआ करता था, जो उनकी शक्तियों को कई गुना बढ़ा सकता था और जो किन्हीं कारणों से टूट गया था। मणि दो असमान भागों में टूटी थी, उसका बड़ा टुकड़ा कहाँ है यह किसी को नहीं ज्ञात परंतु उस मणि के टूटने से जो छोटा टुकड़ा निकला था वह तुम्हारे दास के पास है।”

कुछ ही क्षणों में कई शस्त्रधारी शर्पित वृक्षों के पीछे से निकल आये।

मोक्का कूरिम बने शतबाहु की ओर मुड़ा, “तुम्हें तो यह ज्ञात होगा ही कूरिम, या मैं कहूँ दक्षिणांचल के प्रतापी महाराज शतबाहु।”

युद्धवीर के माथे पर प्रथम बार चिंता की रेखाएँ उभर आयीं। शतबाहु का मुख भावहीन था। मोक्का के कार्य से यदि उसे आश्चर्य हुआ भी था तो उसने उस भाव को प्रकट नहीं होने दिया था।

“कितने होंगे?” शतबाहु ने अपने निकट खड़े युद्धवीर से पूछा।

“अनुमानतः अस्सी।” युद्धवीर ने चारों ओर दृष्टि घुमाई, “क्या हुआ? मृत्यु से भय लग रहा है क्या?”

“भय? विश्वास करो मृत्यु और भय से संबंधित विचार तो मेरे मस्तिष्क में दूर-दूर तक नहीं आये। मुझे तो अपनी मूर्खता पर पछतावा हो रहा है। इतनी सावधानियों के पश्चात भी हम शर्पितों के गढ़ में एक ऐसा रत्न लेकर आ गए जो अविलंब हमारी पहचान बता सकने में सक्षम था।”

“सत्य कहा। सब तुम्हारी मूर्खता ही है।” युद्धवीर ने बनावटी क्रोध प्रकट करते हुए कहा, “अब आगे क्या?” स्वयं पर शस्त्र तना होने के कारण दोनों अपने कमर में बँधी तलवार भी नहीं निकाल सकते थे।

“तीन तक गिनेंगे।” शतबाहु ने कहा। युद्धवीर ने भी धीरे से सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

“मेरी आपसे कोई शत्रुता नहीं है महाराज,” मोक्का अत्यंत प्रसन्न था, “परंतु आपको मारना अनिवार्य हो चुका है। संभवतः कोई मेरी बातों पर विश्वास भी नहीं करेगा कि ऐसे प्रतापी राजा की मृत्यु इस प्रकार हुई थी।” अन्य शर्पित भी धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ने लगे।

“एक!” शतबाहु ने मोक्का की बातों की ओर ध्यान न देते हुए कहा।

“दो!” युद्धवीर ने धीरे से कहा और एक लंबी साँस ली।

“तीन।” दोनों एक साथ चीखे। दोनों ने विद्युत गति से अपनी-अपनी तलवार निकाल कर घुमाई। अगले पल उनपर शस्त्र ताने चारों शर्पित भूमि पर गिरे हुए थे।

उनकी ओर बढ़ते शर्पित एकाएक रुक गए। कभी वह आश्चर्य से अपने समक्ष खड़े मुस्कुरा रहे दोनों व्यक्तियों को देखते थे और कभी भूमि पर पड़े अपने चार साथियों को जिनके गले से बहता रक्त भूमि पर फैल रहा था।

मोक्का कई क्षणों तक बोलना भूल गया। जब उसे सुध आया तो उसने अपने साथियों की ओर देखा और चीखा, “किसी भी दशा में इन्हें जीवित न छोड़ना।”

शर्पितों ने उन्हें चारों ओर से घेरा हुआ था और उसी प्रकार उन्हें घेरे हुए ही वह सभी आगे बढ़ने लगे। युद्धवीर और शतबाहु ने अपने स्थान से हिलने का कष्ट नहीं किया।

“तुम अपने सैनिकों को कौन सा संकेत देने वाले थे?” शतबाहु ने पूछा।

युद्धवीर ने अपनी कमर पट्टिका से एक बाँस की सीटी निकाली, “ध्वनि संकेत। परंतु अब वन में इतनी दूर से वह संभवतः इसे सुन भी नहीं पायेंगे।”

“अद्भुत! अत्यंत अद्भुत योजना थी तुम्हारी।” शतबाहु ने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा, “प्रतीत होता है कि वर्षों पश्चात भी तुम कुछ करने से पूर्व अधिक सोचते नहीं।”

युद्धवीर ने मात्र अनभिज्ञता से अपने कंधे उचकाए।

कई शर्पितों ने उनपर एक साथ आक्रमण किया। उनके पास तलवार के अतिरिक्त भी कई विचित्र, भारी और नुकीले शस्त्र थे जिनके संचालन में वह दक्ष थे। शतबाहु ने अपनी तलवार घुमाई, कुछ ही क्षणों में कई घायल और मृत सैनिक उसके पैरों के निकट भूमि पर गिरे पड़े थे।

युद्धवीर ने अपने ऊपर प्रहार कर रहे दो शर्पितों के वार को अत्यंत कठिनाई से रोका। वह बलशाली थे और युद्धवीर को पीछे धकेलना चाह रहे थे। युद्धवीर ने अपने पैरों को भूमि पर टिकाया और अपने हाथों को झटका दिया। दोनों शर्पित एक पग पीछे हट गए। उसी क्षण युद्धवीर ने झुककर विद्युत गति से अपनी तलवार घुमाई। दोनों शर्पितों की अंतड़ियाँ बाहर निकल आयीं। उसने शतबाहु की ओर देखा जिसकी ओर शर्पित अब धीरे-धीरे और सावधानी से बढ़ रहे थे। *उन्हें ज्ञात नहीं कि शतबाहु कोई सामान्य योद्धा नहीं, पंच विद्या में पारंगत है। सावधानी भी उन्हें नहीं बचा सकती।*

शतबाहु ने अपनी ओर बढ़ रहे शर्पितों से अपनी दृष्टि नहीं हटाई और युद्धवीर से बोला, “तुम्हें अपनी शिक्षा को मध्य में छोड़कर नहीं आना चाहिए थे। हम दोनों साथ में मरुभूमि में युद्ध विद्या सीख सकते थे।”

“मैं राजकुमारी नंदिता से प्रेम करता था।” युद्धवीर ने अपनी ओर बढ़ रहे कई शर्पितों से द्वंद्व करते हुए कहा।

शतबाहु ने अपनी ओर बढ़ रहे विशाल आकार के शर्पित को देखा जिसके हाथ में लोहे का मुगदर था। यदि वह भारी मुगदर किसी के सिर से टकराता तो निश्चय ही उसका मस्तक फूट जाता। शतबाहु अपने स्थान से हिला नहीं, जब शर्पित ने वार करने के लिए अपना हाथ घुमाया तो वह धीरे से एक पग पीछे हट गया। इससे पूर्व कि वह शर्पित पुनः अपना भारी शस्त्र उठा पता शतबाहु ने तीव्रता से अपना हाथ घुमाया। उस विशाल शर्पित का विशाल सिर भूमि पर लुढ़क गया।

“तुमने सोचा था कि तुम कौन्तल्य के राजाश्री की एकमात्र पुत्री से विवाह कर लोगे तो वह तुम्हें युवराज बना देंगे। परंतु उन्होंने पुनर्विवाह कर लिया और अगले वर्ष पुत्र प्राप्त होते ही जन्म के समय ही उसे युवराज घोषित कर दिया।” शतबाहु के स्वर में व्यंग्य का पुट था, “और महान युद्धवीर का स्वप्न महल आँधी में किसी तिनके की भांति उड़ गया।”

“मैं राजकुमारी नंदिता से प्रेम करता था।” इस बार युद्धवीर ने चीखते हुए कहा। उसने अपने तलवार को दोनों हाथों में कसकर पकड़ा और अपने समक्ष खड़े शर्पित पर उछल कर प्रहार किया। उस शर्पित का सिर मध्य से दो भागों में विभक्त हो गया। उनसे द्वंद्व कर रहे शर्पितों की संख्या अब मात्र गिनती की रह गयी थी।

मोक्का दूर से ही उन्हें देख रहा था। रक्त में सने शतबाहु और युद्धवीर को देख उसके पैर काँप रहे थे। *यह उसने क्या मूर्खता कर दी।* उन दोनों को रोक पाना तो असंभव था।

“प्रेम! हुँह!” शतबाहु ने अंतिम बचे शर्पितों पर प्रहार करते हुए कहा। “तुम्हारी व्यक्तिगत दासियाँ संभवतः तुम्हारी बातों पर विश्वास न करें।”

“तुम चाहते क्या हो?” युद्धवीर ने झुंझलाहट में उसकी ओर मुख करते हुए कहा। उनके निकट मृत और घायलों का ढेर पड़ा हुआ था।

“तुम्हारी सहायता।” शतबाहु ने कनखियों से भागते हुए मोक्का को देखा।

“उसके प्रतिदान में मुझे क्या प्राप्त होगा?”

“कौन्तल्य का राज्य।” शतबाहु ने दृढ़ता से कहा।

“क्या यह संभव है?” युद्धवीर ने शतबाहु की आँखों में देखते हुए प्रश्न किया, जो कि अब मुस्कुरा रहा था, “नहीं... मैं भी क्या विचार करने लगा। क्यों तुम मेरे बीते हुए कल को बार-बार मेरे समक्ष खड़ा कर दे रहे हो। हाँ! मैंने भूल की कि तुम्हारे साथ जाने के स्थान पर विवाह करने का चयन किया। अब तो तुम्हारे हृदय को ठंडक मिल गयी होगी।”

“यह अभी भी संभव है।” शतबाहु ने कहा, “कौन्तल्य भी दक्षिणांचल का भाग है और वहाँ का राजाश्री मेरा सेवक। कौन्तल्य में वही होगा जो मेरी इच्छा होगी। अब बताओ, क्या तुम्हें स्वीकार है?”

युद्धवीर एक क्षण रुका और बोला, “मुझे स्वीकार है।”

“अद्भुत!” शतबाहु की मुस्कान और भी चौड़ी हो गयी। उसने अपनी तलवार दूर भाग रहे मोक्का पर फेंकी जो उसके हृदय स्थल को भेद गयी। “वह मेरी तलवार नहीं थी।”

दोनों ने कुछ समय के लिए उस स्थान के निकट रत्नों को ढूँढा परंतु उन्हें कुछ प्राप्त नहीं हुआ।

“अब हमें भी लौटना चाहिए। यहाँ कुछ भी शेष नहीं।” युद्धवीर ने चारों ओर देखते हुए एक आह भरी, “मुझे नहीं लगता कि उन्होंने रत्न यहाँ छिपाए भी होंगे। मोक्का अत्यंत सरलता से हमें इस स्थान पर ले आया।”

“और मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उनके साथी अब तक हमारी मुद्राएँ भी ले जा चुके होंगे।” शतबाहु ने कहा। “तो यह थी महान युद्धवीर की योजना?”

युद्धवीर धीरे से हँसा, “यदि ऐसा होता तो संभवतः तुम मेरे पास नहीं आते। मैंने सैनिकों को आदेश दिया था कि यदि एक नियत समय के पश्चात भी मेरा संकेत न सुनाई दे तो वह स्वयं आगे बढ़ जाएँ। अब तक तो उन्होंने सभी शेष शर्पितों को अपने नियंत्रण में भी ले लिया होगा।”

दोनों पुनः शिविर की ओर बढ़ गए।

“मुझे लगता है कि हम अभी भी रत्नों को ढूँढ सकते हैं।” शतबाहु ने मार्ग को ध्यान से देखते हुए कहा।

“किस प्रकार?”

“यह स्थान देखो।” शतबाहु ने रुकते हुए कहा, “शिविर से यहाँ तक हम सीधे आये थे और इसके पश्चात मोक्का यहाँ से मुड़ गया था।”

“हाँ, तो?” युद्धवीर ने अपनी भौंहों को ऊँचा करते हुए कहा।

“स्मरण करो इस स्थान से कुछ समय पूर्व ही तुमने उससे कहा था कि मैंने राज सिंहासन में लगी सूर्यकांत मणि देखी है और उसने पीछे मुड़कर ध्यानपूर्वक मुझे देखा था। मेरा अनुमान है उसी समय उसने मेरी मुद्रिका देखी थी और उसे सत्य ज्ञात हो गया था।”

“परंतु उसने शिविर में भी तो तुम्हें देखा था?” युद्धवीर भी मन ही मन शतबाहु के निष्कर्ष को समझ रहा था।

“उस समय सभी वार्ता तुम कर रहे थे और वह मुझे एक दास समझ रहा था। शिविर में उसका ध्यान तनिक भी मेरी ओर नहीं था।” शतबाहु ने आत्मविश्वास के साथ कहा।

“हूँ! संभवतः यही हुआ होगा। परंतु अभी भी हम रत्नों की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ हैं। मुझे नहीं लगता कि उसके किसी साथी को उन रत्नों के छुपाने के स्थान के विषय में ज्ञात होगा। और जिन्हें ज्ञात होगा वह हमें बताएँगे नहीं।”

“उनसे पूछने की आवश्यकता नहीं।” शतबाहु ने मुस्कराते हुए कहा, “यदि मोक्का को हमारी सत्यता के विषय में नहीं ज्ञात होता तो वह वन में बिना मुड़े हमें रत्नों तक लेकर जाता। अर्थात रत्न यहाँ से आगे बढ़ने पर प्राप्त होने चाहिए।”

“परंतु कितनी दूर?” युद्धवीर ने पूछा। “हम यहाँ से आगे बढ़ते रहे तो कई कोस तक मात्र वन ही वन हैं।”

“अधिक दूर नहीं।” शतबाहु सीधी दिशा में बढ़ गया, “उन्होंने रत्नों को वन में छिपाया तो अवश्य होगा, परंतु अपने शिविर से अधिक दूर नहीं। यह अत्यंत सामान्य सी बात है। तुम भी अपने निकट के स्थानों पर देखते चलो, कहीं कुछ भी असामान्य दिखे तो बताना।”

युद्धवीर ने सहमति में सिर हिलाया और वह भी आगे बढ़ते हुए ध्यान पूर्वक इधर उधर देखने लगा।

“यहाँ,” थोड़ी ही दूर चलने के पश्चात उसने कहा, “इस स्थान को देखो। इस वृक्ष के निकट की घास कुछ अधिक ही कुचली हुई है। यहाँ एक साथ कई व्यक्ति उपस्थित थे।”

शतबाहु ने भी उस स्थान को ध्यानपूर्वक देखा, “हूँ! निकट ही देखो। रत्न अवश्य ही यहीं कहीं होंगे।”

युद्धवीर ने उस वृक्ष का गोलाई में एक चक्कर लगाया, “कुछ नहीं दिखा, कहीं भी भूमि का खनन नहीं किया गया है।”

परंतु शतबाहु भूमि के स्थान पर उस वृक्ष को देख रहा था, “वृक्ष के तने पर दिख रहे इन चिह्नों को देखो। कोई इस पर कुछ ही समय पूर्व चढ़ा था। किसी पशु के चढ़ने से इस प्रकार के चिह्न नहीं बनते। रत्न इसी वृक्ष पर होंगे।”

“वृक्ष के ऊपर? ऐसा तो मैंने कभी नहीं सुना कि शर्पितों ने वृक्ष के ऊपर रत्न छिपाएँ हों, परंतु तुम कहते हो तो एक बार निरीक्षण कर लेते हैं।” युद्धवीर ने उस वृक्ष की एक झुकी हुई डाल पकड़ी और उसकी सहायता से वृक्ष पर चढ़ गया।

“यहाँ तो मात्र एक पक्षी के घोंसले के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।” उसने नीचे खड़े शतबाहु से कहा। वह वृक्ष अत्यंत चौड़ा था जिसके ऊपर चढ़ते ही युद्धवीर को वह रिक्त घोंसला दिख गया था।

“किस पक्षी का घोंसला?” नीचे खड़े शतबाहु ने पूछा।

“रिक्त है, मैं नीचे ही फेंक देता हूँ, तुम स्वयं ही देख ले...” युद्धवीर बोलते-बोलते रुक गया और एकाएक तीव्र स्वर में बोला, “हे भगवान एकेश्वर! तुम्हारा अनुमान तो पूर्णतः सत्य था। यहाँ तो कई रत्न हैं।”

वृक्ष के तने को खोखला कर उसमें कई रत्न रखे हुए थे और उसके मुख पर वह घोंसला रखा हुआ था। युद्धवीर ने जितना अनुमान लगाया था रत्न उससे कम थे परंतु वह प्रसन्न था कि उसने उन रत्नों को ढूँढ लिया।

आधे प्रहर पश्चात दोनों पुनः युद्धवीर के शिविर में बैठे हुए थे। सैनिकों ने अधिकांश शर्पितों को जीवित बंधक बना लिया था और उन्हें उनकी मुद्राएँ भी प्राप्त हो गयी थीं।

“प्रतीत होता है कि तुम्हें अपने साथ ले जाने का निर्णय लाभकारी सिद्ध हुआ।” युद्धवीर ने कहा।

“अवश्य!” शतबाहु ने गंभीर स्वर में कहा, “अन्यथा आज तुम जीवित नहीं लौटते।”

युद्धवीर ने शतबाहु को घूरा तो वह हँस पड़ा।

“सत्य कहूँ तो मेरा अनुभव भी बुरा नहीं था। वर्षों पश्चात एक सजीवता की अनुभूति हुई।”

“अब आगे?” युद्धवीर ने पूछा।

“तुम शीघ्र ही रत्नगढ़ के लिए प्रस्थान करो। हमारी सेना अभी भी वहीं है।”

“और तुम? क्या तुम रत्नगढ़ नहीं आ रहे?”

“नहीं! अभी नहीं।” शतबाहु ने गंभीर स्वर में कहा, “अभी मुझे एक अन्य स्थान पर भी जाना है जहाँ से मुझे सहायता की आशा है।”

युद्धवीर ने शतबाहु को देखा जो पुनः गंभीर हो चुका था, “कौन सा स्थान?”

“मरुभूमि।”

अध्याय 16
यज्ञ

अनंत प्रतीत होते सागर के मध्य स्थित तिरम द्वीप पर निर्मित उस दुर्ग में सेतिका अपने कक्ष में बैठी थी। ज्वार के समय सागर में उठती लहरों की भांति उसका मन भी अस्थिर था।

जब उसे वारिमित्र की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ तो वह अपने भाई विंद्रक के साथ थी। उस समय उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी, परंतु एकांत होते ही वह अपने अश्रुओं को रोक नहीं पाई।

परंतु क्यों? उसके अंतर्मन ने उससे प्रश्न किया। क्या इस कारण कि वह उससे प्रेम करती थी? अथवा इस कारण कि उसका वारिमित्र की संगिनी बनकर तिरम से बाहर जाने का स्वप्न टूट कर बिखर चुका था। नहीं! वह इतनी लोभी नहीं थी। उसने वारिमित्र से वास्तविक प्रेम किया था, ठीक उसी प्रकार जैसे वारिमित्र ने उससे किया था।

तिरम से बाहर तो वह अभी भी जा सकती थी, अन्य तिरम वासियों की भांति उसे विंद्रक की आज्ञा की भी आवश्यकता नहीं थी। अपितु उसने निर्णय लिया था कि वह अवश्य ही उस द्वीप से बाहर जाएगी। उसने बाल्यकाल से ही एकद्वीप के विषय में सुना था और कई बार वह तट के निकट के नगरों में भी गयी थी और वहाँ की जीवन शैली से मंत्रमुग्ध हो गयी थी। लोगों से भरे हुए हाट, साज सज्जा की वस्तुएँ, श्रृंगार करती हुई युवतियाँ, तिरम में यह सब कुछ नहीं था। कभी-कभी वह स्वयं को बंधक अनुभव करती थी।

जल दस्युओं को एकद्वीप में बसने पर प्रतिबंध था, परंतु उसे विश्वास था कि वारिमित्र के रहते हुए उसके लिए कोई प्रतिबंध नहीं रहता। वह दक्षिणांचल का जलपति भी था और युवराज भी। परंतु वारिमित्र के न रहने की दशा में सभी समीकरण बदल चुके थे। उसने स्वयं को अदृश्य बेड़ियों में जकड़ा हुआ पाया जिसकी सीमा तिरम तक ही थी। पिछली बार जब वारिमित्र उनकी सहायता माँगने वहाँ आया था तब दक्षिणांचल की ओर से उसने दस्युओं को भूमिखंड देने का भी प्रस्ताव दिया था, परंतु उसके भाई तिरम के क्षेत्रक विंद्रक ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। विंद्रक सदैव कहता था कि सागर के बाहर वह शक्तिहीन है, परंतु सेतिका का मानना था कि यह मात्र उसका भ्रम है।

परंतु दो दिनों पूर्व शतबाहु ने पुनः एक प्रस्ताव भेजा था और विंद्रक संभवतः उसपर कोई विचार नहीं करने वाला था। वह अवसर स्वयं चलकर दुबारा उनके पास आया था और सेतिका एक बार फिर उस अवसर को खोना नहीं चाहती थी।

वह एक बार फिर अपने भाई से सहमत नहीं थी। उसने कुछ विचार किया और अपने कक्ष से निकल कर विंद्रक के कक्ष की ओर बढ़ गयी।

रात्रि भोजन करने के पश्चात विंद्रक अपने कक्ष में बैठा मदिरापान कर रहा था। उसने सेतिका को कक्ष में आते हुए देखा तो मदिरा से भरा चषक रिक्त कर उसे किनारे रख दिया और प्रश्नवाचक दृष्टि से सेतिका को देखा, मानो पूछ रहा हो इस समय वह वहाँ क्यों आई थी।

“आपने शतबाहु के पत्र का उत्तर नहीं दिया।” सेतिका ने कहा।

“उसकी आवश्यकता ही क्या है?” विंद्रक ने उपेक्षित स्वर में कहा, “हम दक्षिणांचल और उत्तराँचल के मध्य किसी विवाद में नहीं पड़ने वाले। क्योंकि इसमें हमारा कोई लाभ नहीं होगा, मात्र हानि होगी।”

“यदि ऐसा ही था तो आपने पिछले वर्ष उसका प्रस्ताव स्वीकार क्यों किया था?” सेतिका ने पूछा।

“क्योंकि तब हमें युद्ध में प्रत्यक्ष भाग नहीं लेना था। अब वह हमसे युद्ध में प्रत्यक्ष भाग लेने को कह रहा है। इसके अतिरिक्त उसने हमें अतिरिक्त अन्न भी दिया था, जबकि इस बार उसके पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो वह हमें दे सके।” विंद्रक व्यंग्यात्मक रुप से हँसा, “कितना विचित्र है न?”

परंतु सेतिका का मुख अभी भी गंभीर था, “उसने हमें एकद्वीप पर भूखंड देने का वचन दिया है।”

विंद्रक ने क्रोधित नेत्रों से उसे देखा, “हम सागर के स्वामी हैं। सागर से बाहर हमारा कोई अस्तित्व नहीं।” वह कुछ क्षण रुका और सेतिका पर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि गड़ाते हुए बोला, “मुझे तुम्हारी बातों में विद्रोह क्यों दिखाई दे रहा है?”

सेतिका ने अपने भाई की बात का प्रतिकार नहीं किया। संभवतः वह विद्रोह ही कर रही थी, उसने मन में सोचा। “क्या यह आवश्यक है कि हम सदैव सागर के मध्य ही रहें? क्या जल दस्युओं को उत्तम जीवन का अधिकार नहीं?”

“उत्तम जीवन?” विंद्रक पुनः हँसा, “तुम्हें ज्ञात है आज से दस पंद्रह वर्षों पूर्व दस्युओं का जीवन कैसा था? आये दिन आक्रमण, दस्युओं की असामयिक मृत्यु और पशुओं जैसा जीवन। आज उन्हें उत्तम भोजन प्राप्त है, किसी आक्रमण की कोई चिंता नहीं और वह सुख चैन से अपना जीवन यापन कर रहे हैं। तुम चाहती हो कि मैं एक अनजान प्रदेश में एक भूमि के टुकड़े के लिए उन्हें युद्ध में झोंक दूँ? एक ऐसा युद्ध जिसमें हमारा कोई हित नहीं।”

सेतिका को भी वह समय भली भांति स्मरण था। उसकी आँखों के समक्ष उसके बाल्यकाल का वह दृश्य घूम गया जब उसे अपने पिता की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ था। दस्युओं का एक समूह समुद्र के उस क्षेत्र को पार रहे एक जलयान पर आक्रमण कर रहा था। उस अभियान में दस्युओं को सफलता नहीं प्राप्त हुई और साथ ही कई दस्यु मारे भी गए।

उन मारे गए दस्युओं में से एक उसके पिता भी थे।

माँ की मृत्यु कई वर्षों पूर्व ही हो गयी थी, अतः अब वह दोनों भाई बहन पूर्ण रुप से अकेले थे। विंद्रक ने उस समय के क्षेत्रक से सहायता भी माँगी परंतु उसने दुत्कार कर उसे अपने दुर्ग से बाहर भेज दिया। अपनी दसियों और मदिरापान में व्यस्त क्षेत्रक के पास किसी अनाम जल दस्यु के बच्चों की चिंता करने का समय नहीं था।

विंद्रक क्रोध और पीड़ा से सिर झुकाए दुर्ग से बाहर आया। जब उसने एक अंतिम बार अपना सिर उठाकर उस दुर्ग को देखा उसी क्षण सेतिका को ज्ञात था कि उसके भाई का लक्ष्य क्या है।

आने वाले वर्षों में उन्होंने कई समस्याएँ देखीं, भोजन आदि के लिए संघर्ष किया और अंततः विंद्रक ने स्वयं को एक कठोर और निर्दयी दस्यु बना लिया जिसके नाम से ही सब भयभीत होते थे।

परंतु सेतिका को ज्ञात था कि उस कठोरता के पीछे अभी भी उसका वह भाई था जिसने कठिनाई भरे दिन देखे थे। संभवतः इसी कारण उसने कुछ वर्ष पूर्व शतबाहु से संधि कर ली थी। अब उन्हें भोजन आदि के लिए पूर्व की भांति जलयानों पर आक्रमण नहीं करना पड़ता था।

“यह आपका विचार है कि इस युद्ध में सहायता करने में हमारा कोई हित नहीं।” सेतिका ने कहा, “यह सत्य है कि आपके प्रयासों से दस्युओं को उत्तम जीवन प्राप्त हुआ है। परंतु वह इससे श्रेष्ठ जीवन भी प्राप्त कर सकते हैं। क्या आपने इस विषय में सोचा है? दस्यु यदि इस युद्ध में भाग लेंगे तो स्वयं के लिए।”

“एक समय के पश्चात मनुष्य को अपनी महत्वाकांक्षाओं को विराम दे देना चाहिए।” विंद्रक ने शांत स्वर में कहा।

“विराम तो प्रकृति के ही अनुकूल नहीं। हमारे साथ-साथ प्रकृति में जो कुछ भी है उसे प्रकृति के परिवर्तन के नियम को स्वीकार करना ही पड़ता है।”

“आज तुम्हारे मुख से ज्ञान की वर्षा क्यों हो रही है?” विंद्रक ने सेतिका को घूरते हुए कहा, “संभवतः तिरम के अन्य दस्युओं की भांति तुम्हें भी यह स्मरण कराना पड़ेगा कि मैं, विंद्रक, यहाँ का क्षेत्रक हूँ। और उनकी ही भांति तुम्हें भी मेरे समक्ष अपना मुख खोलने से पूर्व विचार करना चाहिए।”

“उसकी कोई आवश्यकता नहीं। मुझे ज्ञात है कि आप क्षेत्रक हैं। और यह भी ज्ञात है कि किस प्रकार आप क्षेत्रक बने थे। किस प्रकार आपने वर्षों पूर्व अनुष्ठान द्वंद्व के समय पूर्व क्षेत्रक को धीमा विष दिया था और उसे मार स्वयं क्षेत्रक बन गए थे।” सेतिका शांत हुई तो उत्तेजना से उसकी श्वास फूल रही थी। संभवतः वह कुछ अधिक ही बोल गयी थी।

“सेतिका!” अपने स्थान पर खड़े होते हुए विंद्रक चीखा। विंद्रक के अतिरिक्त मात्र सेतिका ही थी जिसे इस रहस्य के विषय में ज्ञात था। और वर्षों से जिस स्मृति को वह पूर्णतः भूल चुका था सेतिका ने उसी स्मृति को कुरेद कर उभार दिया था। “इसी क्षण यहाँ से चली जाओ।”

सेतिका ने कुछ नहीं कहा और उस कक्ष से चली गयी।

विंद्रक धम्म से अपने स्थान पर बैठ गया। कितना परिवर्तन आ गया था उसकी बहन में। उसे वह दिन स्मरण था जब उसे अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला था और वह अपने हाथों में सेतिका का हाथ पकड़े हुए उसी दुर्ग में आया था। और आज... सेतिका उसके निर्णय का विरोध कर रही थी। वह स्वयं को उस द्वीप पर बंधक समझ रही थी।

उसे कुछ अनुमान अवश्य था कि इस विरोध का कारण क्या था। *वारिमित्र*, दक्षिणांचल का पूर्व जलपति। उसने कभी भी सेतिका को उससे मिलने जुलने से नहीं रोका, क्योंकि वह उचित समय आने पर इस सम्बन्ध को अपने हित में प्रयोग करना चाहता था। परंतु उसकी मृत्यु से सभी संभावनाएँ समाप्त हो चुकी थीं। वह न तो शतबाहु की बातों में आना चाहता था और न ही उसकी सहायता करना चाहता था, क्योंकि उसे शतबाहु की राजनीति के विषय में ज्ञात था। वह शतबाहु के महत्वाकांक्षाओं के यज्ञ में आहुति नहीं बनना चाहता था।

वारिमित्र ने ही सेतिका के मस्तिष्क में यह सब दूषित विचार भरे थे, विंद्रक ने सोचा। उसे और सावधान रहना चाहिए थे। परंतु अंततः सब कुछ सही हो जायेगा, उसने अपने अशांत मन को समझाया। वारिमित्र अब मृत था और सेतिका के मस्तिष्क से उसका प्रभाव भी धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा। उसकी बहन पुनः अपने भाई के समर्थन में खड़ी होगी।

भाई को समझाना व्यर्थ है, दुर्ग में विचरण करती सेतिका ने मन ही मन सोचा। संभवतः वह बढ़ती आयु के कारण शिथिल हो चुके हैं। यदि शस्त्रों को बिना प्रयोग किये रख दिया जाये तो उनकी धार कुंद हो जाती है, और ऐसा ही जल दस्युओं के साथ हो रहा था।

उसने दुर्ग में कुछ दिनों पश्चात होने वाले अनुष्ठान द्वंद्व की तैयारियों में जुटे जल दस्युओं को देखा। उनकी प्रथा के अनुसार तिरम द्वीप के सबसे ऊँचे स्थान पर बनाये गए सागर देवी के मंदिर में प्रतिवर्ष क्षेत्रक द्वारा सागर का जल अर्पित किया जाता था और उनकी पूजा की जाती थी। उस समय यदि कोई जल दस्यु वर्तमान क्षेत्रक के स्थान पर स्वयं क्षेत्रक बनना चाहता था तो उसे द्वंद्व के लिए चुनौती दे सकता था। वर्षों पूर्व विंद्रक ने भी इसी प्रकार पूर्व क्षेत्रक को चुनौती दी थी और उसे पराजित कर स्वयं क्षेत्रक बन गया था। स्वयं उसे ही आरंभ के वर्षों में कई दस्यु योद्धाओं ने चुनौती दी थी परंतु पिछले कुछ वर्षों में कोई भी दस्यु उसके समक्ष नहीं खड़ा हुआ था।

वह वर्षों से निर्विरोध उनका क्षेत्रक बना हुआ था।

पहले तो यह मात्र साधारण सी प्रथा थी, परंतु अब विंद्रक द्वारा इसे एक उत्सव के रूप में आयोजित किया जाता था। कनिका ने दस्युओं को तैयारियों में लिप्त देखा तो क्रुद्ध सी गयी। *दस्युओं की धार कुंद होती जा रही थी।* अब दस्युओं को नए नेतृत्व की आवश्यकता थी।

उन्हें एक नए क्षेत्रक की आवश्यकता थी।

प्रातःकाल की चटक धूप मलयपुरी राजभवन के प्रत्येक कोने में पहुँच रही थी जो कि उस भवन की उत्तम वास्तुकला का एक उदाहरण था। सूर्य की रश्मियों में उद्यान में खिले पुष्प और भी चमकीले दिख रहे थे। वातावरण में भी उन पुष्पों की सुगंध फैली हुई थी।

प्रांगण में निर्मित उस उद्यान को पार करते हुए रानी चंद्रप्रभा अपनी सेविका वृतिका के साथ राजभवन की पश्चिमी दिशा में बढ़ रही थी।

कुछ समय पश्चात चंद्रप्रभा एक छोटी सी कुटिया के बाहर पहुँची जहाँ एक स्त्री बैठी हुई थी। उस स्त्री ने एक बार चंद्रप्रभा को देखा और अगले ही क्षण उसकी ओर से अपनी दृष्टि हटा ली।

“प्रणाम राजमाता!” चंद्रप्रभा ने अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा और उस स्त्री के निकट जाकर खड़ी हो गयी।

“मैं राजमाता नहीं।” उस स्त्री ने उपेक्षा भरे स्वर में मात्र इतना ही कहा। वह दक्षिणांचल के पूर्व महाराज की पत्नी मेखला थीं। स्वर्णबाहु की मृत्यु के पश्चात वह इसी प्रकार एकांत में जीवन व्यतीत करती थीं।

चंद्रप्रभा ने कोई उत्तर नहीं दिया, यद्यपि वह अपने स्थान पर ही खड़ी रही।

“यदि यहाँ वार्ता करने आई हो तो इस आसन पर बैठ जाओ।” मेखला ने निकट ही रखे आसन की ओर संकेत किया, “संभवतः इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकती।”

चंद्रप्रभा उस आसन पर बैठ गयी। वृतिका ने ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया, वह यथावत अपने स्थान पर खड़ी रही।

“क्या आपको वारिमित्र की मृत्यु का तनिक भी शोक नहीं?” चंद्रप्रभा ने मेखला के व्यंग्य की ओर ध्यान न देते हुए कहा।

“क्या तुम मात्र यही ज्ञात करने यहाँ तक आई हो?”

“आपने उनका पालन पोषण नहीं किया था, परंतु उन्हें जन्म तो दिया था। नौ माह तक अपने गर्भ में तो रखा था।” चंद्रप्रभा ने कहा, “क्या शरीर के एक भाग के कट जाने से आपको पीड़ा नहीं होती?”

"नहीं! एक अवस्था के पश्चात मनुष्य का ह्रदय कुछ भी अनुभव करना बंद कर देता है?" मेखला के मुख पर एक क्षण के लिए गंभीर भाव आये और अगले क्षण उसका मुख पुनः भावहीन हो गया। "यदि तुम ऐसे ही प्रश्न करने आई हो तो संभवतः तुम्हारा यहाँ आना व्यर्थ ही होगा।"

"आप महाराज को युद्ध करने से रोक सकती हैं।" चंद्रप्रभा ने मेखला को ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा।

"तुम्हें ऐसा क्यों प्रतीत होता है कि शतबाहु ऐसा करेगा?" मेखला ने पूछा, "और उससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न, तुम युद्ध को रोकना क्यों चाहती हो? क्या तुम युद्ध से भयभीत हो? महर्षि याचि ने कहा था प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में युद्ध अवश्य लड़ना पड़ता है। स्वयं से, स्वयं के क्रोध से, स्वयं के लोभ से और आवश्यकता पड़ने पर अपने शत्रुओं से भी। युद्ध जीवन को पूर्ण बनाता है।"

"परंतु यह युद्ध विनाश का आमंत्रक भी तो हो सकता है।" चंद्रप्रभा मेखला की बातों से प्रभावित नहीं हुई, "पहले वारिमित्र, और यदि उसके पश्चात पद्मकेतु भी इस युद्ध की भेंट चढ़ गया तो?"

मेखला ने तत्क्षण कोई उत्तर नहीं दिया। उसका मस्तिष्क चंद्रप्रभा के प्रश्न का उत्तर ढूँढ रहा था। उसने अपने जीवन में कइयों को खोया था, क्या पद्मकेतु की मृत्यु से उसे कोई अंतर पड़ेगा? *संभवतः नहीं।* वह इस सांसारिक मोह से पृथक हो चुकी थी। उसने प्रत्यक्ष रुप से कहा, "क्या तुम पद्मकेतु के विषय में चिंतित हो?"

"मैं शतबाहु के लिए चिंतित हूँ। मैं युद्ध से नहीं, उनके अनुचित कार्यों से चिंतित हूँ।" चंद्रप्रभा ने उच्च स्वर में कहा और शीघ्र ही अपना स्वर पुनः धीमा कर लिया, "महर्षि याचि ने यह भी तो कहा था कि अधर्म और छल से किया गया कार्य कभी फलित नहीं होता। क्या आपको नहीं लगता कि वारिमित्र की मृत्यु इसी कारण हुई है अथवा एकांत निर्जन स्थान पर वह सव्यसाची कहाँ से आ जाता?"

मेखला ने कुछ नहीं कहा, वह मात्र शांत भाव से चंद्रप्रभा को देख रही थी।

चंद्रप्रभा ने कुछ क्षण रुककर कहा, "महाराज आपकी बात अवश्य मानेंगे।"

"इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा कि शतबाहु क्या करेगा और क्या नहीं।" मेखला ने कहा, "क्योंकि मैं शतबाहु अथवा राज्य संबंधी किसी भी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करूँगी।"

चंद्रप्रभा ने एक गहरी श्वास ली। उसने शतबाहु को कई बार समझाने का प्रयत्न किया था परंतु उसे समझाना उसके वश में नहीं था। उसने विचार किया था कि यदि वह मेखला को अपनी बात समझा सके तो संभवतः वह शतबाहु को समझा सकती थीं। परंतु उसका यहाँ आना भी व्यर्थ ही गया। उसने तिरछी दृष्टि से एक बार वृतिका को देखा और अपने स्थान से उठ खड़ी हुई। "अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।"

"मैंने न तुम्हें आमंत्रण दिया था और न जाने की आज्ञा दे सकती हूँ।" मेखला ने कहा।

उसकी बातों पर ध्यान न देते हुए चंद्रप्रभा वापस जाने को मुड़ी। उसे मेखला से कोई आशा नहीं रखनी चाहिए थी, उसने सोचा।

"यद्यपि यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं वृतिका को कुछ समय के लिए यहाँ रोकना चाहती हूँ।" मेखला ने कहा।

चंद्रप्रभा ने मुड़कर पुनः मेखला को संदेह भरी दृष्टि से देखा। परंतु कठिन प्रयास के पश्चात भी वह उसका मंतव्य नहीं समझ पायी।

"मुझे कोई आपत्ति नहीं।" उसने कहा और बिना रुके वहाँ से चली गयी।

"कोई विशेष कारण राजमाता, जो आपने मुझे रोका?" चंद्रप्रभा के जाने के पश्चात वृतिका ने अबोध भाव से पूछा।

"कुछ क्रीड़ाएँ यदि सीमा को पार कर जायें तो घातक हो जाते हैं।" मेखला ने शांत स्वर में कहा।

"क्षमा करिए, मैं आपका आशय नहीं समझी। आप किस विषय में कह रही हैं।"

"तुम जो कर रही हो उसी विषय में," मेखला ने कहा, "तुम चंद्रप्रभा को अपनी बातों में उलझा सकती हो परंतु किसी अन्य को नहीं। मुझे तुम्हारे विषय में सब कुछ ज्ञात है और संभवतः शतबाहु को भी। तुम्हें शतबाहु से भयभीत होना चाहिए।"

"आपको अवश्य ही कोई भ्रम हुआ है," वृतिका अभी भी शांत थी, उसके स्वर में क्रोध अथवा प्रतिकार का कोई भाव नहीं था, "वैसे भी महारानी चंद्रप्रभा की युद्ध न करने की बात में महाराज का तो कोई अहित नहीं।"

"मैंने तुमसे पूर्व में ही कहा था, तुम सबको अपनी बातों में नहीं उलझा सकती। तुम्हें ज्ञात है कि शतबाहु युद्ध करने से पीछे नहीं हटेगा और तुम चंद्रप्रभा द्वारा उसके मस्तिष्क में संदेह और अनीति का भय बैठाना चाहती हो। जो योद्धा एक साथ दस शत्रुओं से लड़ सकता है, वही योद्धा मन में भय और संदेह होने पर अपने शस्त्र भी नहीं उठा सकता।"

"मेरा ऐसा कोई उद्देश्य नहीं," वृतिका बोली, "परंतु क्या आपको ऐसा लगता है कि महाराज पर इन बातों का कोई प्रभाव पड़ेगा?"

मेखला ने वृतिका के मुख पर कुछ क्षणों के लिए प्रकट हुई मुस्कान को देखा। उसने कहा, "नहीं। शतबाहु पर किसी की भी किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ेगा। उसकी महत्वाकांक्षा अब एक यज्ञ का रूप धारण कर चुकी है। और यज्ञ में आवश्यकता होती है आहुति की। जब युद्ध रुपी यज्ञ होता है तो उसमें मित्र हों अथवा शत्रु सबकी आहुति देनी पड़ती है। और मैं तुम्हें पूर्व में ही सावधान करना चाहती हूँ कि यदि तुमने अपनी इस क्रीड़ा को विराम नहीं दिया तो तुम भी इस यज्ञ की अग्नि में भस्म हो जाओगी।"

युद्धवीर को दक्षिणांचल का जलपति नियुक्त कर शतबाहु का अगला लक्ष्य था मरुभूमि आश्रम जाना। इस बार स्थिति प्रत्यक्ष युद्ध की थी इसी कारण वह अधिक से अधिक संख्या में सैनिकों को एकत्र करना चाहता था। इसी प्रक्रिया में उसने कुछ दिनों पूर्व तिरम द्वीप पर विंद्रक को भी संदेश भेजा था। परंतु अब तक कोई प्रतिक्रिया प्राप्त न होने के कारण वह यह मान चुका था कि जल दस्युओं की ओर से उसे कोई सहायता नहीं प्राप्त होने वाली।

उनके इस तटस्थ प्रतिक्रिया से उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। संधि के समय और उससे पूर्व उसने कई बार विंद्रक से भेंट की थी, इसी कारण वह उसके व्यवहार से भली भांति परिचित था। इसी कारण उसने जल दस्युओं से संधि की थी क्योंकि उन दोनों का ही यह मत था कि व्यर्थ के रक्त पात का कोई लाभ नहीं।

संधि के अनुसार जितना अन्न दक्षिणांचल उन्हें प्रतिवर्ष देता था, उससे कहीं अधिक अन्न संधि से पूर्व दस्युओं द्वारा लूट लिया जाता था अथवा उनके द्वारा नष्ट कर दिया जाता था। सैनिकों और जलयानों के हानि की कोई गणना ही नहीं थी।

संधि के पश्चात वारिमित्र ही जल दस्युओं से संबंधित सभी कार्य संपन्न करता था। यदि वह जीवित रहता तो संभवतः दस्युओं को उनकी सहायता करने को मना पाता, शतबाहु ने सोचा। वारिमित्र का स्मरण करते ही शतबाहु का क्रोध पुनः जागृत हो गया जिसे उसने अत्यंत कठिनाई से दबा रखा था। उसे प्रतीक्षा थी उस दिन की जिस दिन वह उस सव्यसाची युवक के समक्ष खड़ा होगा। जिस युवक के कारण उसका भाई मृत था उसे वह स्वयं अपने हाथों से मारेगा।

अंगरक्षक ने आकर उसे सूचना दी कि उनका दल सज्ज हो चुका है। उसने सहमति में सिर हिलाया और शीघ्र ही वह अपने अंगरक्षकों के साथ नर्मदा की ओर बढ़ रहा था।

शीघ्र ही यह संपूर्ण एकद्वीप उसका होने वाला था, उसने मन ही मन कल्पना की। पवित्र नदियों और विशाल पर्वतमालाओं की भूमि। उत्तराँचल और दक्षिणांचल, दोनों ही पुनः एक होने वाले थे। वह स्वप्न जो उसने वर्षों से देखा था, वह पूर्ण होने वाला था।

उसकी एक योजना असफल अवश्य हुई थी, परंतु वह असफलता उसे उसके लक्ष्य की ओर बढ़ने से नहीं रोक सकती थी।

इस संसार में कोई भी उसे आगे बढ़ने से नहीं रोक सकता था।

अध्याय 17
दायित्व

वर्षों से वह जिस तथ्य को झुठलाते हुए आये थे, वह वास्तविक था। महर्षि वह्निमित्र को अब लेश मात्र भी संदेह नहीं था कि आदिपशु मात्र किंवदंती नहीं थे। मनुष्य के लिए वह क्षण सुखद नहीं होता, जब उसे ज्ञात होता है कि उसके विश्वास का आधार मिथ्या है। वह्निमित्र के लिए भी वह क्षण सुखद नहीं था जब उन्हें ज्ञात हुआ था कि मरुस्थल में अग्निकृमि को देखा गया है।

आश्रम में सभी को यह ज्ञात था कि उन्हें इस विषय पर चर्चा करना पसंद नहीं, परंतु कुछ दिनों पूर्व हुई घटना के पश्चात चर्चाओं को रोकना असंभव था। सभी के अपने-अपने मत थे। कोई उत्सुक था तो कोई भयभीत। कुछ को अभी भी यह पूर्ण विश्वास था कि यह बातें मनगढ़ंत हैं।

परंतु वह इतने व्याकुल क्यों हैं? वह्निमित्र ने स्वयं से ही यह प्रश्न किया। आदिपशु वास्तविक हों अथवा मिथ्या, उन्हें तो कोई अंतर नहीं पड़ने वाला।

उन्हें वह दिन भलीभांति स्मरण था जब उन्होंने अपने पिता से वह प्रश्न पूछा था। “पिताश्री! अतवी कहता है कि मरुस्थल में एक अत्यंत विशाल पशु रहता है।” नन्हे वह्नि ने अपने दोनों हाथों को फैलाते हुए कहा। उस क्षण विशाल की परिभाषा उसके दोनों हाथों तक सीमित थी। “जो उनको नियंत्रित कर लेगा वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है।”

उसकी बातें सुन उसके पिता के मुख पर सहज ही एक मुस्कान प्रकट हो गयी। उन्होंने उसे अपनी गोद में उठा लिया और बोले, “मनुष्य को सब कुछ प्राप्त करने के लिए कभी किसी पशु की आवश्यकता नहीं होती वह्नि। मात्र अपनी इच्छाशक्ति से ही वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है।”

“तो क्या अतवी झूठ कहता है पिताश्री? क्या आदिपशु नहीं होते।”

“नहीं। जब मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँचने वाले मार्ग से डगमगाने लगता है और सरल मार्गों को ढूँढने लगता है, तब वह ऐसी ही कथाओं पर विश्वास करने लगता है। कोई भी कठिन मार्ग पर नहीं चलना चाहता।”

उस क्षण नन्हे वह्निमित्र को अपने पिता की बातें पूर्ण रूप से नहीं समझ आई थीं। इसी कारण कुछ वर्षों पश्चात युवावस्था में वह स्वयं मरुस्थल में गया। आदिपशुओं के अस्तित्व का प्रमाण ढूँढने। परंतु एक रात्रि भटकने के पश्चात ही उसे ज्ञात हो गया कि वर्षों पूर्व उसके पिता उसे क्या समझाना चाहते थे।

वह शक्ति प्राप्त करने के लिए सरल मार्ग पर जाना चाहता था। उसी समय उसने स्वयं से यह प्रण किया कि वह भविष्य में कभी भी वह कार्य नहीं करेगा। वह आश्रम लौट आया और उसने कठिन मार्ग का चयन किया। शस्त्र और शास्त्र सभी विद्याओं में पारंगत बन अंततः वह अग्नि कुल संप्रदाय का प्रमुख बना।

वह्निमित्र ने अपने हाथों में लिए हुए छोटे से काष्ठ के बक्से को देखा जिसके भीतर वह पत्थर रखा था जिससे प्रकाश उत्पन्न हो रहा था। कुछ दिनों पूर्व ज्ञानशिला के प्रधानाचार्य वलक्ष ने उन्हें वह पत्थर दिया था और कहा था, “हम इसे सुप्त पदार्थ कहते हैं। यह वही वस्तु है जिसने दो सहस्त्र वर्षों से आदिपशुओं को सुप्तावस्था में रखा था।”

महर्षि ने एक गहरी श्वास ली। *सुप्त पदार्थ के प्रयोग का समय आ गया था।*

कुछ दिन पूर्व, ज्ञानशिला-

दिन में हुई सभा के पश्चात रात्रि के समय वह्निमित्र अतिथि गृह में विश्राम कर रहे थे जब उन्हें प्रधानाचार्य वलक्ष का संदेश प्राप्त हुआ कि वह कल प्रातःकाल उनसे भेंट करना चाहते हैं। *परंतु कल प्रातःकाल तो उन्हें पुनः मरुभूमि लौटना था।*

उन्होंने संदेशवाहक से प्रश्न किया कि प्रधानाचार्य किस प्रायोजन से उनसे भेंट करना चाहते हैं।

“क्षमा करें महर्षि।” सेवक ने धीरे से कहा, “प्रधानाचार्य ने इस विषय में कोई सूचना नहीं दी है।”

“उचित है। हम आ जायेंगे।” महर्षि ने कहा और वह सेवक पुनः लौट गया। उन्हें विश्वास था कि उनसे भेंट करने के पीछे अवश्य ही वलक्ष का कोई विशेष उद्देश्य होगा।

उन्होंने अपने नेत्र मूँदे और अपनी शय्या पर लेट गए। आज का दिन अत्यंत महत्वपूर्ण रहा था। नभ कुल आश्रम के प्रमुख महर्षि अम्बं ने अपने ही शिष्य के लिए आश्रम में प्रवेश निषेध कर दिया था। यह दंड उसे इस कारण प्राप्त हुआ था क्योंकि उसने आश्रम की परिधि से बाहर मंत्र विद्या का प्रयोग किया था।

अब कल क्या होगा? यह विचार करते-करते निद्रा ने वह्निमित्र को अपने अंक में ले लिया।

प्रातःकाल जब वह प्रधानाचार्य कक्ष में पहुँचा तो वहाँ वलक्ष के साथ महर्षि अम्बं भी उपस्थित थे।

“प्रणाम महर्षि!” वलक्ष ने उसका अभिवादन किया। “आशा है मैंने आपके दैनिक क्रियाकलापों में कोई बाधा नहीं उत्पन्न की।”

“तनिक भी नहीं।” वह्निमित्र ने मुस्कुराने का प्रयत्न किया। “यद्यपि मैं उत्सुक अवश्य हूँ कि इस वार्ता का विषय क्या होने वाला है। मेरा अनुमान है कि यह जो भी होगा वह वार्षिक संगोष्ठी से संबंधित नहीं होगा।”

“नहीं नहीं। उस विषय में आप निश्चिंत रहे।” वलक्ष ने अपने सिर को हिलाते हुए कहा।

उसने अपने कक्ष की दीवार में बने हुए छोटे से काष्ठ के द्वार को खोला, वहाँ एक रिक्त स्थान था जहाँ कई विचित्र वस्तुएँ रखी हुई थीं। वलक्ष ने वहाँ से कुंजियों का एक बड़ा सा गुच्छा उठाया और द्वार बंद कर दिया।

“मैं जिस विषय में आपको बताने वाला हूँ, वह अत्यंत गोपनीय है।” उसने कार्यालय भवन के पिछले भाग में बढ़ते हुए कहा। “कृपया मेरे पीछे आइये।

“आशा है आप भी उसकी गोपनीयता बनाये रखेंगे।” वलक्ष ने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। उसे दोनों प्रमुखों पर पूर्ण विश्वास था।

भवन के पिछले भाग में एक द्वार था जिसे देखने से प्रतीत होता था कि उसे कई वर्षों से नहीं खोला गया है। द्वार में पाँच ऐसे स्थान बने थे जहाँ कुंजी लगायी जा सकती थी।

वलक्ष ने उनमें से एक स्थान पर गुच्छे में से एक कुंजी लगायी और उसे घुमाया। द्वार में कहीं लोहे के घूमने की क्षीण ध्वनि सुनाई दी। उसने कुंजी वापस निकाल ली और द्वार को धक्का दिया। *क्रीं* की ध्वनि करता वह द्वार पूरी तरह खुल गया। विचित्र गंध लिए हुए वायु का एक झोंका उनसे टकराया।

वह्निमित्र ने पूरे कक्ष में अपनी दृष्टि घुमाई। वहाँ प्रकाश का कोई साधन नहीं था, मात्र कुछ झरोखे बने हुए थे। उनसे छनकर आता प्रकाश उस कक्ष को पूर्ण रूप से दीप्तिमान करने के लिए पर्याप्त नहीं था। कक्ष की दीवारों में छोटे छोटे स्थान बनाये गए थे जिनमें भारी मात्रा में अभिलेख और ताम्रपत्र रखे हुए थे। इसके अतिरिक्त कक्ष की दूसरी ओर की दीवार में दो अन्य द्वार भी बने हुए थे।

“महर्षि!” वलक्ष उन दोनों की ओर मुड़ा, “यह वह कक्ष है जहाँ हम उन तथ्यों को अभिलेखित कर रखते हैं जिन्हें हम सामान्य अभिलेखों में नहीं रख सकते।”

“ऐसा क्या है इनमें?” वह्निमित्र में पूछा। “और इसकी क्या आवश्यकता थी?”

“यहाँ प्रश्न आवश्यकता का नहीं है, नियम का है। इस आश्रम के संस्थापकों द्वारा बनाये गए नियम।” वलक्ष ने कक्ष में आगे बढ़ते हुए कहा। “इनमें ऐसे तथ्य लिखे गए हैं जिनको जानना सामान्य जन के लिए हानिकारक हो सकता है अथवा ऐसे तथ्य जिनका कुछ मनुष्य दुरुपयोग कर सकते हैं।”

वह्निमित्र ने अम्बं को देखा। वह शांत खड़े थे। *क्या उनके मन में प्रश्न नहीं?* वह्निमित्र ने सोचा।

“आज मैं जिस तथ्य के विषय में आपसे बात करने वाला हूँ वह आदिपशुओं से संबंधित है।” वलक्ष ने कहा।

वह्निमित्र को ऐसा प्रतीत हुआ मानो वलक्ष परिहास कर रहा हो, परंतु उसका स्वर गंभीर था। “प्रधानाचार्य! क्या वास्तव में आदिपशुओं का अस्तित्व है? क्या वह मात्र किंवदंती नहीं हैं?” उसने पूछा।

“नहीं महर्षि! आदिपशुओं का अस्तित्व उतना ही सत्य है जितना आकाश में सूर्य का अस्तित्व।” वलक्ष ने एक अभिलेख को उठाते हुए कहा। “और कुछ आदिपशु आज भी जीवित हैं।”

“परंतु प्रधानाचार्य, वर्तमान में ऐसी कौन सी समस्या उत्पन्न हो गयी है जिसके कारण आप हमें इस विषय में बता रहे हैं।” अब तक शांत रहे महर्षि अम्बं ने पूछा। “मेरा विचार है कि आप किसी भी मूल्य पर इस तथ्य की गोपनीयता बनाये रखना चाहेंगे।”

“पूर्णतः सत्य कहा आपने। और यही मेरा कार्य है।”

“इस क्षण आपकी बातों को समझना मेरे लिए कठिन है।” वह्निमित्र ने कहा, “क्या आप इस विषय में प्रारंभ से बता सकते हैं?”

“अवश्य।” वलक्ष ने तीव्रता से कहा, मानो उसे अपनी गलती का बोध हो गया हो। उसने अपने हाथ में लिए हुए अभिलेख को वह्निमित्र की ओर बढ़ाया।

“पृथ्वी के सृजन के साथ ही प्रकृति ने इस पर निवास करने के लिए विभिन्न प्रजातियां भी बनायी थीं।” वलक्ष ने कहना आरंभ किया, “जैसे हम मनुष्य। उन प्रजातियों में कुछ ऐसे पशु भी थे जो आकार में बहुत विशाल होते थे और जिनके पास कुछ शक्तियाँ भी होती थीं। सामान्य पशुओं से उनमें अंतर करने के लिए उन विशाल पशुओं को सम्मिलित रूप से आदिपशु कहा जाता था। ऐसी प्रजातियां मात्र गिनती की थीं और एकद्वीप के स्थापना के समय उन सभी प्रजातियों की सम्मिलित संख्या सौ से भी कम थी। उनकी आयु सामान्य मनुष्यों से बहुत अधिक होती है। एक आदिपशु साधारणतया तीन चार सहस्त्र वर्षों का जीवन जीता है।

“प्रकृति के रहस्य सदैव ही मनुष्यों के लिए कौतूहल का विषय रहे हैं। आदिपशु इसके अपवाद नहीं रहे। जैसे-जैसे मनुष्यों का विकास हुआ, कुछ ही समय में उन्होंने आदिपशुओं को नियंत्रित करने के कई मार्ग ढूँढ लिए। और इसके पश्चात वह आपसी युद्धों में उनका प्रयोग करने लगे। परंतु महर्षि याचि इसके विरुद्ध थे। उनका कहना था कि मनुष्य के आपसी युद्धों में ऐसी शक्तियों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। इसी कारण उन्होंने सामान्य युद्धों में मंत्र विद्या का प्रयोग भी निषेध कर दिया था। संपूर्ण एकद्वीप की स्थापना के कारण और स्वयं उनके चरित्र की विशेषताओं के कारण महर्षि याचि का प्रभाव जनमानस में बहुत अधिक था। अंततः लोग उनकी बात से सहमत हो गए और किसी मनुष्य द्वारा किसी आदिपशु को नियंत्रित करना प्रतिबंधित कर दिया गया।”

“तो क्या महर्षि याचि द्वारा आदिपशुओं को श्राप दिए जाने की कथा असत्य है?” वह्निमित्र ने पूछा।

“हाँ। आप अनुमान लगा सकते हैं कि वह कथा इसी घटना का भ्रष्ट रूप है।” वलक्ष ने बताया।

“परंतु यदि आदिपशुओं को नियंत्रित करने वाला शक्तिशाली हो जाता था, तो किस भय से वह महर्षि याचि की बात मानने को बाध्य थे?” अम्बं ने अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए पूछा।

“क्या आप महर्षि याचि की शक्तियों को कम आँक रहे हैं?” वलक्ष ने मुस्कराते हुए कहा। “आप स्वयं मंत्र विद्या ज्ञाता हैं, वर्तमान में हम जिन विद्याओं के विषय में जानते हैं, स्वयं वही उनके जनक थे।”

अम्बं ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। वलक्ष ने आगे बताना आरंभ किया।

“जब उनपर प्रतिबंध लगाया गया तब तक मात्र तीन आदिपशु ही जीवित बचे थे। अग्निकृमि, एकश्रृंगी और यति।” वलक्ष ने वह्निमित्र के हाथों में उपस्थित अभिलेख की ओर संकेत किया। “इसमें उन तीनों के रेखाचित्र हैं।”

“परंतु अभी भी एक मुख्य समस्या उनके समक्ष थी। वह वर्तमान पीढ़ी को तो रोक सकते थे, परंतु आने वाली पीढ़ी पुनः वही कार्य कर सकती थी जो उनके पूर्वजों ने किया। वह प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये गए उन आदिपशुओं का वध भी नहीं कर सकते थे। वैसे भी मात्र एक-एक पशुओं के शेष रहने के कारण उनके प्रजनन की संभावना शून्य थी। कुछ ही वर्षों में वह आदिपशु प्राकृतिक मृत्यु द्वारा मर जाते, परंतु मनुष्यों के जीवन काल की तुलना में वह ‘कुछ’ वर्ष बहुत अधिक थे। उन्हें सुनिश्चित करना था कि उन वर्षों में वह मानव जाति के लिए कोई संकट न बनें। इसी कारण उन्होंने शेष आदिपशुओं को ऐसे स्थानों पर भेज दिया जहाँ मनुष्य बहुत कम जाते थे और यह सुनिश्चित किया कि आदिपशु छिपकर रहें और कोई भी मनुष्य उनसे संपर्क न कर पाए।”

“जैसे एकश्रृंगी को मेघपुरम स्थित एकश्रृंगी पर्वत पर,” महर्षि अम्बं ने कहा। “और अग्निकृमि को मेघपुरम के मरुस्थलों में।” उन्हें अब ज्ञात था कि आदिपशुओं से संबंधित कौन से तथ्य सत्य थे और कौन से मिथक।

"हाँ। इसी प्रकार यति को उन्होंने हिमालय की एक निर्जन चोटी पर भेजा था।" वलक्ष ने बताया। "परंतु कई वर्षों पूर्व उसकी प्राकृतिक मृत्यु हो चुकी है।"

वह्निमित्र ने यति के रेखाचित्र को ध्यान से देखा। विशाल मानवाकृति, वानरों की भांति पूरे शरीर पर केश जिनका रंग श्वेत था। देखने से ही प्रतीत होता था कि उनमें कई हाथियों का बल रहता था।

"परंतु प्रधानाचार्य, मुझे अभी तक समझ नहीं आया कि इन सब में समस्या कहाँ है?" अम्बं समझने का प्रयत्न कर रहा था, "यदि दो सहस्त्र वर्षों से वह तीन आदिपशु शांत हैं तो संभवतः आगे भी रहेंगे।"

"यही तो मुख्य समस्या है।" वलक्ष ने कहा, "संभवतः आपने उस भविष्यवाणी के विषय में भी सुना होगा कि दो सहस्त्र वर्षों पश्चात आदिपशु लौट आयेंगे।"

अम्बं ने उसे प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा। "आप कहना चाह रहे हैं कि वह भविष्यवाणी सत्य है?"

"नहीं।" वलक्ष के अधरों पर मुस्कान आ गयी। "यद्यपि वह भी एक वास्तविक घटना का ही भ्रष्ट रूप है। मैंने आपको कुछ क्षणों पूर्व बताया था कि आदिपशुओं को सुदूर स्थानों पर भेजने के पश्चात यह सुनिश्चित किया गया कि मनुष्य उनसे संपर्क न कर पायें। परंतु आपने यह नहीं पूछा कि यह किस प्रकार संभव किया गया।"

"किस प्रकार?" अम्बं ने पूछा।

"इसी प्रश्न का उत्तर ही हमारी समस्या की जड़ है।" वलक्ष कक्ष के आखिर में बने दीवार की ओर बढ़ गए। वहाँ निकट ही दीपदंड रखा हुआ था जिसे उन्होंने चकमक पत्थर की सहायता से जला लिया। "और उत्तर इस द्वार के पीछे है।"

दीपदंड के प्रकाश में वह्निमित्र और अम्बं ने ध्यानपूर्वक उस द्वार को देखा। यह भी पिछले द्वार की ही भांति था परंतु यहाँ पाँच के स्थान पर पच्चीस ऐसे स्थान बने थे जहाँ कुंजी लगायी जा सकती थी। वलक्ष ने दीपदंड वह्निमित्र को पकड़ाया और स्वयं गुच्छे में से कुंजी का चयन करने लगे। वह्निमित्र को ज्ञात था कि वह पच्चीस छोटे स्थान उस द्वार की सुरक्षा का भाग थे। यदि किसी मनुष्य के पास उस द्वार की कुंजी हो भी तो उसके लिए यह ज्ञात करना कठिन हो जाये कि कुंजी प्रयोग करने का वास्तविक स्थान कौन सा है।

वलक्ष ने वह द्वार खोला और तीनों पुनः एक नए कक्ष में पहुँचे। पिछले कक्ष की अपेक्षा यहाँ मात्र कुछ ही वस्तुएँ रखी हुई थीं, और प्रकाश के लिए झरोखे भी नहीं थे। दीपदंड की अनुपस्थिति में वहाँ मात्र स्याह अँधेरा ही दिखाई देता।

कक्ष के मध्य में एक विशाल बक्सा रखा हुआ था। गुच्छे की दो कुंजियों की सहायता से वलक्ष ने उसे खोला।

"यह क्या है?" अम्बं ने आश्चर्यमिश्रित स्वर में कहा। वह्निमित्र की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। बक्से के भीतर कुछ प्रकाशमान पत्थर रखे हुए थे जिनसे निकलने वाला प्रकाश पूरे कक्ष को दीप्तिमान कर रहा था।

"हम इसे सुप्त पदार्थ कहते हैं।" वलक्ष ने बताया। "यह सुनिश्चित करता है कि मनुष्य सुदूर स्थानों पर रह रहे आदिपशुओं से संपर्क स्थापित न कर पाए।"

वह्निमित्र और अम्बं ने उलझन पूर्ण दृष्टि से वलक्ष को देखा। *इन सब में समस्या कहाँ है?*

उनकी मनोदशा को भाँपते हुए वलक्ष ने आगे बताया, "यह मूल रूप से आकाशीय पत्थर के टुकड़े हैं। महर्षि याचि ने इन टुकड़ों का मूल गुण इस प्रकार परिवर्तित किया है कि आदिपशुओं के निकट होने पर कोई भी मनुष्य उन्हें नियंत्रित नहीं कर सकता। सरल शब्दों में यह दोनों मस्तिष्कों के मध्य एक अवरोध उत्पन्न करता है। ऐसे तीन पत्थर उन स्थानों पर रखे गए थे जहाँ आदिपशुओं को भेजा गया था। परंतु इनके साथ भी एक समस्या है। इनके मूल संरचना में परिवर्तन के कारण धीरे-धीरे इनका क्षय होता है और ऐसी अवस्था में यह पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं रह जाते।"

"इनका पूर्ण क्षय होने में कितना समय लगता है।" वह्निमित्र ने पूछा।

"दो सहस्त्र वर्ष अर्थात..."

"डेढ़ सौ कंतर्क।" वह्निमित्र ने वलक्ष की बात काटते हुए कहा। अब उसे भविष्यवाणी के पीछे का सत्य समझ आ रहा था।

वलक्ष मुस्कराया। "हाँ। वास्तविक समय का सटीक अनुमान लगाना असंभव है, परंतु वर्तमान समय में 'सुप्त पदार्थ' का इतना क्षय अवश्य हो गया होगा कि अब वह प्रभावी नहीं रहा होगा। प्राचीन अभिलेखों के अनुसार दोनों आदिपशु अगले डेढ़ सौ कंतर्क तक जीवित नहीं रहेंगे, उनकी प्राकृतिक मृत्यु हो जाएगी। परंतु उतने समय के लिए हमें पुनः सुरक्षा सुनिश्चित करनी है। हमें पुनः आदिपशुओं के निवास स्थान के निकट सुप्त पदार्थ रखने होंगे।"

"यदि ऐसा है तो एक साथ ही पर्याप्त मात्रा में सुप्त पदार्थ उनके निवास स्थान के पास क्यों नहीं रख दिया गया?" वह्निमित्र ने जिज्ञासावश पूछा।

"क्योंकि उस दशा में भी उनका क्षय हो जाता। इस समय इन्हें जिन बक्सों में रखा गया है वह क्षय की गति को अत्यंत धीमा कर देते हैं, जबकि आदिपशुओं के निवास स्थान के पास उन्हें अनावृत रखा जाता है जिससे उनका प्रभाव वातावरण में फैला रहे।" वलक्ष ने बताया।

उसने रुककर दोनों आश्रम प्रमुखों के मुख पर दृष्टिपात किया, "इस कार्य का दायित्व मैं आप दोनों को सौंपता हूँ।"

"उचित समय आने पर आप दोनों को स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि इस कार्य को कब करना है। यद्यपि यह कार्य किस प्रकार करना है, इसका निर्णय लेने के लिए आप स्वतंत्र हैं।" वलक्ष ने निकट रखे दो छोटे बक्से खोले और उनमें बड़े बक्से से निकाल कर एक एक पत्थर रख दिए। "मात्र इसका ध्यान रखें कि कम से कम लोगों को इस विषय में ज्ञात हो। हमें भविष्य में भी इस धारणा को बनाये रखना है कि आदिपशु किंवदंती हैं।"

दोनों ने एक-एक बक्सा लिया और उस कक्ष से बाहर आ गए। उनके पीछे प्रधानाचार्य वलक्ष ने द्वार पुनः बंद कर दिए। अब वह पुनः अभिलेखों से भरे कक्ष में थे।

"इस कक्ष में रखे अभिलेखों में ऐसी कई घटनाओं का वर्णन है जहाँ सामान्य जन ने आदिपशुओं को देखने का दावा किया था।" तीनों उस कक्ष से बाहर निकल रहे थे। "इसके अतिरिक्त भी कई ऐसे अभिलेख हैं जिनमें आदिपशुओं को नियंत्रित करने की विधियों का वर्णन है।"

"संभवतः ज्ञानशिला को रहस्यमयी अभिलेखों और ताम्रपत्र एकत्र करने में रुचि है।" महर्षि वह्निमित्र ने परिहास किया।

"आप यह गलत आरोप लगा रहे।" वलक्ष ने भी मुस्कराते हुए कहा, "आप अपने कार्यालय में रखे हुए उस ताम्रपत्र को भूल रहे हैं जिसे पीतल की बेलनाकार खोखले ढांचे के भीतर रखा गया है।"

वलक्ष ने उस कक्ष का द्वार भी बंद किया और कार्यालय कक्ष की दिशा में बढ़ गया। “स्वयं महर्षि अग्निदेव ने उसमें अग्नि तत्व जागृत करने के मंत्र लिखे हैं। संभवतः वह भी अग्निकृमि को नियंत्रित करने की एक विधि है।”

“इसी कारण ज्ञानशिला के कई प्रधानाचार्यों ने उसकी माँग की है।”

“हाँ, वह उस ताम्रपत्र को सुरक्षित स्थान पर रखना चाहते थे।” वलक्ष ने कहा, “परंतु मुझे लगता है कि वह अभी भी एक सुरक्षित स्थान पर है।”

अपने कक्ष में पहुँच वलक्ष अपने आसन पर बैठ गया। उसने एक गहरी श्वास ली, मानो उसके सिर से एक उत्तरदायित्व कम हो गया हो। “मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सुचारु रूप से अपने दायित्व का निर्वहन करेंगे।”

वर्तमान -

दायित्व के निर्वहन का समय आ गया था। महर्षि वह्निमित्र ने कई प्रहर विचार करने के पश्चात शिखी को अपने कक्ष में बुलवाया। कुछ दिनों पूर्व जब उन्हें जय ने मरुस्थल में देखे गए दृश्य के विषय में बताया था तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ था। परंतु यह सत्य था।

अग्निकृमि शिखी के नियंत्रण में था। उनकी इच्छा के विपरीत भी पूरे आश्रम में इसी विषय में चर्चा थी। यद्यपि महर्षि ने शिखी और अन्य छात्रों को आदेश दिया था कि वह सदैव इस घटना को गोपनीय रखेंगे, परंतु यह पर्याप्त नहीं था।

जिस क्षण जय ने उन्हें यह सूचना दी थी उस समय उन्हें समझ नहीं आया कि यह किस प्रकार हुआ था। यदि फणिक ने अग्नि तत्व को जागृत कर लिया था तो वह अग्निकृमि को नियंत्रित क्यों नहीं कर पाया?

“मरुस्थल में तुम्हारे साथ क्या हुआ था?” उन्होंने उस समय शिखी से सीधा प्रश्न पूछा था।

“मुझे ज्ञात नहीं।” शिखी ने अपने सिर को झुका किसी अपराधी की भांति उत्तर दिया, “मैं क्रोध में फणिक के पीछे जा रहा था कि मुझे अनुभव हुआ कि कोई मुझसे कुछ कहना चाह रहा है, जैसे मेरे मस्तिष्क के भीतर कोई है। अगले क्षण मैं उसके ऊपर था। मेरे शरीर में एक ऊर्जा का प्रवाह हो रहा था, उस क्षण मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मेरे वश में था। मैं उसे कुछ भी करने का आदेश दे सकता था और वह मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य था।”

शिखी शांत हुआ तो उसकी श्वास फूलने लगी थी। महर्षि के मेरुदंड में एक सिहरन दौड़ गयी। अवश्य ही क्रोध की अवस्था में शिखी ने अनजाने में स्वयं के शरीर के अग्नि तत्व को जागृत कर लिया होगा। इससे पहले भी ऐसा हो चुका था। एक वर्ष पूर्व, जब मायावियों ने एक शिशु का अपहरण किया था।

उस समय उन्हें ज्ञात हुआ कि फणिक अग्निकृमि को नियंत्रित क्यों नहीं कर पाया। उस क्षण शिखी के शरीर की अग्नि अधिक तीव्र रही होगी। *वह अग्नि को भाँपने में सक्षम होते हैं।* इसी कारण उसने शिखी का चयन किया।

उस दिन महर्षि ने शिखी को प्रधानाचार्य वलक्ष द्वारा ज्ञात हुई अधिकांश बातें बतायीं और उसे इस विषय में किसी से न बात करने का आग्रह किया। यदि शिखी के स्थान पर फणिक अग्निकृमि को नियंत्रित करने में सफल हो जाता तो उसके परिणाम कितने भयानक होते, इस विचार मात्र से ही उनका हृदय काँप उठता था।

अब उन्हें सुनिश्चित करना था कि कोई अन्य मनुष्य ऐसा न कर सके। प्रधानाचार्य वलक्ष ने उन्हें जो दायित्व सौंपा था, उसके निर्वहन का समय आ गया था और इस कार्य के लिए उन्होंने शिखी का चयन किया था।

“प्रणाम महर्षि।” शिखी ने अभिवादन किया तो महर्षि वह्निमित्र की तंद्रा भंग हुई।

महर्षि ने उसे ‘सुप्त पदार्थ’ वाला छोटा सा बक्सा दिया और वह मानचित्र भी जो उन्हें वलक्ष ने दिया था। उसकी सहायता से शीघ्र ही उस स्थान पर पहुँचा जा सकता था जहाँ दो सहस्त्र वर्ष पूर्व सुप्त पदार्थ रखा गया था और जहाँ उसे भी उस पदार्थ को रखना था।

“परंतु किसी अन्य को इस विषय में ज्ञात नहीं होना चाहिए।” महर्षि ने उसे कम से कम शब्दों में समझाया। उन्होंने कक्ष के गवाक्ष से आकाश में छाई लालिमा को देखा। सूर्य अस्त होने वाला था। वह पुनः शिखी की ओर मुड़े।

“तुम्हें इसी क्षण प्रस्थान करना होगा।”

शिखी ने कोई प्रश्न नहीं किया। इन प्रकरणों से उसके लिए यह समझना कठिन नहीं था कि वास्तव में क्या घटित हो रहा था। मानचित्र और उस छोटे से बक्से के साथ वह पुनः मरुस्थल में बढ़ गया। तीसरी बार।

मानचित्र के निर्देशों का पालन करते हुए उस स्थान पर पहुँचना कठिन नहीं था। सूर्यास्त के पश्चात भी आकाश में श्वेत चाँदनी फैली हुई थी। रेत के मध्य एक छोटा सा पथरीला स्थान था जहाँ एक माध्यम आकार का पतला सा पत्थर रखा हुआ था। उस पत्थर पर कई आकृतियाँ अंकित थीं। उसने महर्षि द्वारा बताई गयी दो विशिष्ट आकृतियों को एक साथ दबाया तो वह पत्थर अपने स्थान से तनिक सा हिला।

शिखी ने उस पत्थर को अपने स्थान से हटाया तो एक अत्यंत छोटे से कक्ष में पहुँचा। वहाँ कक्ष के मध्य एक अत्यंत छोटा पत्थर दिख रहा था जो प्रकाशमान था। *दो सहस्त्र वर्ष पूर्व रखा गया सुप्त पदार्थ।* शिखी ने अपने साथ लाया हुआ पत्थर भी उसी स्थान पर रख दिया और लौट आया।

उसे वह आदिपशु कहीं नहीं दिखाई दिया, परंतु वह अनुभव कर सकता था कि वह उस क्षण भी भूमि के नीचे ही था। *उसके अत्यंत निकट। गतिमान।*

आकाश में पुनः लालिमा छाने लगी थी। सूर्य उदित होने वाला था।

वहाँ से दूर आश्रम में महर्षि वह्निमित्र निश्चिंत हुए कि संकट के मेघ छँट चुके हैं।

अध्याय 18
षड्यंत्र

ज्वार के समय सागर में उठने वाली लहरों की भांति शिखी का मन भी अशांत था। *प्रकृति ने उसे ऐसा क्यों बनाया था?* वर्षों से वह अपने अस्तित्व से जुड़े इस प्रश्न को अनदेखा करना सीख गया। वह स्वयं को स्वीकार करना सीख गया था। परंतु कभी कभी कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाती थीं जो उसके हृदय और मस्तिष्क को झकझोर देती थीं। वह प्रश्न बार बार विकराल रुप में उसके समक्ष खड़ा हो जाता था।

मरुस्थल में हुई घटना के विषय में महर्षि ने उसे समझाया था। उसे मात्र इतना ही समझ आया था कि क्रोध की अवस्था में उसके शरीर में उपस्थित अग्नि तत्व जागृत हो जाता है। *क्यों?* उसने महर्षि से उसी क्षण यह प्रश्न पूछा था। परंतु इसका उत्तर उनके पास भी नहीं था।

"संभवतः यह अग्नि देव की कृपा है। उनका आशीर्वाद है तुम पर।" उन्होंने अपना अनुमान बताया था।

शिखी के हृदय में महर्षि की यह बात किसी शूल की भांति जा लगी। *क्या सचमुच मुझ पर किसी की कृपा है?* यदि किसी के ऊपर किसी का आशीर्वाद होता है तो क्या उसे इसी प्रकार यातना के दंश झेलने पड़ते हैं? हाँ! यदि महर्षि कहते कि उसपर किसी का अभिशाप है तो उसे यह स्वीकारने में किंचित मात्र भी समय नहीं लगता।

लोगों की कौतूहल भरी दृष्टि का पात्र वह सदैव से था। परंतु कुछ दिनों पूर्व हुई घटना के पश्चात अब लोग उसे क्रोध और घृणा की दृष्टि से भी देखने लगते थे। उनके समक्ष वह डटकर खड़ा रहता था। मानो कहना चाहता हो कि मुझे किसी का भय नहीं। परंतु भीतर ही भीतर उसका अंतर्मन भयभीत रहता था। उसने ऐसा क्या किया है जो लोग उसके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं? वह भी अन्य युवकों की भांति सामान्य रहना चाहता है।

कभी कभी एकांत में उसका मन उद्वेलित भी हो जाता था। उसे उस क्षण का स्मरण हो आता था जब अग्निकृमि उसके नियंत्रण में था। ऐसी ऊर्जा, ऐसी शक्ति का अनुभव उसने कभी भी नहीं किया था। उसका स्मरण करते ही उसके शिराओं में रक्त कुछ और अधिक तीव्रता से दौड़ने लगता था। वह पुनः उस अनुभव को प्राप्त करना चाहता था, किसी दुर्व्यसन की भांति। उसकी सहायता से वह उन व्यक्तियों को भस्म कर सकता।

परंतु ऐसा कुछ नहीं होने वाला था। यदि वह ऐसा कर देता तो उन लोगों के अनुमान सत्य हो जाते जो उसे आश्रम से बाहर भिजवाना चाहते थे। वैसे भी महर्षि द्वारा मरुस्थल में रखवाए गए 'सुप्त पदार्थ' के पश्चात इसकी संभावना नगण्य थी।

आश्रम से बाहर जाने के विचार शिखी के मस्तिष्क में भी आते थे। परंतु वह जायेगा कहाँ? अपने जन्म देने वालों के विषय में उसे कुछ भी ज्ञात नहीं था। वैसे भी उन्होंने जिसे जन्म के समय ही त्याग दिया हो उसे वह किसी भी दशा में स्वीकार नहीं करते। शायद इस पूरे एकद्वीप में उसे कोई नहीं स्वीकार करेगा। वह न पुरुष था न स्त्री। वह न सृजन में सक्षम था न प्रजनन।

आश्रम ही उसके लिए सर्वथा उपर्युक्त स्थान था। कुछ वर्षों पश्चात वह आश्रम में ही आचार्य बन जायेगा। ग्रंथ तो उसकी समझ में नहीं आते। हाँ वह एक उत्तम शस्त्र शिक्षक अवश्य बन सकता था। कभी-कभी अपनी पीड़ा को भुलाने के लिए वह ऐसे ही कल्पनाओं के भवन बनाने लगता था।

परंतु इन सब विचार मंथन के पश्चात भी एक प्रश्न का उत्तर शेष रह जाता था। *क्या कभी लोग उसे सामान्य दृष्टि से देखेंगे?*

'शक्ति वरदान भी है और अभिशाप भी। यदि इससे मुक्ति चाहते हो तो कल रात्रि प्राचीन प्रार्थना गृह में आओ।' शिखी ने वृक्ष की छाल पर किसी नुकीली वस्तु से लिखे गये उन दो वाक्यों को कई बार पढ़ा।

वह रात्रि में अपने कक्ष में सो रहा था जब किसी ने उसका द्वार खटखटाया। उसने द्वार खोलकर बाहर देखा तो कोई नहीं था, मात्र वह छाल से बना पत्र द्वार के बाहर रखा हुआ था। उसने आकाश में देखकर समय का अनुमान लगाया। रात्रि का दूसरा प्रहर समाप्त होने वाला था। आश्रम में चारों ओर सन्नाटा था। उसने द्वार बंद किया, दीप जलाया और उस पत्र को पढ़ने लगा।

क्या अर्थ था उन दो वाक्यों का? महर्षि अथवा उसने कभी भी किसी को यह नहीं बताया था कि वह अग्नि तत्व जागृत कर सकता था, परंतु कई लोग इस विषय में अनुमान लगा सकते थे। पहले वाक्य का अभिप्राय तो वह फिर भी समझ रहा था, परंतु दूसरे वाक्य का क्या अर्थ था?

क्या सचमुच कोई ऐसा मार्ग था जिससे वह अपनी तथाकथित शक्ति से मुक्ति पा सकता था? यदि ऐसा संभव था तो वह उस मार्ग पर चलने के लिए सहर्ष तैयार था, चाहे वह मार्ग कितना भी कठिन क्यों न हो।

परंतु यह पत्र भेजा किसने, सहसा उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न कौंधा। कोई बाहरी व्यक्ति तो वह कदापि नहीं हो सकता क्योंकि आश्रम की परिधि सुरक्षा प्रणाली को भेदना असंभव था। यह अवश्य ही कोई आश्रमवासी था। संभवतः किसी को उसपर दया आ गयी हो, अथवा कोई उसकी सहायता करना चाहता हो।

शिखी ने उस पत्र को किनारे रखा, दीपक बुझाया और लेट गया। निद्रा उसकी आँखों से जा चुकी थी। उसने निर्णय किया कि इस विषय में कुछ भी करने से पूर्व वह किसी अन्य से चर्चा करेगा।

प्रातःकाल प्रार्थना सभा के पश्चात शिखी, दत्र और केतुभ के साथ बैठा हुआ था। सभा प्रारंभ होने से पूर्व ही उसने दोनों को मिलने के लिए बुला लिया था। रात्रि में बहुत विचार करने के पश्चात वह इस निर्णय पर पहुँचा था कि इस विषय में चर्चा करने के लिए केतुभ और दत्र ही उपर्युक्त रहेंगे। इनके अतिरिक्त वह मात्र महर्षि वह्निमित्र से ही इस विषय में चर्चा कर सकता था परंतु यह सब सुनकर वह अवश्य ही उसपर क्रोधित होते। उन्होंने उससे स्पष्ट शब्दों में कहा था कि वह इस विषय में भूल जाये और पूर्व की भांति दैनिक कक्षाओं पर ध्यान दे।

परंतु क्या यह इतना ही सरल था? कुछ भूलना कुछ स्मरण करने से अधिक कठिन होता है। बड़े से बड़े अध्यायों को कुछ दिनों के प्रयास के पश्चात पूर्ण रुप से स्मरण किया जा सकता है, परंतु कभी कभी एक छोटी सी बात को भूलने में वर्षों बीत जाते हैं।

यदि वह उस शक्ति से सदैव के लिए मुक्त हो सकता तो इससे उत्तम उसके लिए क्या होता।

"तुम इस शक्ति से मुक्ति क्यों चाहते हो?" दत्र ने पूछा।

शिखी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि जिस व्यक्ति ने भी तुम्हें गुप्त रूप से यह पत्र दिया, वह ऐसा कर सकने में सक्षम है?" केतुभ ने पूछा। वह गंभीर था। उसे ज्ञात था कि उसका उत्तर शिखी के निर्णय को प्रभावित करेगा।

"हाँ।" शिखी ने कहा।

"मुझे नहीं लगता कि ऐसा कुछ संभव भी है?" दत्र ने कहा।

"क्यों नहीं?" शिखी दत्र की ओर मुड़ा, "यदि अग्नि तत्व को जागृत करना संभव है तो इसका विपरीत भी संभव होगा। संभवतः कोई अनुष्ठान, कोई साधना अथवा कोई भी विधि। यदि ऐसा कुछ नहीं होता तो कोई मुझे यह संदेश क्यों देता?"

"यह संदेश...! मुझे समझ नहीं आ रहा कि यदि कोई तुम्हारा हित चाहता है तो उसने गुप्त रूप से तुम्हें संदेश क्यों दिया। वह प्रत्यक्ष रूप से भी तुमसे मिल सकता था। यदि तुम रात्रि में प्राचीन प्रार्थना गृह में जाओगे तो अंततः उसे तुमसे मिलना ही पड़ेगा और उसकी गोपनीयता भंग हो जाएगी।"

"संभवतः इसलिए कि यदि मैं वहाँ न जाऊं तो उसकी पहचान गुप्त रहे।" शिखी ने अनभिज्ञता से अपने कंधे उचकाए।

"तुम व्याकुल हो न इस कार्य के लिए?" दत्र ने कहा, "परंतु कभी कभी कुछ परिस्थितियों से हम भाग नहीं सकते। कभी कभी हमें परिस्थितियों को स्वीकार करना पड़ता है।"

शिखी ने तत्क्षण कोई उत्तर नहीं दिया। वह दत्र की बातों का मर्म भली भांति समझ रहा था। वह भी तो उसकी भांति औरों से भिन्न था। एक मायावी ने उसकी माता के साथ दुष्कर्म किया था, जिनकी मृत्यु उसे जन्म देते समय ही हो गयी थी। क्या यह कोई साधारण बात थी जिसे भूला जा सकता था? परंतु दत्र के लिए यह संभव था। वह वर्तमान में और प्रसन्न चित्त में रहता था।

परंतु वह दत्र जितना सहनशील नहीं था।

"मैंने यह तो नहीं कहा कि मैं उस व्यक्ति की बात मान ही जाऊँगा। परंतु एक बार उसका पक्ष सुनने में क्या बुराई है?" शिखी ने कहा।

"हाँ यह तो है।" केतुभ ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा, "एक बार उससे मिल लेने में क्या हानि है।"

शिखी धीरे से मुस्कराया। उसने निर्णय कुछ समय पहले ही ले लिया था, परंतु वह किसी अन्य की प्रत्यक्ष स्वीकृति चाहता था, और अब उसे वह भी मिल गयी थी।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।" दत्र बोला।

"क्या? मेरा अर्थ था क्यों?" शिखी के मुख से मुस्कान विलुप्त हो चुकी थी। *दत्र अंततः चाहता क्या था? क्या उसे ऐसा प्रतीत होता था कि शिखी स्वयं की रक्षा करने में सक्षम नहीं है?*

"कुछ विशेष कारण नहीं है। मैं बस यह जानने को उत्सुक हूँ कि वह जो भी है, वह तुम्हें क्या उपाय बताने वाला है।"

"उचित है।" शिखी ने कहा। दत्र के साथ जाने में उसे कोई हानि नहीं दिखाई दे रही थी।

रात्रि में भोजन करने के पश्चात सभी छात्र अपने अपने कक्ष में चले गये थे। शिखी अपने कक्ष में बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसे विश्वास हो गया कि प्रांगण में अब कोई भी शेष नहीं होगा, तब वह धीरे से अपने कक्ष से निकला।

दत्र पूर्व में ही अपने कक्ष के द्वार पर खड़ा था। मानो उसे ज्ञात था कि शिखी किस क्षण बाहर आने वाला है।

"आओ चलें।" शिखी ने कहा और भवन के निकट बनी पगडंडी पर बढ़ गया। दत्र ने भी अविलंब अपने पग उसी दिशा में बढ़ा दिए।

दो दिनों पूर्व पूर्ण चंद्र की रात्रि थी, इसी कारण मार्ग में पर्याप्त प्रकाश था। आश्रम के अधिकांश मार्गों में रात्रि के समय दीपदंड लगाये गये थे, परंतु प्राचीन प्रार्थनागृह तक जाने वाले उस मार्ग पर ऐसी कोई सुविधा नहीं थी। इसका कारण था कि उस ओर रात्रि क्या, दिन में भी कोई नहीं जाता था।

वर्षों पूर्व उस प्रार्थना सभा में प्रातःकाल की प्रार्थनाएँ करायी जातीं थीं, परंतु उसके जीर्ण होने के पश्चात कुछ दूरी पर एक नए प्रार्थना गृह का निर्माण किया गया था। उसी समय से वह स्थान रिक्त पड़ा था और किसी कार्य में उपयोग नहीं किया जाता था।

शीघ्र हो दोनों प्राचीन प्रार्थना गृह के मुख्य द्वार पर पहुँचे जो पूरी तरह से टूट चुका था। दत्र ने अनुमान लगाना चाहा कि क्या भवन के अंदर कोई है, परंतु वह असफल रहा। निकट ही दो विशाल वटवृक्ष उगे हुए थे जिनकी शाखाएँ तीव्र गति से चल रही वायु के कारण आपस में टकरा रही थीं।

किसी दूर खड़े व्यक्ति के श्वास का स्वर सुनने में वह अक्षम था। यद्यपि वह अनुमान लगा सकता था कि उनके निकट कोई भी गतिमान वस्तु नहीं है। अर्थात यदि भीतर कोई होगा भी तो वह चल नहीं रहा होगा, अपितु स्थिर होगा।

दोनों प्रार्थना गृह के भीतर पहुँचे। सूखे घास से निर्मित वह भवन मात्र उन शीशम की लकड़ियों के सहारे टिका हुआ था, जिनकी सहायता से छत का निर्माण किया था। नीचे भूमि पर सूखी पत्तियाँ फैली हुई थीं और टूटे हुए छत से छनकर आती चाँदनी पर्याप्त प्रकाश उत्पन्न कर रही थी। शिखी ने कक्ष में अपनी दृष्टि घुमाई। प्रत्यक्षतः उसे कोई नहीं दिखाई दिया। हालाँकि कक्ष में कई ऐसे स्थान थे जहाँ इतना अंधकार था कि दूर से वहाँ देखना संभव न था।

"कोई है?" शिखी का स्वर उस स्थान पर गूँजा। दोनों आगे बढ़ गए।

कोई प्रतिक्रिया नहीं आई, उन्हें मात्र प्रतिध्वनि सुनाई दी।

तभी दत्र को कुछ अनुभव किया। *किसी के चलने का कंपन।* वह उस ओर बढ़ गया। उत्सुक शिखी भी उसके पीछे बढ़ गया। 'उस स्थान पर तो कोई भी नहीं है, कोई वस्तु भी नहीं। फिर दत्र उस ओर क्यों बढ़ रहा है।' शिखी ने सोचा।

आगे बढ़ते दत्र की लाठी दीवार से टकराई। *कक्ष की सीमा समाप्त हो चुकी थी।* परंतु वह उस कंपन को अनुभव कर सकता था। उसी क्षण उसे समझ आया कि जो भी था वह उस प्रार्थना गृह से बाहर था। *परंतु क्यों? उन्हें बुलाकर कक्ष से बाहर रहने का क्या अभिप्राय है?*

अथवा यह कोई अन्य व्यक्ति है जो संयोग वश वहाँ उपस्थित है? परंतु ऐसा दुर्लभ संयोग संभव नहीं था।

तभी उनके सामने की दीवार जलने लगी। अग्नि की लपटें कक्ष के दीवार के निचले भाग से आरंभ होकर छत तक पहुँच गयीं। सूखे पत्तियों और लकड़ियों से निर्मित उन दीवारों पर अग्नि अत्यंत तीव्रता से बढ़ रही थी।

पवित्र अग्नि रक्षा करे। यह सब कुछ घटित होने में मात्र कुछ ही क्षण लगे। उतने समय में शिखी और दत्र मात्र आश्चर्यचकित ही हो पाए, कोई प्रतिक्रिया नहीं कर पाए।

सूखे घास और भूमि पर फैले हुए सूखे पत्तों के कारण अग्नि अत्यधिक तीव्रता से फैल रही थी। वह जल कर मर भी सकते थे।

दोनों मुख्य द्वार की ओर बढ़ गए। उन्होंने मात्र कुछ पग ही आगे बढ़ाये होंगे कि ठीक उनके समक्ष लकड़ी का एक विशाल टुकड़ा गिरा। भय की एक तरंग उन दोनों के शरीर में दौड़ गयी। यदि वह कुछ पग और आगे होते तो वह टुकड़ा ठीक उन दोनों के सिर पर गिरता।

उन्हें और भी सावधान रहना होगा। और शीघ्रता से वहाँ से बाहर निकलना होगा। धुएँ के कारण श्वास लेना भी कठिन होता जा रहा था। शिखी अब छत में लगी हुई लकड़ियों के स्थान देख आगे बढ़ रहा था। भूमि पर गिरे पत्तों में फैली हुई अग्नि के कारण उनके पाँव जलने लगे थे।

उन्हें और शीघ्रता करनी होगी। शिखी ने अपने जबड़े भींच लिए।

“शीघ्रता करो।” उसने दत्र से कहा। “यह भवन किसी भी क्षण गिर सकता है। उस दशा में हमारे बचने की संभावना शून्य होगी।”

दत्र ने मात्र सहमति में अपना सिर हिलाया। वह पूर्ण प्रयास कर रहा था, परंतु उसे इस तथ्य से ग्लानि हो रही थी कि वह संकट को सही समय पर भाँप नहीं पाया।

तभी दो और लकड़ियाँ छत से टूटकर गिरीं। एक उनके आगे, एक उनके पीछे। शीघ्र ही भवन की पूरी जलती हुई छत भी नीचे गिरने वाली थी। वह दौड़कर कक्ष के मुख्य द्वार तक नहीं पहुँच सकते थे क्योंकि कभी भी कोई लकड़ी का टुकड़ा उनके सिर पर गिर सकता था।

यह एक षड्यंत्र था। आरंभ से अंत तक। शिखी के मस्तिष्क में यह बातें गूँज रही थीं, *उसे संदेश द्वारा ऐसे स्थान पर बुलाना जिसे अत्यंत सरलता से जलाया जा सके।* और वह सरलता से इस षड्यंत्र में फँस गया था।

परंतु प्रश्न था कि ऐसा कार्य किया किसने? शिखी ने धीरे से अपने सिर को हिलाया, इस क्षण इस प्रश्न के उत्तर से अधिक आवश्यक था उस स्थान से सकुशल बाहर निकलना। और उसके लिए उसे अपना संपूर्ण ध्यान एक ही स्थान पर रखना था।

अपने सामने गिरी जलती हुई लकड़ी को लाँघ कर वह आगे बढ़े। दत्र के लिए यह कठिन होता जा रहा था, वह अपनी लाठी आगे कर बढ़ रहा था जिससे वह किसी वस्तु से टकराकर नीचे न गिरे। तभी शिखी ने उसका हाथ पकड़ा और तीव्रता से आगे खींचा।

अगले ही क्षण उसी स्थान पर विशाल लकड़ी का टुकड़ा गिरा जहाँ दत्र खड़ा था।

“शीघ्रता करो, द्वार अधिक दूर नहीं है।” शिखी ने कहा और उसका हाथ पकड़े हुए ही आगे बढ़ने लगा।

दोनों बचते हुए द्वार तक पहुँचे ही थे कि पूरा भवन भरभराकर गिर पड़ा। दोनों ने छलांग लगायी और बाहर पहुँचे। परंतु लकड़ी का एक टुकड़ा तीव्र गति से छिटककर दत्र के सिर से आ टकराया। वह बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ा।

शिखी ने कठिनाई से उसे जलते हुए भवन से दूर खींचा। उसने एक बार भवन को देखा और पुनः बेसुध दत्र को देखा। *यह उसकी भूल थी।* क्रोध से उसकी मुट्ठियाँ कस गयीं। *नहीं! यह उस व्यक्ति की भूल थी जिसने उसे संदेश द्वारा यहाँ बुलाया था।* उसकी मुट्ठियों से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी।

और उस व्यक्ति को इस कार्य के दुष्परिणाम भी भुगतने होंगे।

अध्याय 19
निर्णय

यह असंभव है। महर्षि वह्निमित्र विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि किसी ने शिखी को मारने का षड्यंत्र रचा था। और जिस प्रकार से इस षड्यंत्र को रचा गया था उसे देख कर यह बताना भी कठिन नहीं था कि यह कार्य किसी आश्रमवासी का ही है।

आश्रम प्रमुख के रूप में यह उनकी भूल थी। क्यों उनकी दृष्टि उस व्यक्ति को ढूँढ नहीं पा रही थी जिसने यह अक्षम्य कृत्य किया था। क्यों उनके रहते किसी आश्रमवासी ने ऐसा दुस्साहस किया। क्या वह आश्रम प्रमुख के अपने दायित्व का निर्वहन करने में सक्षम नहीं थे?

उन्हें यह तो ज्ञात था कि आश्रम में कई लोग शिखी से वैमनस्य भाव रखते हैं, परंतु उन्होंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि कोई इस सीमा तक शिखी का अहित करने का प्रयत्न कर सकता है।

उन्होंने अपने कक्ष के बाहर खड़े सायक को बुलाया।

"प्रणाम महर्षि।" सायक ने अभिवादन किया और सिर झुकाकर उनके समक्ष खड़ा हो गया। महर्षि चिंतित थे, संभवतः क्रोधित भी, सायक उनके मुख के भाव देख कर बता सकता था।

"कुछ ज्ञात हुआ हमारे कार्यालय से ताम्रपत्र किसने चुराया था?" उन्होंने पूछा।

"नहीं महर्षि। पंथ के सभी सदस्यों के मृत होने के कारण हमें अभी तक कोई भी अतिरिक्त सूचना नहीं मिली है।" सायक ने कहा। *और संभवतः कभी न मिले।* आश्रम में प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्यालय से ताम्रपत्र चुराना सरल था। उनमें से कोई भी व्यक्ति यह कार्य कर सकता था।

"तो और प्रयास करो।" महर्षि ने तीव्र और झुंझलाहट भरे स्वर में कहा। उन्हें प्रतीत हुआ कि वह अपनी खीझ किसी और पर निकाल रहे हैं तो उन्होंने अपने स्वर को संयत किया और सायक से कहा, "साथ ही यह भी ज्ञात करने का प्रयास करो कि कल रात्रि प्राचीन प्रार्थना गृह में अग्नि किसने लगायी थी।"

"अवश्य।"

"दत्र की स्थिति अभी कैसी है?" महर्षि ने पूछा। रात्रि में ही दत्र को औषधालय में ले जाया गया था जहाँ तत्क्षण उसकी चिकित्सा आरंभ कर दी गयी थी। उसके सिर में तीव्र चोट लगी थी जिसके कारण वह बेसुध था। इसके अतिरिक्त उसका शरीर कुछ स्थानों पर जल भी गया था, परंतु वैद्य के अनुसार वह घाव कुछ ही दिनों में भर जाने वाले थे।

"वह रात्रि से कुछ स्वस्थ है।" सायक ने बताया, "प्रातःकाल उसकी चेतना लौटी थी, परंतु सिर में तीव्र पीड़ा होने के कारण वैद्य ने उसे पुनः निद्रा की औषधि दे दी है। उसे पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में कुछ दिनों का समय लग सकता है।

महर्षि ने सहमति में सिर हिलाया। दत्र की ओर से वह आश्वस्त थे, परंतु उन्हें चिंता थी शिखी की। रात्रि में उन्होंने उसके मुख पर अत्यंत हिंसक भाव देखे थे। ठीक वैसे ही भाव जैसे उन्होंने वर्ष भर पूर्व देखे थे, वन में।

शिखी शांत था।

उनपर आक्रमण होने से लेकर वर्तमान तक के चार प्रहर के अंतराल में उसने स्वयं को शांत कर लिया था। यदि ठीक चार प्रहर पूर्व वह व्यक्ति उसके समक्ष आ जाता, जिसने उस भवन में अग्नि लगायी थी तो वह उसे अवश्य ही मार देता, लेकिन इस क्षण वह शांत था।

वह औषधालय के उस कक्ष में पहुँचा जहाँ दत्र सोया हुआ था। वैद्य उस क्षण उसी कक्ष में उपस्थित था, आहट पाकर उसने शिखी को देखा।

"वह ठीक है।" बिना पूछे ही उसने शिखी को दत्र के विषय में बताना आरंभ कर दिया, "प्रातःकाल यह चेतना में आया था, परंतु अत्यधिक पीड़ा के कारण हमें शीघ्र ही निद्रा की औषधि देनी पड़ी।"

"इसकी चेतना पुनः कब लौटेगी?" शिखी ने कक्ष में अपनी दृष्टि घुमाई। जो कक्ष उन्हें आवंटित किये गए थे, यह कक्ष उससे तीन गुना विशाल था। जिस पर्यंक पर दत्र सोया था उसके निकट ही नाना प्रकार की औषधियाँ और लेप रखे हुए थे। कक्ष के एक कोने में दत्र की लाठी रखी हुई थी।

"औषधि का प्रभाव तो कल तक समाप्त हो जायेगा। परंतु मुझे भय है कि तीव्र पीड़ा और दुर्बलता को समाप्त होने में कुछ दिन लग जायेंगे।" वैद्य ने कहा। "यदि पीड़ा अत्यधिक तीव्र हुई तो हमें पुनः निद्रा की औषधि देनी पड़ेगी।"

शिखी ने मात्र सहमति में सिर हिलाया। उसने कुछ क्षणों तक दत्र के मुख को देखा और कक्ष में टहलने लगा।

"यदि तुम चाहो तो मैं कल तुम्हें बुला दूँगा, जब इसकी चेतना लौटेगी।" वैद्य ने कहा।

"उसकी कोई आवश्यकता नहीं।" शिखी ने कठिनाई से अपने मुख पर एक क्षणिक मुस्कान प्रकट की, "धन्यवाद।"

उसने कक्ष के कोने में रखी दत्र की लाठी उठाई और उसे पर्यंक के निकट खड़ा कर दिया। "कृपया इसे यहाँ से न हटाइएगा, जब वह स्वस्थ हो जायेगा तो उसे इसकी आवश्यकता होगी।"

इसके पश्चात बिना किसी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किये वह उस कक्ष से बाहर निकल आया।

औषधालय को आश्रम के मध्य भाग में बनाया गया था। एक ओर छात्रों के भवन और रंगशाला का निर्माण किया गया था वहीं दूसरी ओर कुछ भवन बनाये गए थे जहाँ आश्रम के वर्तमान और पूर्व आचार्य रहते थे।

औषधालय से निकल कर वह अपने कक्ष की ओर बढ़ने के स्थान पर दूसरी दिशा में बढ़ गया। शीघ्र ही छोटे छोटे भवन की श्रृंखलाएँ आरंभ हो गयीं जिनके बाहर अधिकांशतः स्त्रियाँ और बच्चे उपस्थित थे। उन्होंने उसे कौतूहल भरी दृष्टि से देखा, परंतु वह उनपर तनिक भी ध्यान न देते हुए एक भवन तक पहुँचा।

"कोई है।" द्वार पर पहुँच कर उसने तनिक ऊँचे स्वर में कहा।

कुछ ही क्षणों पश्चात एक वृद्ध व्यक्ति बाहर आया। शिखी को देख उसके भाव जिस प्रकार परिवर्तित हुए, उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि वह शिखी से भलीभांति परिचित था।

"प्रणाम आचार्य अतवी।" शिखी ने शालीनता से दोनों हाथ जोड़े और उस वृद्ध का अभिवादन किया। वह वह्निमित्र के बाल्यकाल का मित्र, आश्रम का पूर्व आचार्य और विकेश का पितामह था।

अतवी ने सिर हिलाकर उसका अभिवादन स्वीकार किया। "विकेश तो यहाँ से लौट चुका है।" मरुभूमि में पंथ द्वारा घायल होने के पश्चात वैद्य ने कुछ दिनों तक विकेश को कोई भी शारीरिक श्रम करने से मना किया था, इसी कारण वह कुछ दिनों के लिए अपने पितामह के आश्रम में चला आया था। उसके माता पिता मरुभूमि से दूर एक नगर में रहते थे जहाँ उसका जन्म हुआ था। परंतु जब विकेश की शिक्षा का समय आया तो अतवी उसे आश्रम लिवा लाया था।

"मुझे ज्ञात है।" शिखी ने कहा, "मैं आपसे मिलना चाहता था।"

अतवी ने कुछ क्षणों तक एकटक उसे घूरा, उसके पश्चात कहा, "भीतर आ जाओ।"

अतवी अपना अधिकांश समय साधना इत्यादि में ही व्यतीत करता था, इसी कारण उसके भवन में अधिक वस्तुएँ नहीं थी। उसने शिखी को पर्यंक पर बैठने का संकेत किया और स्वयं भी उसके निकट बैठ गया।

"विकेश अत्यंत उत्तम धनुर्धर है।" शिखी ने कहा।

"हाँ। मैंने स्वयं ही बाल्यकाल से उसे धनुर्विद्या सिखाई है।" अतवी ने सिर हिलाते हुए कहा। वह समझने का प्रयत्न कर रहा था कि शिखी वास्तव में वहाँ क्यों आया है।

"घायल होने के पश्चात भी वह पंथ के सदस्यों से अत्यंत वीरता से लड़ा।" शिखी पुनः बोला।

"वह उसकी मूर्खता थी, उसे इस प्रकार मरुस्थल में फणिक के पीछे नहीं जाना चाहिए था।" अतवी के स्वर में क्रोध था।

"परंतु इस कार्य के लिए तो उसे महर्षि वह्निमित्र ने कहा था और उसने इस कार्य सहर्ष स्वीकार भी किया था।" शिखी का स्वर शांत था।

"तो मैं यह कहूँगा कि यह मूर्खता वह्नि की थी।" अतवी का स्वर क्रोध से ऊँचा हो गया, आँखें कुछ फैल गयीं, "उसे आश्रम के एक छात्र को ऐसा कार्य देने से पहले विचार करना चाहिए था।"

"या यह मूर्खता उस आश्रमवासी की थी जिसने फणिक को कार्यालय से ताम्रपत्र चुराकर दिया था।" शिखी का स्वर अभी भी शांत था। दृष्टि अतवी पर टिकी हुई थी।

अतवी शिथिल पड़ गया। उसने प्रश्नसूचक नेत्रों से शिखी को देखा।

"क्यों किया आपने ऐसा? शक्ति के लोभ में?" शिखी ने पूछा।

अतवी ने कुछ कहने के लिए अपना मुख खोला, परंतु कुछ कहा नहीं।

"आपके लोभ के कारण आपके ही पौत्र विकेश के प्राण भी संकट में पड़ गए।"

अतवी ने तत्क्षण कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। उसने स्वयं को शांत कर लिया। उसने कहा, "जो शक्तियाँ तुम्हें पूर्व में ही प्राप्त हैं उसके लोभ के विषय में प्रश्न करने वाले तुम कौन हो?"

"मैंने वह शक्तियाँ किसी से माँगी तो नहीं। मैंने कभी उनका दुरुपयोग तो नहीं किया।" शिखी बोला।

"इस तथ्य पर किस प्रकार विश्वास किया जा सकता है। संभवतः तुम्हें स्वयं वह्नि ने वह विद्या सिखाई हो जिससे अग्नि तत्व को नियंत्रित किया जा सकता है। तुम उसके प्रिय शिष्य जो हो।"

शिखी ने अतवी के कथन में व्यंग्य का अनुभव किया। अतवी उन व्यक्तियों में से एक था जिसे यह पूर्ण रूप से ज्ञात था कि वह्निमित्र मंत्र विद्या के लिए जिस छात्र का चयन करने वाले हैं वह शिखी था।

"यह आपका भ्रम है। क्या इसी कारण आपके मन में मेरे लिए द्वेष है?" शिखी ने पूछा।

"तुमने विकेश के गर्दन पर तलवार रखी थी, क्या यह कारण पर्याप्त नहीं।" अतवी ने कहा।

शिखी ने एक दीर्घ श्वास ली, "उस समय भूल विकेश की ही थी और उसने मुझसे क्षमा भी माँगी थी। और मैंने उसे क्षमा भी कर दिया था। न मेरे और न आपके पौत्र के हृदय में कोई ऐसी भावना शेष है।"

"भविष्य में इसकी क्या निश्चितता है।" अतवी ने कहा, "तुम ऐसी शक्ति को नियंत्रित कर सकते हो जिससे किसी भी व्यक्ति को क्षणों में ही समाप्त किया जा सकता है। यदि अगली बार तुमने अपनी तलवार किसी के गर्दन पर घुमाई और वह न रुकी तो?"

शिखी मुस्कराया। "आप स्वयं एक व्यक्ति को उस शक्ति तक पहुँचने का अनैतिक मार्ग दिखाते हैं और दूसरी ओर मुझे संकट बता रहे हैं। यह द्वेष इस कारण नहीं है कि मैंने विकेश के गर्दन पर तलवार रखी थी, अपितु इस कारण है कि जो मुझे प्राप्त है वह आपको प्राप्त नहीं।"

अतवी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"इसी कारण आपने संदेश द्वारा मुझे प्राचीन प्रार्थना गृह में बुलाया और उस भवन में अग्नि लगाकर मुझे मारना चाहा।"

अतवी ने तत्क्षण कुछ नहीं कहा। उसके मुख के भाव तनिक भी परिवर्तित नहीं हुए। अंततः उसने कहा, "द्वेष के कारण नहीं। इस कारण कि तुम जिस शक्ति के स्वामी हो तुम उसे नियंत्रित नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हें वह अत्यंत सरलता से प्राप्त हो गयी है। बिना उचित मूल्य के प्राप्त हुई शक्ति विवेक को भ्रष्ट कर देती है; तुम भविष्य में एक संकट बन सकते हो। और वर्तमान में कोई उस संकट को नहीं भाँप पा रहा।"

"आपके पास तो प्रत्येक प्रश्न के उत्तर हैं। कृपया मेरे एक अंतिम प्रश्न का भी उत्तर दीजिये।" शिखी ने कहा, "आपका क्या विचार है कि यह ज्ञात होने के पश्चात कि आपने मुझे मारने का प्रयत्न किया, मैं क्या करूँगा?"

"तुम मुझे मार सकते हो। इसी क्षण, इसी स्थान पर।" अतवी ने निर्भीक भाव से कहा, "अथवा वह्नि को इस विषय में बता सकते हो। वह अवश्य ही मुझे दंड देगा, संभवतः मरुभूमि से निष्कासित कर सकता है। मुझे दोनों में से किसी का भय नहीं।"

शिखी धीरे से हँसा, “मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा। विकेश को अपने पितामह पर अत्यंत गर्व है। मैं उसका विश्वास नहीं तोड़ूँगा। आपको ज्ञात नहीं, पिछले वर्ष जब मैंने विकेश पर आक्रमण किया था तो दत्र मुझसे अत्यंत रुष्ट था। उसने मुझसे कहा था कि मुझे ऐसी बातों पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए और सामने वाले को क्षमा कर देना चाहिए।” शिखी ने एक क्षण रुककर कहा, “मैं आपको क्षमा करता हूँ। यह सत्य है कि मैं आपको मार सकता हूँ। इसी क्षण, इसी स्थान पर। और किसी भी दशा में आप मुझे रोक नहीं पायेंगे। परंतु नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा। यह सिद्ध करता है कि मैं अपनी शक्तियों पर नियंत्रण कर सकता हूँ।”

शिखी अपने स्थान से उठा और भवन से बाहर निकलने लगा। परंतु द्वार तक पहुँच कर वह पीछे मुड़ा। अतवी अभी भी अपने स्थान पर बैठा हुआ था। “परंतु यदि आपने पुनः ऐसा कोई कार्य किया तो संभवतः मैं यह नियंत्रण खो दूँ। आपके कारण दत्र इस क्षण पीड़ा में है, और उसी की बात का मान रखने के कारण मैंने आपको क्षमा किया है। संभवतः पुनः मैं आपको क्षमा न कर पाऊँ।”

अतवी के भवन से निकलने के पश्चात शिखी सीधा महर्षि वह्निमित्र के कार्यालय की ओर बढ़ गया। उसे महर्षि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर चर्चा करनी थी।

महर्षि अपने कक्ष में एकांत में बैठे थे। सायक के कक्ष से जाने के पश्चात उन्होंने स्वयं को संयत कर लिया था। शिखी को अपने समक्ष देख वह तनिक आश्चर्यचकित हुए।

“मैंने एक निर्णय लिया है।” शिखी ने बिना उनका अभिवादन किये हुए कहा।

महर्षि ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह पूछना चाहते थे *कैसा निर्णय?*, परंतु वह मौन ही रहे। संभवतः ही कभी ऐसा हुआ हो कि शिखी उनके समक्ष आया हो और उसने उनका अभिवादन न किया हो। परंतु इस क्षण स्थिति भिन्न दी। शिखी क्रोधित नहीं दिख रहा था, जिस अवस्था में उन्होंने उसे रात्रि में देखा था। यद्यपि वह किसी उलझन में अवश्य था। उसके मस्तिष्क में कोई द्वंद्व चल रहा था।

“मैंने आश्रम छोड़ने का निर्णय किया है। सदैव के लिए।” शिखी ने कहा।

“कहाँ जाओगे?” महर्षि ने पूछा। उन्होंने शिखी से यह नहीं पूछा कि *‘क्यों? तुम आश्रम क्यों छोड़ना चाहते हो?’* क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर उन्हें ज्ञात था। न ही उन्हें शिखी के इस कथन से कुछ आश्चर्य हुआ।

“ज्ञात नहीं।” शिखी ने सपाट भाव से उत्तर दिया।

“जन्म से लेकर वर्तमान तक तुमने मात्र एक बार ही मरुभूमि से बाहर अपने पग रखे हैं।” महर्षि के लिए यह बताना आवश्यक नहीं था कि उस एक बार क्या हुआ था। “मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं। यह मेरा अधिकार नहीं। किसी को भी मरुभूमि में रोकने का मुझे कोई अधिकार नहीं। परंतु किसी स्थान से प्रस्थान करने से पूर्व यह ज्ञात करना लाभकर रहता है कि गंतव्य क्या है। मरुभूमि के बाहर अनभिज्ञ प्रदेश में भटकना उचित नहीं।”

“आपने ही तो कहा कि मैं कभी मरुभूमि से बाहर नहीं गया। मुझे किस प्रकार ज्ञात होगा कि मेरा गंतव्य क्या है। एकद्वीप में नगर ग्राम का कोई अभाव नहीं है, उनमें से कोई नगर, कोई ग्राम तो ऐसा होगा जहाँ मुझे ठहराव मिलेगा।”

यह इतना सरल नहीं है। बिना किसी आधार के किसी नगर, किसी ग्राम में ठहराव मिलना कठिन है। महर्षि ने मन में कहा। “क्या करोगे उस नगर, उस ग्राम में?” महर्षि ने प्रत्यक्ष कहा।

“ज्ञात नहीं।” शिखी ने उत्तर दिया।

महर्षि को अनुभव हुआ कि वह कितना अबोध है। संसार के नियमों से अनभिज्ञ। वहाँ सब कुछ अर्जित करना पड़ता है। “कहाँ जाओगे, ज्ञात नहीं। क्या करोगे ज्ञात नहीं।” उन्होंने कहा, “इस आश्रम के बाहर जीवन सरल नहीं।”

“जीवन मेरे लिए सरल ही कब था? कुछ और कठिनाइयों के आ जाने से भी उसमें कोई अंतर नहीं पड़ेगा।” इस समय शिखी के पास सभी प्रश्नों के उत्तर थे।

“एक बार पुनः विचार कर लो। भविष्य में आने वाली कठिनाइयाँ तुम्हारी कल्पना से भी अधिक भयावह हो सकती हैं।” महर्षि बोले। वह शिखी से प्रत्यक्ष रूप से कहना चाहते थे कि ‘नहीं! आश्रम छोड़ कर मत जाओ।’ परंतु यह उनकी शिखी के प्रति आसक्ति को दर्शाता। आश्रम प्रमुख का पद ग्रहण करते समय उन्होंने अग्नि के समक्ष प्रतिज्ञा ली थी कि वह मरुभूमि के प्रत्येक जीवित मनुष्य को एक समान दृष्टि से देखेंगे। शिखी के प्रति उनकी आसक्ति उनकी प्रतिज्ञा के विरुद्ध थी। वह मंत्र विद्या की शिक्षा के लिए शिखी का चयन करने वाले थे, परंतु वह उसकी विशेषताओं के कारण था जिससे वह उचित रूप से अग्नि तत्व को नियंत्रित कर सके, न कि उसके प्रति उनकी आसक्ति के कारण। वैसे भी वह शिखी को सदैव के लिए आश्रम में नहीं रोक सकते थे।

“क्या मेरा जीवन उस बालक के भविष्य से अधिक अंधकारमय हो सकता है जिसे जन्म के समय ही वन में छोड़ दिया गया हो। परंतु उसके पश्चात भी मैं यहाँ खड़ा हूँ, जीवित। प्रकृति मनुष्य के जन्म के साथ ही उसे जीवित रहने के साधन भी देती है। कभी कभी यह सरल नहीं होता, परंतु कठिन मार्गों पर चलने का अभ्यास मुझे भली भांति है। जिस प्रकार उसने आज तक मुझे जीवित रखा, उसी प्रकार वह मुझे भविष्य में भी जीवित रखेगी।” शिखी ने कहा, “मेरा निर्णय अंतिम है।”

उसने झुककर वह्निमित्र के पैर छुए। “आशीर्वाद दीजिये।”

वह्निमित्र ने अत्यंत स्नेह से शिखी के सिर पर हाथ रखा, “आयुष्मान भव!” उनके मुख से मात्र यह दो शब्द ही निकले।

अध्याय 20
इरा और थिनला

“हम उचित तो कर रहे हैं न?” थिनला ने अपने साथ चल रहे इरा से पूछा।

“तुम्हें भी ज्ञात है कि इसके अतिरिक्त हमारे पास कोई अन्य विकल्प शेष नहीं है।” इरा ने धीमे स्वर में कहा, “मायावियों के विरुद्ध हमारे साधारण अस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं।” वह दोनों वृक्षों की श्रृंखलाओं को पार कर तौजंबन में प्रवेश कर रहे थे।

“मैं उस विषय में नहीं कह रही।” थिनला ने व्याकुल स्वर में कहा। “क्या विस्फोटक पदार्थ को चुराना आवश्यक है?”

इरा ने कुछ कहने से पूर्व अपनी दृष्टि घुमाकर सभी दिशाओं में देखा। रात्रि का अँधेरा तौजंबन को स्वयं में समेट रहा था। उसे कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई दिया। *अर्थात उन्हें वन से तौजंबन में प्रवेश करते हुए किसी ने नहीं देखा था।*

वह पुनः थिनला की ओर मुड़ा और बोला, “यही हमारा एकमात्र विकल्प है। वर्तमान में हम वनवासियों के पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसके प्रतिदान में यहाँ के व्यापारी हमें विस्फोटक देंगे। यह नगर है और यहाँ लोग मात्र मुद्राओं की भाषा समझते हैं। और हमारे पास एक भी मुद्रा नहीं है।”

थिनला ने कुछ नहीं कहा। वह अपने स्थान पर रुक गयी। उसको देख इरा भी रुक गया।

“थिनला! हम यहाँ तक आकर पीछे नहीं हट सकते। कुछ भी निर्णय लेने से पूर्व अपनी माँ के विषय में सोचो जिनकी मृत्यु उन मायावियों के द्वारा हुई थी।” इरा बोला, “अब तुम हमारी मुखिया हो और तुम्हें ही सुनिश्चित करना है कि सभी वनवासी मायावियों से सुरक्षित रहें।”

थिनला ने अपना सिर झुका लिया। उसकी आँखों में अश्रु थे जिन्हें उसने अत्यंत कठिनाई से बाहर आने से रोका हुआ था। उसने कभी स्वप्न में नहीं सोचा था कि उसकी माँ की मृत्यु होगी और उसे उनका पद ग्रहण करना पड़ेगा। *परंतु इरा भी तो सत्य कह रहा था, अब वह उनकी मुखिया थी और उस पद का उत्तरदायित्व भी उसका ही था। आँखें मूँद लेने से संकट समाप्त तो नहीं हो जाता।*

“अधिक मात्रा में विस्फोटक की सहायता से हम पुनः मायावियों जितने शक्तिशाली हो जायेंगे। हम उनसे एक अंतिम युद्ध लड़ सकते हैं।” इरा ने थिनला के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।

“अंतिम युद्ध?” थिनला ने अपना मुख ऊपर उठाया और स्वयं से कुछ अंगुल लंबे इरा की आँखों में देखा, “जब हमने कुछ माह पूर्व माया का मंदिर नष्ट किया था, तब वह भी तो अंतिम युद्ध ही था। परंतु वास्तव में हुआ क्या? मायावियों ने हमपर आक्रमण की गति पुनः बढ़ा दी।”

इरा ने एक गहरी श्वास ली। “हम भविष्य में नहीं देख सकते थिनला। हम मात्र अनुमान लगा सकते हैं। हो सकता है यह युद्ध भी अंतिम न हो। और यह भी संभव है कि यह मायावियों से हमारा अंतिम द्वंद्व हो। हो सकता है कि हम मायावियों का समूल नाश कर दें, या यह भी संभव है कि हम मायावियों द्वारा मारे जाएँ। कुछ भी संभव है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि हम प्रयास करना छोड़ दें। तुम हमारी मुखिया हो, मैंने तुम्हें पूर्व में ही आने से मना किया था। अभी भी समय है, तुम वापस लौट जाओ। मैं अकेले ही यह कार्य कर लूँगा।”

एक ही श्वास में सब कुछ कहने के पश्चात इरा शांत हो गया। उसकी बातों का थिनला पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। *कुछ तथ्यों को उचित अनुचित के मापदंड पर नहीं नापा जा सकता।*

“मुझे क्षमा कर दो।” कुछ क्षणों पश्चात थिनला ने कहा, “तुम सत्य कह रहे हो। यही हमारा एकमात्र विकल्प है और मुझे विस्फोटक चुराने में कोई समस्या नहीं है। जब मायावी हम पर आक्रमण करते हैं, हमारा वध करते हैं और छोटे छोटे शिशुओं की बलि देते हैं, तब तो यह नगरवासी हमारी रक्षा के लिए नहीं आते। ऐसे व्यक्तियों से यदि हम थोड़ी सी वस्तु चुरा लेंगे तो हम कुछ भी अनुचित नहीं करेंगे।”

इरा के मुख पर मुस्कान आ गयी। “यहाँ से कुछ दूर पश्चात ही तौजंबन का मुख्य हाट आरंभ हो जायेगा। वहाँ रात्रि के समय भी पर्याप्त मनुष्य दिखाई देंगे। हमें उनके मध्य से चलकर जाना होगा। हमें ऐसा व्यवहार करना है कि हम साधारण व्यापारी लगें, इस कारण कृपया उनके मध्य अपने मुख पर इतने गंभीर भाव न रखना। हमें बिना किसी समस्या के उस भंडारघर के निकट पहुँचना है जहाँ विस्फोटक सामग्री रखी होगी, क्योंकि मेरा अनुमान है कि लौटते समय हम इतनी सरलता से यहाँ नहीं पहुँच पायेंगे।”

“ठीक है, ठीक है।” थिनला ने कहा, “मैं समझ गयी। पूर्ण रूप से समझ गयी। अब शीघ्र ही बढ़ो।”

दोनों पुनः बढ़ गए। एक लंबी यात्रा कर तौजंबन आने के कारण वह थके हुए थे, परंतु वन से आने वाली शीतल वायु उनके थकान को मिटा रही थी।

“यदि मैं अपनी कुल्हाड़ी ला पाता तो मैं स्वयं को इतना असुरक्षित नहीं अनुभव करता।” इरा ने कहा।

“अब मूर्खतापूर्ण बातें तुमने आरंभ कर दी।” थिनला ने कहा, “यदि तुम कुल्हाड़ी लेकर हाट में घूमोगे तो किसी को भी संदेह हो जायेगा कि तुम साधारण व्यापारी नहीं हो।”

इरा धीरे से हँस पड़ा और बोला, “मेरा मानना है कि दो गंभीर व्यक्ति एक साथ अच्छे नहीं दिखते, इसी कारण उनमें से किसी एक को थोड़े थोड़े अंतराल पर कुछ मूर्खतापूर्ण बातें अवश्य करनी चाहिए।”

तौजंबन के मुख्य हाट को सरलता से पार कर इरा और थिनला एक बार पुनः नगर के दूसरे शांत भाग में पहुँच गए थे। तौजंबन के इस भाग में विशाल भंडारगृह बनाये गये थे जहाँ निर्माणशाला में बनने वाले अस्त्र शस्त्र रखे जाते थे।

“वह नीले रंग का विशाल भवन देख रही हो जिसके द्वार लोहे द्वारा निर्मित हैं, वही हमारा लक्ष्य है।” इरा ने एक भवन की ओर संकेत करते हुए कहा।

इस क्षण दोनों एक वृक्ष की ओट में खड़े थे।

“उसमें पर्याप्त मात्रा में विस्फोटक पदार्थ रखे होंगे?” थिनला ने पूछा जो प्रथम बार नगर में आई थी। वह वनवासी थी और उनके जीवन यापन की प्रत्येक वस्तु वन में ही उपस्थित थी। परंतु यदि उन्हें एकद्वीप में कोई कार्य पड़ता था तो नगर में आने का कार्य मुख्यतः इरा ही करता था।

अध्याय 20
इरा और थिनला

“हम उचित तो कर रहे हैं न?” थिनला ने अपने साथ चल रहे इरा से पूछा।

“तुम्हें भी ज्ञात है कि इसके अतिरिक्त हमारे पास कोई अन्य विकल्प शेष नहीं है।” इरा ने धीमे स्वर में कहा, “मायावियों के विरुद्ध हमारे साधारण अस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं।” वह दोनों वृक्षों की श्रृंखलाओं को पार कर तौजंबन में प्रवेश कर रहे थे।

“मैं उस विषय में नहीं कह रही।” थिनला ने व्याकुल स्वर में कहा। “क्या विस्फोटक पदार्थ को चुराना आवश्यक है?”

इरा ने कुछ कहने से पूर्व अपनी दृष्टि घुमाकर सभी दिशाओं में देखा। रात्रि का अँधेरा तौजंबन को स्वयं में समेट रहा था। उसे कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई दिया। *अर्थात उन्हें वन से तौजंबन में प्रवेश करते हुए किसी ने नहीं देखा था।*

वह पुनः थिनला की ओर मुड़ा और बोला, “यही हमारा एकमात्र विकल्प है। वर्तमान में हम वनवासियों के पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसके प्रतिदान में यहाँ के व्यापारी हमें विस्फोटक देंगे। यह नगर है और यहाँ लोग मात्र मुद्राओं की भाषा समझते हैं। और हमारे पास एक भी मुद्रा नहीं है।”

थिनला ने कुछ नहीं कहा। वह अपने स्थान पर रुक गयी। उसको देख इरा भी रुक गया।

“थिनला! हम यहाँ तक आकर पीछे नहीं हट सकते। कुछ भी निर्णय लेने से पूर्व अपनी माँ के विषय में सोचो जिनकी मृत्यु उन मायावियों के द्वारा हुई थी।” इरा बोला, “अब तुम हमारी मुखिया हो और तुम्हें ही सुनिश्चित करना है कि सभी वनवासी मायावियों से सुरक्षित रहें।”

थिनला ने अपना सिर झुका लिया। उसकी आँखों में अश्रु थे जिन्हें उसने अत्यंत कठिनाई से बाहर आने से रोका हुआ था। उसने कभी स्वप्न में नहीं सोचा था कि उसकी माँ की मृत्यु होगी और उसे उनका पद ग्रहण करना पड़ेगा। *परंतु इरा भी तो सत्य कह रहा था, अब वह उनकी मुखिया थी और उस पद का उत्तरदायित्व भी उसका ही था। आँखें मूँद लेने से संकट समाप्त तो नहीं हो जाता।*

“अधिक मात्रा में विस्फोटक की सहायता से हम पुनः मायावियों जितने शक्तिशाली हो जायेंगे। हम उनसे एक अंतिम युद्ध लड़ सकते हैं।” इरा ने थिनला के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।

“अंतिम युद्ध?” थिनला ने अपना मुख ऊपर उठाया और स्वयं से कुछ अंगुल लंबे इरा की आँखों में देखा, “जब हमने कुछ माह पूर्व माया का मंदिर नष्ट किया था, तब वह भी तो अंतिम युद्ध ही था। परंतु वास्तव में हुआ क्या? मायावियों ने हमपर आक्रमण की गति पुनः बढ़ा दी।”

इरा ने एक गहरी श्वास ली। “हम भविष्य में नहीं देख सकते थिनला। हम मात्र अनुमान लगा सकते हैं। हो सकता है यह युद्ध भी अंतिम न हो। और यह भी संभव है कि यह मायावियों से हमारा अंतिम द्वंद्व हो। हो सकता है कि हम मायावियों का समूल नाश कर दें, या यह भी संभव है कि हम मायावियों द्वारा मारे जाएँ। कुछ भी संभव है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि हम प्रयास करना छोड़ दें। तुम हमारी मुखिया हो, मैंने तुम्हें पूर्व में ही आने से मना किया था। अभी भी समय है, तुम वापस लौट जाओ। मैं अकेले ही यह कार्य कर लूँगा।”

एक ही श्वास में सब कुछ कहने के पश्चात इरा शांत हो गया। उसकी बातों का थिनला पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। *कुछ तथ्यों को उचित अनुचित के मापदंड पर नहीं नापा जा सकता।*

“मुझे क्षमा कर दो।” कुछ क्षणों पश्चात थिनला ने कहा, “तुम सत्य कह रहे हो। यही हमारा एकमात्र विकल्प है और मुझे विस्फोटक चुराने में कोई समस्या नहीं है। जब मायावी हम पर आक्रमण करते हैं, हमारा वध करते हैं और छोटे छोटे शिशुओं की बलि देते हैं, तब तो यह नगरवासी हमारी रक्षा के लिए नहीं आते। ऐसे व्यक्तियों से यदि हम थोड़ी सी वस्तु चुरा लेंगे तो हम कुछ भी अनुचित नहीं करेंगे।”

इरा के मुख पर मुस्कान आ गयी। “यहाँ से कुछ दूर पश्चात ही तौजंबन का मुख्य हाट आरंभ हो जायेगा। वहाँ रात्रि के समय भी पर्याप्त मनुष्य दिखाई देंगे। हमें उनके मध्य से चलकर जाना होगा। हमें ऐसा व्यवहार करना है कि हम साधारण व्यापारी लगें, इस कारण कृपया उनके मध्य अपने मुख पर इतने गंभीर भाव न रखना। हमें बिना किसी समस्या के उस भंडारघर के निकट पहुँचना है जहाँ विस्फोटक सामग्री रखी होगी, क्योंकि मेरा अनुमान है कि लौटते समय हम इतनी सरलता से यहाँ नहीं पहुँच पायेंगे।”

“ठीक है, ठीक है।” थिनला ने कहा, “मैं समझ गयी। पूर्ण रुप से समझ गयी। अब शीघ्र ही बढ़ो।”

दोनों पुनः बढ़ गए। एक लंबी यात्रा कर तौजंबन आने के कारण वह थके हुए थे, परंतु वन से आने वाली शीतल वायु उनके थकान को मिटा रही थी।

“यदि मैं अपनी कुल्हाड़ी ला पाता तो मैं स्वयं को इतना असुरक्षित नहीं अनुभव करता।” इरा ने कहा।

“अब मूर्खतापूर्ण बातें तुमने आरंभ कर दी।” थिनला ने कहा, “यदि तुम कुल्हाड़ी लेकर हाट में घूमोगे तो किसी को भी संदेह हो जायेगा कि तुम साधारण व्यापारी नहीं हो।”

इरा धीरे से हँस पड़ा और बोला, “मेरा मानना है कि दो गंभीर व्यक्ति एक साथ अच्छे नहीं दिखते, इसी कारण उनमें से किसी एक को थोड़े थोड़े अंतराल पर कुछ मूर्खतापूर्ण बातें अवश्य करनी चाहिए।”

तौजंबन के मुख्य हाट को सरलता से पार कर इरा और थिनला एक बार पुनः नगर के दूसरे शांत भाग में पहुँच गए थे। तौजंबन के इस भाग में विशाल भंडारगृह बनाये गये थे जहाँ निर्माणशाला में बनने वाले अस्त्र शस्त्र रखे जाते थे।

“वह नीले रंग का विशाल भवन देख रही हो जिसके द्वार लोहे द्वारा निर्मित हैं, वही हमारा लक्ष्य है।” इरा ने एक भवन की ओर संकेत करते हुए कहा।

इस क्षण दोनों एक वृक्ष की ओट में खड़े थे।

“उसमें पर्याप्त मात्रा में विस्फोटक पदार्थ रखे होंगे?” थिनला ने पूछा जो प्रथम बार नगर में आई थी। वह वनवासी थी और उनके जीवन यापन की प्रत्येक वस्तु वन में ही उपस्थित थी। परंतु यदि उन्हें एकद्वीप में कोई कार्य पड़ता था तो नगर में आने का कार्य मुख्यतः इरा ही करता था।

"वहाँ इतने विस्फोटक हैं कि सौ व्यक्ति भी उन्हें नहीं उठा सकते।" इरा ने मुस्कराते हुए कहा। "परंतु हमें मात्र उतने ही विस्फोटक चाहिए जितने हम उठाकर वन की सीमा तक पहुँच पायें।"

"परंतु यदि इन विशाल भवनों में इतनी मूल्यवान वस्तुएँ रखी हैं तो यहाँ प्रहरी क्यों नहीं हैं?"

"क्योंकि इन भवनों के द्वार पर ताले लगाये गए हैं।" इरा ने कहा, "परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि यहाँ निकट कोई मनुष्य नहीं होगा। इस क्षेत्र का रात्रि प्रहरी भी निकट ही कहीं होगा।"

"परंतु हम इन तालों को कैसे तोड़ेंगे?" थिनला ने किसी जिज्ञासु बालक की भांति पूछा।

इरा वृक्ष की ओट से निकल कर उस विशाल भंडारगृह की ओर बढ़ गया। "इसका उत्तर बताने से सरल है उसे स्वयं देखना।"

थिनला भी उसके पीछे बढ़ गयी।

इरा ने भूमि पर इधर उधर देखा तो उसे सरलता से एक लोहे ही मोटी छड़ मिल गयी। अंततः उस नगर में लोहे की वस्तुओं का ही निर्माण किया जाता था। उस छड़ को लिए हुए इरा उस भवन के द्वार पर पहुँचा। उसने अपने अनुभवों से रात्रि के ऐसे समय का चयन किया था जब उस भाग में कोई प्रहरी नहीं रहता, परंतु किसी अज्ञात भय से उसका हृदय भी आशंकित था। वह नगर के विषय में कितना भी जान जाये, था तो वह वनवासी ही।

उसने उस लंबे छड़ का एक सिरा ताले की कुंडी में फँसाया और दूसरे सिरे को अपने हाथों में पकड़ा। उसके बाद उसने एक बार पुनः दृष्टि घुमाकर चारों ओर देखा। उसे एक बार पुनः कोई अन्य नहीं दिखाई दिया।

पूर्णतः आश्वस्त होने पर उसने लोहे की छड़ पर दबाव बढ़ाया। लोहे की छड़ मुड़ने लगी, परंतु ताले की कुंडी नहीं टूटी। उसने एक गहरी श्वास ली और एक बार पुनः छड़ को दबाया। इस बार उसने अपने शरीर का संपूर्ण बल अपने हाथों के द्वारा छड़ पर लगा दिया। ताले की कुंडी *खट* की ध्वनि करती हुई टूट गयी।

इरा ने छड़ को भूमि पर फेंक दिया और थिनला की ओर मुड़ा, "हमें शीघ्रता करनी होगी। रात्रि के इस शांत वातावरण में यह ध्वनि दूर तक सुनाई दी होगी। कोई व्यक्ति अथवा प्रहरी यहाँ आ सकता है।"

थिनला ने मात्र सहमति में सिर हिलाया।

इरा ने द्वार से टूटे हुए ताले को निकाल फेंका और द्वार खोला। लोहे के द्वार ने भी ध्वनि उत्पन्न की। *क्षीण ध्वनि, परंतु शांत वातावरण में दूर तक सुनाई पड़ने वाली।*

"ध्यान से।" इरा ने प्रवेश करते हुए कहा। उनके पास प्रकाश का कोई स्रोत नहीं था और भूमि पर धातु के टुकड़े गिरे हुए थे। थिनला उसके साथ ही चल रही थी और पूरा ध्यान लगाकर सामने देखने का प्रयास कर रही थी। परंतु दो हाथ की दूरी के पश्चात कुछ भी देखना असंभव था।

"यहाँ! हमें जो चाहिए वह यहाँ है।" इरा ने एक ओर संकेत किया परंतु उससे पूर्व ही थिनला उस ओर बढ़ चुकी थी। भंडारगृह की एक दीवार के निकट कई विस्फोटक पोटलियाँ रखी हुई थीं। एक के ऊपर एक रखी उन पोटलियों की ऊँचाई छत तक पहुँच रही थी।

इरा ने एक बोरे में ग्यारह पोटलियाँ और थिनला ने एक में नौ पोटलियाँ भरीं और दोनों बाहर आ गए। बाहर अभी भी शांति थी।

"हम एक बार पुनः हाट से होकर जायेंगे। परंतु अंतर यह रहेगा कि हमारे पास इस बार भारी वस्तुएँ रहेंगी। परंतु उससे भी अधिक समस्या नहीं होगी, क्योंकि यह व्यापारिक नगर है और यहाँ लोग ऐसी वस्तुएँ लेकर घूमते रहते हैं।" इरा ने धीमे स्वर में कहा। "परंतु जैसा कि मैंने पहले भी कहा था, हमें हाट से गुजरते समय सामान्य व्यवहार रखना है।"

थिनला ने पुनः सहमति में अपना सिर हिलाया। वह कौतूहल भरी दृष्टि से इरा को सब करते हुए देख रही थी। वही इरा जो उसे मुखिया कहता था, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं था कि नगर के विषय में उसे कहीं अधिक ज्ञान था।

दोनों सामान्य गति से चलते हुए उस स्थान से बाहर आ गए।

उनके वहाँ से निकलने के कुछ ही क्षणों पश्चात चार व्यक्ति उस खुले द्वार वाले भंडारगृह के समक्ष पहुँचे। उन्होंने आपस में कुछ बातें की, अपनी कमर में लटक रही तलवार अपने हाथों में ले ली और उस भंडारगृह में प्रवेश कर गए।

"इस नगर में कितनी ऊष्मा है।" थिनला ने धीरे से कहा, मानो स्वयं से ही कह रही हो, "रात्रि के समय भी शरीर स्वेद से भीग जा रहा।" वह वनों में वृक्षों की छाया के निकट रहने की अभ्यस्त थी, इसी कारण तौजंबन की ऊष्मा उसके लिए असहनीय थी। जिस स्थान से उन्होंने नगर में प्रवेश किया था, उस स्थान पर भी वन की निकटता के कारण शीतलता थी, परंतु मुख्य नगर की ऊष्मा तो सामान्य से बहुत अधिक थी।

"यह ऊष्मा प्राकृतिक नहीं कृत्रिम है, जिसका कारण नगर में बनी वह विशाल भट्टियाँ हैं जो आठों प्रहर जलती रहती हैं।" इरा धीरे से मुस्कराया। अभी तक मार्ग में उन्हें कोई समस्या नहीं हुई थी और वह शीघ्र ही वन की सीमा के निकट पहुँचने वाले थे। वन में थोड़े भीतर उसने अपना अश्व बाँधा हुआ था जहाँ दीकट भी एक अश्ववाहन के साथ उपस्थित था। उसी की सहायता से वह वनों के मध्य से होते हुए ही सर्पत वन से यहाँ आये थे। वह मार्ग इतना दुर्गम था कि सामान्य व्यक्ति उस मार्ग से अधिक दूर नहीं जा सकते थे, परंतु उन वन में रहने वाले वनवासियों के लिए वह मार्ग कोई समस्या नहीं था।

"ए! रुको।" दोनों के सुखद स्वप्न को तोड़ता हुआ वह स्वर उनके कानों में गूँजा। न चाहते हुए भी दोनों अपने स्थान पर रुक गए, जो उनकी भूल थी। थिनला ने पीछे मुड़ कर देखा तो दो तलवार धारकों को अपनी ओर देखता हुआ पाया।

उसने स्थिति का आकलन किया। रात्रि के समय हाट में भीड़ बहुत कम थी, भारी वस्तुएँ लेकर अधिक दूर भागना संभव नहीं था; जिसका अर्थ था किसी भी दशा में वह दौड़कर उनको पीछे नहीं छोड़ सकते थे। मुख्य हाट में द्वंद्व करना भी उचित नहीं था, थिनला ने सोचा। दोनों प्रहरी सशस्त्र थे, परंतु वह और इरा उन्हें पराजित कर सकते थे। परंतु उस दशा में नगर के अन्य लोग भी उस स्थान पर एकत्र हो जाते और उन्हें सँभालना कठिन हो जाता।

दोनों मार्ग के बगल में स्थित गली में प्रवेश कर गए। *उन्हें किसी भी दशा में किसी नगर वासी से टकराव टालना था।*

"अपने पैरों की गति बढ़ा दो," इरा ने थिनला से कहा, "नगर में गलियों का जाल फैला हुआ है। इसकी संभावना बहुत कम है कि वह पुनः हमें ढूँढ सकेंगे।"

थिनला ने वैसा ही किया। दोनों लगभग दौड़ते हुए एक गली से दूसरी गली में प्रवेश करते हुए अंततः नगर सीमा से बाहर निकल आये। अब वन अधिक दूर नहीं था। दोनों ने अपनी अपनी बोरी नीचे रखी और खड़े होकर सुस्ताने लगे।

अंततः इरा का अनुमान सत्य सिद्ध हुआ था। वह उन्हें नहीं ढूँढ पाए थे। इरा ने मुस्कुराकर थिनला को देखा, मानो कह रहा हो, *'देखा! मैंने कहा था न कि वह हमें नहीं ढूँढ सकेंगे।'*

थिनला पुनः अपनी बोरी उठाने के लिए झुकी ही थी कि एक बाण उसके पैरों के निकट आकर धँसा। वह चौंककर एक पग पीछे बढ़ गयी। इरा भी सजग होकर अपने स्थान से हट गया। उसने उस दिशा में देखा जहाँ से बाण आया था।

उसे पाँच व्यक्ति दिखाई दिए, जिनमें से एक के हाथ में धनुष था और शेष के हाथों में तलवार। वह उन्हीं की ओर बढ़ रहे थे। उसका हाथ स्वतः ही उसकी कमर पर चला गया जहाँ वह अपनी कुल्हाड़ी रखता था, परंतु उसे स्मरण आया कि उन्हें तो वह दीकट के पास छोड़ आया है। *वनदेवी कृपा करें,* वह मन ही मन क्रोधवश झुंझलाया।

“अब द्वंद्व किये बिना यहाँ से निकलना संभव नहीं है।” उसने थिनला से कहा।

“ज्ञात है मुझे। परंतु ध्यान रहे, हमें इन्हें मात्र घायल करना है, मृत नहीं।” थिनला धीमे स्वर में बोली। वह निश्चिंत थी कि अंततः वह नगर के शांत भाग में पहुँच चुके हैं, जहाँ कोई अन्य उनके मध्य नहीं आयेगा।

पाँचों उनके निकट पहुँचे। जिस प्रहरी के हाथों में धनुष था उसने प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाया हुआ था।

उनमें एक व्यक्ति ने दोनों बोरियों को देखा और इरा और थिनला से बोला, “इन्हें लौटा दो और हमारे साथ नगर पाल के पास चलो। हम तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचायेंगे।”

“संभव नहीं।” इरा ने अपनी बोरी अपने दाहिने हाथ में उठा ली। “हम इन्हें नहीं लौटा सकते।”

वह व्यक्ति शांत रहा। इरा ने अनुमान लगाया कि वह अवश्य ही उन पाँचों में वरिष्ठ होगा, इसीलिए वही उनसे बातें कर रहा था। उस व्यक्ति ने एक बार पुनः इरा और थिनला को और दोनों बोरियों को देखा।

“क्या तुम्हें नहीं दिखता कि यहाँ दोनों पलड़े समान नहीं हैं। क्या मात्र इतनी सी वस्तु के लिए तुम मरना चाहते हो?” उसने कहा।

“नहीं। इस क्षण मरने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।” इरा ने धीरे से कहा। उसने पाँचों व्यक्तियों को देखा। *बाएँ से दायें।* दो तलवार धारक, एक धनुर्धर और फिर पुनः दो तलवार धारक। उसने अपने दायें हाथ में ली हुई भारी बोरी को विद्युत गति से घुमाया। दो बाएँ तलवार धारक तत्क्षण भूमि पर गिर पड़े। मध्य में खड़े धनुर्धर के हाथों से धनुष छूटकर भूमि पर गिर गया। दायीं ओर खड़े दोनों तलवार धारक उस प्रहार से बच गए।

उन दो में से एक वरिष्ठ प्रहरी बिंधक भी था।

थिनला ने तत्क्षण नीचे गिरे धनुष को पैरों से तोड़ दिया और भूमि पर गिरे तलवार धारकों की दोनों तलवार उठा ली। उसने एक तलवार इरा को दी और दूसरी स्वयं ले ली।

थिनला के होंठों पर मुस्कान आ गयी। “अब दोनों पलड़े समान हैं।” उसने बिंधक से कहा, जिसे अब तक यह समझ नहीं आया था कि पिछले कुछ क्षणों में वास्तव में हुआ क्या था।

भूमि पर गिरे दोनों तलवार धारक भी अब खड़े हो गए थे, परंतु इरा का प्रहार प्रत्यक्ष रूप से झेलने के कारण उनके सिर में भयानक पीड़ा हो रही थी। धनुर्धर भी जड़ अवस्था में अपने स्थान पर ही खड़ा था।

वास्तव में अब द्वंद्व मात्र चार तलवार धारकों के मध्य था।

वरिष्ठ प्रहरी बिंधक मात्र पद में ही अन्य चारों से श्रेष्ठ नहीं था, अपितु उसका सौष्ठव भी उनसे श्रेष्ठ था। थिनला की मुस्कान उसके दंभ को चुनौती दे रही थी। उसने थिनला पर प्रथम प्रहार किया।

उधर इरा ने दूसरे प्रहरी से द्वंद्व आरंभ कर दिया जिसमें उसे कई समस्याएँ आ रही थीं। प्रथम उसे तलवार चलाने का अधिक अनुभव नहीं था। यदि उसकी कुल्हाड़ी उसके हाथों में होती तो वह प्रहरी एक क्षण भी उसके समक्ष नहीं टिक सकता था।

द्वितीय, उससे लड़ रहे प्रहरी को भी तलवार चलाने का पर्याप्त अनुभव था। वह सरलता से उसके सभी प्रहारों को भाँप जा रहा था।

तृतीय, इरा मात्र अपने प्रतिद्वंदी के हाथों से तलवार गिराने का प्रयत्न कर रहा था, जबकि उसका प्रतिद्वंदी उसे मारने का प्रयास कर रहा था।

इरा अभी अपना संपूर्ण ध्यान एकत्र कर अपना बचाव कर रहा था कि उसके सिर पर एक तीव्र प्रहार हुआ। तलवार उसके हाथों से छूटकर गिर गयी और उसका हाथ स्वतः ही उसके सिर पर चला गया जहाँ अब एक गूमड़ निकल आया था। उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि धनुर्धर प्रहरी ने भूमि पर गिरे टूटे धनुष को उठाकर उसके सिर पर वार किया है।

वह मुस्कुरा रहा था, मानो कह रहा हो, *'तुमने भी तो छल से प्रहार किया था।'*

इरा से द्वंद्व कर रहे प्रहरी ने तत्क्षण इरा के गर्दन पर अपनी तलवार रख दी और कुछ दूरी पर लड़ रही थिनला से कहा, “युवती! अपने शस्त्र फेंक दो।”

थिनला के पास कोई अन्य विकल्प शेष नहीं था। वह अपने प्रतिद्वंदी प्रहरी पर भारी पड़ रही थी और संभवतः अगले कुछ प्रहारों में वह उसे निःशस्त्र करने में सफल भी हो जाती।

परंतु यहाँ समीकरण पुनः बदल चुके थे। उसने तलवार की मूठ पर से अपनी पकड़ ढीली की और उसे अपने हाथों से गिर जाने दिया। प्रहरियों के हाथों पकड़े जाने का अर्थ था नगर कारावास में जाना। वह कितने भी प्रयास करते उन्हें सरलता से मुक्ति नहीं मिलने वाली थी। उसकी आँखों के समक्ष उसके संभावित भविष्य के कुछ दृश्य घूम गये।

उसे अपने ग्राम का स्मरण हो आया जहाँ सभी उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। वह उनकी मुखिया थी और सभी ग्रामवासी मायावियों की समस्या को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए उससे आस लगाये हुए थे।

तभी एक मुष्टि प्रहार उसके मुख से टकराया और थिनला पुनः वर्तमान में आ गयी। प्रहार इतना तीव्र था कि उसके जबड़े हिल गए।

“जब समक्ष बिंधक खड़ा हो तो पलड़ा कभी भी समान नहीं रहता।” थिनला ने अपने प्रतिद्वंदी को देखा जिसने अपनी तलवार अपने कमर में रख ली थी। थिनला के कुछ समझ पाने से पूर्व बिंधक ने उसपर दूसरा मुष्टि प्रहार किया।

एक बार पुनः उसे स्वयं के जबड़े हिलते हुए प्रतीत हुए।

“कायर!” इरा चीखा, “यदि साहस है तो मुझसे मल्ल युद्ध कर।” वह आगे बढ़ा परंतु उसको बंधक बनाये हुए तलवार धारक प्रहरी ने उसके गर्दन में अपनी तलवार थोड़ी सी धँसा दी। रक्त की कुछ बूँदें उसके गर्दन पर उभर आयीं और उसे अपने पग रोक लेने पड़े।

बिंधक ने इरा के क्रियाकलापों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। उसने अपने पैरों से थिनला के उदर पर प्रहार किया। वह भूमि पर गिर पड़ी।

“बिंधक।” इस बार धनुर्धर ने उच्च स्वर में कहा, “हमें इन दोनों को नगर पाल के पास ले जाना है।”

“अवश्य!” बिंधक ने उसकी दिशा में देखे बिना उत्तर दिया, “यह दोनों वहीं जायेंगे। परंतु जीवित अथवा मृत, इसके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।”

“परंतु...” धनुर्धर ने पुनः कुछ कहना चाहा, परंतु बिंधक ने घूरकर उसे देखा। उसके आग्नेय नेत्रों को देख धनुर्धर शांत हो गया।

बिंधक पुनः थिनला की ओर मुड़ा। उसके पिछले प्रहार के कारण थिनला के उदर में भयानक पीड़ा हो रही थी। उसकी आँखों में अश्रु आ गए।

बिंधक को संभवतः यह देख आनंद आ रहा था क्योंकि उसके मुख पर अब मुस्कान आ गयी थी। उसने एक और प्रहार थिनला के उदर पर किया।

इरा ने पुनः अपने स्थान से बढ़ने का प्रयास किया तो उसके पीछे खड़े प्रहरी ने तलवार की मूठ से उसके सिर पर प्रहार किया। इरा कसमसा कर रह गया। उसकी आँखों के समक्ष एक विक्षिप्त मनुष्य थिनला को मार रहा था और वह कुछ कर नहीं सकता था।

इस बार बिंधक ने इरा को देखा और उसकी असहायता देख उसके आनंद की मात्रा और भी बढ़ गयी। वह थिनला पर अगला प्रहार करने ही वाला था कि एक कटार उसके बाँह में आकर धँस गयी। इस अकस्मात प्रहार से उसके मुख से एक कराह निकल गयी। *किसी ने कुछ दूरी से उसपर कटार फेंक कर प्रहार किया था।*

परंतु किसने?

स्वाभाविक रूप से सबकी दृष्टि उस ओर घूम गयी जिधर से वह कटार आया था।

वहाँ एक अन्य युवती खड़ी थी। इरा, थिनला और वह प्रहरी भी उसे पहचान नहीं पा रहे थे।

परंतु जिस प्रकार से वह बिंधक को घूर रही थी, उससे यह स्पष्ट था कि उसे बिंधक द्वारा थिनला को मारा जाना अच्छा नहीं लग रहा था।

वह कनिका थी।

अस्त्र निर्माणशाला में पाहन के वध के पश्चात कनिका अभी भी तौजंबन में ही थी। वह एक दिन पूर्व की बात थी, और कनिका ने निर्णय किया था कि वह उत्तराँचल राजधानी की ओर बढ़ने से पूर्व कुछ दिन तौजंबन में ही प्रतीक्षा करेगी। पाहन के साथ आये छः सैनिकों में से कुछ जीवित थे और इसकी पूर्ण संभावना थी कि वह उसे अभी भी ढूँढ रहे हो सकते थे।

तौजंबन से उत्तराँचल जाने के लिए एक ही मुख्य मार्ग था, परंतु कनिका ने विचार किया था कि यदि अभी भी वहाँ जाँच हो रही होगी तो वह वनों के मार्ग से जाएगी।

इसके लिए उसे प्रतीक्षा करनी थी और उतने समय में किसी की दृष्टि में नहीं आना था। अर्थात उसे कुछ दिनों के लिए तौजंबन में ही छुप कर रहना था। और इस कार्य के लिए उसने तौजंबन की पूर्वी सीमा का चयन किया था। तौजंबन की पूर्वी सीमा वनों से सटी हुई थी, जिसके कारण नगर के इस भाग में प्रायः कोई नहीं आता था। यद्यपि कभी कभी वन्य हिंसक पशु भी वन से नगर के उस भाग में आ जाते थे, परंतु उसे इतना संकट मोल लेना ही था।

उसके पास कोई अन्य उत्तम विकल्प नहीं था।

जब बिंधक एवं अन्य चार प्रहरियों ने इरा और थिनला पर आक्रमण किया, तब वह निकट ही थी। वह छिपकर सब कुछ देख रही थी, हालाँकि उनके मध्य होने वाला वार्तालाप उसे सुनाई नहीं पड़ रहा था।

यह उनका आपस का विवाद है और मुझे इसमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं, कनिका ने सोचा। सर्वप्रथम तो उसे प्रतीत हुआ कि इरा और थिनला सरलता से बंदी बना लिए जायेंगे परंतु तभी इरा ने उन प्रहरियों पर आक्रमण कर दिया। वह आक्रमण इतना अकस्मात था कि एक ही क्षण में दोनों पक्ष समान हो गए।

वह दोनों वनवासी अत्यंत चपलता से लड़ रहे थे परंतु धनुर्धर द्वारा इरा पर पीछे से आक्रमण करने के कारण एक बार पुनः स्थिति पलट गयी।

उस समय भी कनिका ने अपने स्थान पर ही छिपे रहना उचित समझा। उसके लिए अपनी पहचान को भी गुप्त बनाये रखना आवश्यक था।

परंतु जब बिंधक किसी विक्षिप्त की भांति भूमि पर गिरी थिनला को मारने लगा तब कनिका का धैर्य भी समाप्त हो गया।

दोनों पक्षों में क्या विवाद था उसे इसका तनिक भी अंदेशा नहीं था, परंतु वह स्वयं एक स्त्री होकर एक दूसरी स्त्री को इस भांति निर्दयता से पिटते हुए नहीं देख सकती थी।

उसी क्षण उसने अपने स्थान से बाहर आने का निर्णय लिया।

इरा, थिनला, बिंधक और अन्य चार प्रहरियों ने अपनी ओर बढ़ती कनिका को देखा। उसकी कमर से एक तलवार लटक रही थी परंतु उसने उसे अपने हाथों में लेने का प्रयत्न नहीं किया था। उस अज्ञात स्त्री का आत्मविश्वास देख कर ही बिंधक को यह ज्ञात हो गया कि वह स्त्री जो कोई भी थी उससे द्वंद्व करना सरल नहीं होने वाला था।

बिंधक ने अपनी तलवार हाथों में ले ली और कनिका की ओर मुड़ा। *भूमि पर गिरी थिनला कुछ समय तक नहीं सँभलने वाली थी।*

इरा अभी भी एक प्रहरी की तलवार की नोक पर था। बिंधक के अतिरिक्त किसी अन्य प्रहरी ने कनिका की ओर बढ़ने का प्रयत्न नहीं किया।

बिंधक के निकट पहुँच कनिका ने भी अपनी तलवार निकाल ली और उसे क्रोधित नेत्रों से घूरने लगी।

“यह दोनों चोर हैं। तुम्हें हमारे मध्य पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।” बिंधक ने भी कनिका की आँखों में घूरते हुए कहा। उसके लिए यह ज्ञात करना कठिन नहीं था कि उसके समक्ष खड़ी स्त्री क्या चाहती थी।

कनिका ने दोनों बोरियों को देखा और कहा, “मात्र इतनी वस्तुओं के लिए दो निःशस्त्र व्यक्तियों को इस प्रकार मारना उचित नहीं। यदि इन्होंने चोरी की है तो इन्हें नियमों के अनुसार दंड दो।”

“नियम और दंड के विषय में तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं।” बिंधक ने शांत स्वर में कहा, “मैं तुम्हें विकल्प देता हूँ कि तुम इसी क्षण वापस लौट जाओ और मैं तुम्हें जीवित छोड़ दूँगा।”

“मैं तुम्हें दूसरा विकल्प देती हूँ।” कनिका ने कहा, “इन दोनों को मुक्त कर दो; इस घटना को भूल जाओ और मैं तुम्हें जीवित छोड़ दूँगी।”

बिंधक को दूसरा विकल्प पसंद नहीं आया। उसने कनिका पर प्रहार किया। कनिका ने अपने शरीर को थोड़ा सा पीछे किया और सरलता से उसके प्रहार से बच गयी।

कनिका ने अपनी तलवार का पहला प्रहार किया जो बिंधक की बाँह पर घाव बनाता हुआ निकल गया। क्रोध से फुंकारते बिंधक ने कनिका के उदर पर प्रहार किया जिसे कनिका ने अपनी तलवार से मध्य में ही रोक दिया। उसके पश्चात उसने अपने दूसरे हाथ से बिंधक की कलाई पकड़ ली और उसके हाथ को मरोड़ने लगी। परंतु बिंधक ने अपनी तलवार को नहीं छोड़ा। यद्यपि कनिका कद और भार में बिंधक से कम थी, परंतु इसके पश्चात भी वह कनिका की पकड़ से अपनी कलाइयाँ नहीं छुड़ा पा रहा था।

कनिका ने अपने जबड़े भींचे और कुछ और बल लगाकर उसकी कलाई मोड़ी, बिंधक दोनों हाथों से उसे छुड़ाने लगा। कनिका ने पास अवसर था बिंधक को समाप्त करने का, परंतु इसके विपरीत उसने मात्र अपनी तलवार की मूठ से उसके सिर पर प्रहार किया।

तलवार उसके हाथ से छूट गयी। कनिका ने उसकी कलाई छोड़ दी। वह अपने पैरों पर स्वयं का भार नहीं संभाल पाया और घुटनों के बल भूमि पर बैठ गया।

कनिका उस सैनिक की ओर मुड़ी जिसने अपनी तलवार की नोक पर इरा को रखा हुआ था। बिंधक की अवस्था देख वह पहले ही भयभीत था, कनिका को अपनी ओर घूरता हुआ देख उसने तत्क्षण अपनी तलवार हटा ली और नगर की ओर दौड़ गया।

अन्य तीन प्रहरियों ने भी वैसा ही किया।

इरा भागकर थिनला के निकट पहुँचा जिसकी अवस्था अब सामान्य लग रही थी।

कनिका चारों प्रहरियों को नगर की ओर भागते हुए देख रही थी जब उसे थिनला का स्वर सुनाई दिया। “बचो!” थिनला चीखी।

कनिका मुड़ी, और ठीक उचित समय पर उसे समझ आ गया कि थिनला क्यों चीखी थी। बिंधक अपने स्थान पर खड़ा था और वह तलवार से उसपर प्राणघातक प्रहार करने वाला था। कनिका एक पग पीछे हुई और लड़खड़ाते हुए उसके प्रहार से बच गयी। इससे पूर्व कि वह पुनः अपनी तलवार निकाल पाती, बिंधक ने अपना तलवार वाला हाथ मोड़ा और कनिका के सिर पर उसकी मूठ से प्रहार किया। कनिका किसी कटे वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ी।

बिंधक ने मुस्कुरा कर उसे गिरते हुए देखा। *सिर पर प्रहार के प्रतिदान में सिर पर प्रहार।* रक्त से सने मुख के साथ वह कोई विक्षिप्त प्रतीत हो रहा था।

परंतु उसकी वह मुस्कान अधिक समय तक नहीं रह सकी। थिनला ने भूमि पर गिरी एक तलवार उठाई और उसकी पीठ में घुसा दी। तलवार उसके हृदय को भेदते हुए उसके वक्ष से निकल गयी। उसके होंठों से रक्त की एक धारा निकली और वह भूमि पर गिर पड़ा, परंतु उससे पूर्व उसकी जीवात्मा उसका शरीर छोड़ चुकी थी।

इरा और थिनला दौड़ते हुए कनिका के निकट पहुँचे जो भूमि पर बेसुध पड़ी थी।

“हमें शीघ्रता करनी होगी, भागे हुए प्रहरी पुनः लौट सकते हैं। और इस बार वह अधिक सैनिकों के साथ आ सकते हैं।” इरा ने थिनला से कहा।

“यह युवती अभी भी जीवित है, परंतु इसे उपचार की आवश्यकता है।” थिनला ने उसकी बातों पर ध्यान न देते हुए कहा। बिंधक ने उसके सिर पर बहुत तीव्र प्रहार किया था जिसके कारण उसका सिर फट गया था।

“यह नगर है। कोई न कोई इसे चिकित्सालय पहुँचा देगा।” इरा ने अधीरता से कहा।

“कौन? नगर के इस भाग में तो कोई नहीं आता। वैसे भी यह रात्रि का समय है।” थिनला बेसुध कनिका की कमर पट्टिका देख रही थी जिसमें एक पोटली बंधी हुई थी।

“संभवतः वह सैनिक ही लौट आयें। यदि वह हमें यहाँ देखेंगे तो सीधा कारागार में ही डालेंगे।” इरा बोला।

“और तुम्हें क्या लगता है वह इसके साथ क्या करेंगे? यहाँ इस प्रहरी का शव पड़ा हुआ। क्या वह इसकी चिकित्सा के विषय में सोचेंगे भी?” थिनला ने पोटली खोली। उसमें भोजन रखा था। “यह युवती संभवतः इस निर्जन स्थान पर भोजन करने आई थी। संभवतः इसका कोई नहीं। संभवतः यदि हमने इसे इसी स्थान पर छोड़ दिया तो प्रातःकाल तक यह जीवित ही न बचे।”

इरा ने दोनों हाथों से अपने सिर के बाल पकड़ लिए। “अरघ...! तो तुम्हीं बताओ हम क्या करें? इसे चिकित्सालय पहुँचायें? जहाँ के मार्ग में अवश्य ही हम बंधक बना लिए जायेंगे। उस दशा में इसके प्राण तो वैसे भी नहीं बचेंगे।” इरा बार बार नगर की ओर जाने वाले मार्ग को देख रहा था। वहाँ कोई नहीं था, परंतु उसे संदेह था कि किसी भी क्षण कई प्रहरी उस दिशा में दौड़ते हुए आ जायेंगे। “हमें इस क्षण अपने ग्राम को प्राथमिकता देनी है। इन विस्फोटक पदार्थों की सहायता से संभवतः हम मायावियों का सामना कर सकें।”

थिनला ने तत्क्षण कुछ नहीं कहा। वह अभी भी भूमि पर पड़ी युवती को ही देख रही थी। उसके सिर में लगे घाव से रक्त स्राव बंद हो चुका था, परंतु उसके कई प्रयासों के पश्चात भी वह युवती बेसुध ही थी। निश्चय ही उसके सिर में बहुत गहरा घाव लगा था।

थिनला ने देखा कि उस युवती के वस्त्र साधारण थे, परंतु वह कोई साधारण युवती नहीं प्रतीत हो रही थी। बेसुध होने के पश्चात भी उसके मुख पर एक दृढ़ता थी, एक संकल्प था।

आखिर कौन थी वह?

और उसने क्यों मेरी सहायता की।

वह उसे उस निर्जन स्थान पर मरने के लिए नहीं छोड़ सकती थी।

“हम इसे अपने ग्राम ले जायेंगे?” अंततः उसने कहा। *एकमात्र यही विकल्प शेष था।*

इरा ने थिनला को समझाने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु थिनला अपने निर्णय पर दृढ़ थी। इरा ने कोई प्रतिकार नहीं किया। अंततः वह उसकी मुखिया थी, वह उसे सुझाव तो दे सकता था, परंतु उसके निर्णयों पर प्रश्न नहीं उठा सकता था।

उसने बेसुध कनिका को अपने कंधे पर रखा और थिनला ने विस्फोटक की एक बोरी उठा ली। एक बोरी उन्हें उसी स्थान पर छोड़नी पड़ी। उसके पश्चात वह पैदल ही वन में बढ़ गए, जहाँ थोड़ी दूर पश्चात दीकट उपस्थित था।

दीकट जिस अश्व वाहन के साथ आया था वह अत्यंत छोटा और पतला था जिसका लाभ यह था कि उसे वन्य मार्ग से लाने में कोई कठिनाई नहीं आई थी। कनिका को उसी वाहन में लिटाया गया। तौजंबन आते समय इरा उसी वाहन में बैठ कर वहाँ आया था परंतु अब कनिका को लिटाने के पश्चात उसमें पर्याप्त स्थान शेष नहीं था। यह उनके लिए एक अनपेक्षित समस्या थी।

थिनला अपने अश्व के साथ आई थी।

“लगता है हम दोनों को इसी अश्व पर बैठकर जाना पड़ेगा।” इरा ने उस अश्व की पीठ सहलाते हुए कहा।

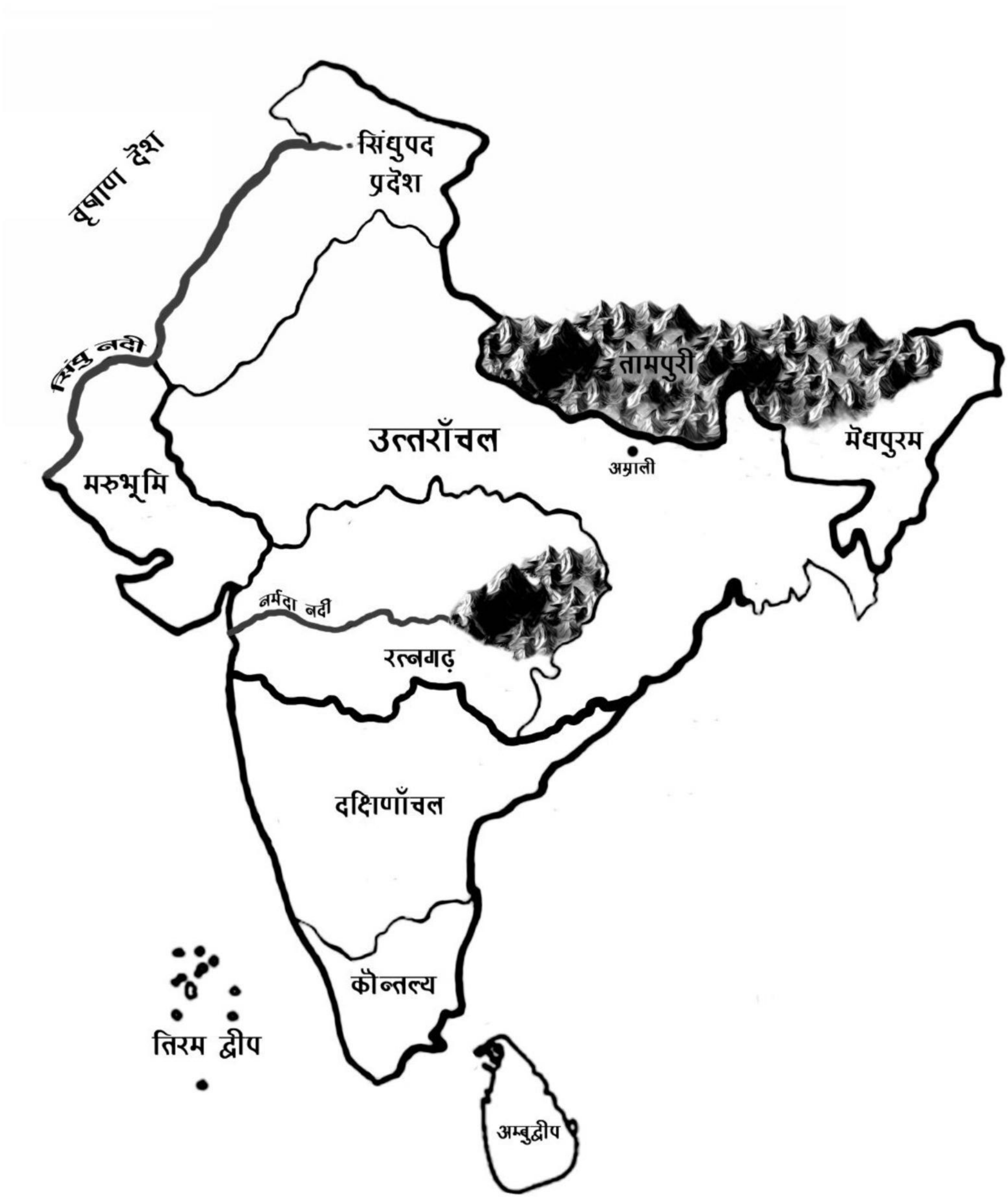
“मुझे कोई समस्या नहीं।” थिनला ने मुस्कराते हुए कहा।

दोनों अश्व पर बैठ गए और दीकट के अश्व वाहन के पीछे पीछे बढ़ने लगे।

“तुम्हें ज्ञात है न कि ग्राम तक पहुँचने में हमें पाँच छः प्रहर लग जायेंगे। वह युवती मार्ग में ही मृत हो सकती है।” इरा ने एक दीर्घ श्वास लेते हुए कहा।

“नहीं,” थिनला ने कहा, “मुझे लगता है वह स्त्री इतनी सरलता से नहीं मरने वाली।”

खंड 3


सिंधुपद
प्रदेश
कुषाण देश
सिंधु नदी
तामपुरी
उत्तराँचल
मेघपुरम
अम्राली
मरुभूमि
नर्मदा नदी
रत्नगढ़
दक्षिणाँचल
कौन्तल्य
तिरम द्वीप
अम्बुद्वीप

अध्याय 21
प्राचीर

प्रसान नगर की बाहरी सीमा पर निर्मित वह प्राचीर दूर से ही दिखाई पड़ती थी। वर्षों पूर्व जब प्रसान नगर में व्यापार का कार्य व्यापक रूप से नहीं फैला था, तब उस प्राचीर का निर्माण उत्तर पश्चिम दिशा से वर्षाणों को एकद्वीप में प्रवेश करने से रोकने के लिए किया गया था। वर्तमान में परिस्थितियाँ भिन्न थीं, एकद्वीप वासी वर्षाणों से व्यापार करने लगे थे। परंतु वह प्राचीर आज भी यथावत खड़ी थी। अभेद्य, अलंघ्य और विराट।

सिंधुपद से निकला दल उस प्राचीर के बाहर पहुँच चुका था जहाँ सिंधुपद की सेना ने पूर्व में ही शिविर लगाया हुआ था। अरिदमन ने सिंधुपद के सेनापति प्रतापसेन से वर्तमान स्थिति के विषय में चर्चा की और सभी उपसेनापतियों और दलपतियों की एक तत्कालीन सभा बुलवाई।

“वर्तमान में प्रसान नगर की क्या परिस्थितियाँ हैं?” अरिदमन ने अपने भारी स्वर में प्रतापसेन से पूछा।

प्रतापसेन अपने आसन पर व्यवस्थित हुआ। वह एक भूरी आँखों, गोल लंबी नाक और घनी मूँछों का स्वामी था। “कुछ दिनों पूर्व हमें प्रसान नगर के नगरपाल का संदेश प्राप्त हुआ था कि वहाँ छद्म वेश में रह रहे युवराज यशवर्धन की मृत्यु हो गयी है। उसी संदेश में यह भी लिखा हुआ था कि रात्रि में कई स्थानों पर वर्षाणों को हिंसा करते हुए देखा गया है और नगर पर आक्रमण की संभावना है।”

वह सभी घटनाओं को संक्षिप्त रूप से बता रहा था जिससे सभा में उपस्थित सभी लोग परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित हो जाएँ। “उस समय तक हमें उत्तराँचल की ओर से संदेश प्राप्त हो चुका था कि हम सज्ज रहें और संभवतः हमें दक्षिणांचल से युद्ध में सहायता के लिए जाना होगा। हमारे समक्ष विकट समस्या थी, हम किसी एक का चयन नहीं कर सकते थे। इसी कारण मैंने तत्क्षण आधी सेना प्रसान नगर भेज दी। परंतु उनके पहुँचने से पूर्व ही नगर का मुख्य द्वार बंद था। हमने अनुमान लगाया कि द्वार नगरपाल के अधिकार में होगा, परंतु हमारा अनुमान गलत था। नगर द्वार वर्षाणों के अधिकार में था। शीघ्र ही हमें पुनः प्रधानमंत्री महात्य का संदेश प्राप्त हुआ कि दक्षिणांचल से युद्ध जीता जा चुका है। अतः मैंने शेष सेना भी प्रसान नगर भेज दी।”

कुछ समय के लिए सभा में शांति छा गयी जिसे एक दलपति ने भंग किया, “परंतु वर्षाणों ने नगर को अधिकार में क्यों लिया है? वह नगर तो व्यापार के बिना अस्तित्वहीन है। द्वार बंद अर्थात व्यापार ठप्प।”

“संभवतः उनका लक्ष्य था असावधान सिंधुपद पर आक्रमण करना।” प्रतापसेन ने अपनी संभावना व्यक्त की, “परंतु हम पूर्व में ही किसी अन्य युद्ध के लिए सज्ज थे अतः हम उनके अनुमान से पूर्व ही यहाँ पहुँच गए। इसी कारण उन्हें प्रसान नगर में ही रुकना पड़ा।”

“परंतु यदि उनका लक्ष्य सिंधुपद तक बढ़ना था तो वह रुक क्यों गए?” एक दूसरे दलपति ने प्रश्न किया, “और उससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न वह अभी तक रुके क्यों हैं? वह आगे बढ़कर हमसे युद्ध क्यों नहीं कर रहे?”

“वह प्रतीक्षा कर रहे हैं।” प्रतापसेन ने दलपति के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, “नगर के बाहर युद्ध हेतु सज्ज सेना को देख अवश्य ही उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ होगा कि वह हमसे युद्ध में विजयी नहीं हो सकते। मेरा एक अनुमान यह भी है कि उन्हें नगर के भीतर भी अनपेक्षित प्रतिरोध का सामना करना पड़ा होगा। इसी कारण हमसे युद्ध करने से पूर्व वह अतिरिक्त सैन्य बल की प्रतीक्षा या कुछ अतिरिक्त तैयारियाँ कर रहे हैं। इसके लिए उन्हें समय चाहिए जो इस प्राचीर के रूप में उन्हें सरलता से प्राप्त हो गया है।”

“इस समय हमारे पास क्या क्या विकल्प हैं?” अब तक शांति से सबकी बातें सुन रहे अरिदमन ने पूछा।

“प्राचीर पर सदैव प्रहरी विद्यमान रहते हैं, अतः प्राचीर पर चढ़ना असंभव है। नगर के भीतर की क्या स्थिति है इससे हम पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि सभी प्रसान वासी बंधक हैं। हमने वर्षाणों से वार्ता करने के कई प्रयास किये परंतु वह कोई उत्तर ही नहीं दे रहे।” प्रतापसेन ने एक क्षण रुककर कहा, “अब हमारे पास मात्र एक ही विकल्प शेष है, द्वार को बलपूर्वक तोड़ना। परंतु मुझे भय है कि कहीं इससे प्रसान वासियों का जीवन संकट में न पड़ जाये।”

“यह तो निश्चित है कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं और उसके पश्चात वह आक्रमण अवश्य करेंगे।” अरिदमन ने कहा, “परंतु यदि हमें अपना पक्ष भारी रखना है तो हमें उससे पूर्व ही कुछ करना होगा।”

“द्वार तोड़ना ही सर्वथा उचित विकल्प है।” चंद्रसेन ने वार्ता के मध्य हस्तक्षेप करते हुए कहा, “इसका आश्वासन कौन दे सकता है कि प्रसान वासी अब तक सुरक्षित होंगे। सत्य तो यही है कि यदि हमें अपना पक्ष दृढ़ रखना है तो नगर वासियों के विषय में भूलना होगा। हमें द्वार तोड़कर शीघ्रातिशीघ्र आक्रमण करना होगा।”

“मेरे अनुमान में यह उचित विकल्प नहीं है।” कौस्तुभ ने कहा जो ध्यानपूर्वक उन सभी की बातें सुन रहा था। “यदि इसकी तनिक भी संभावना है कि हमारे आक्रमण से प्रसान वासियों का जीवन संकट में पड़ सकता है तो हमें यह कार्य बहुत सोच समझ कर करना चाहिए।”

चंद्रसेन ने अपनी बात का प्रतिरोध करने वाले उस युवक को देखा। वह दलपतियों की पंक्ति में बैठा था। स्पष्ट था कि एक दलपति का सुझाव उसे पसंद नहीं आया था। “और यह हम किस प्रकार सुनिश्चित करें कि नगर वासियों की वास्तविक स्थिति क्या है?” चंद्रसेन ने व्यंग्यात्मक भाव से कौस्तुभ से पूछा।

“नगर के भीतर जाकर।” कौस्तुभ ने दृढ़ स्वर में कहा।

चंद्रसेन धीरे से हँसा और बोला, “संभवतः तुम भूल रहे हो कि नगर में जाने का मात्र एक ही मार्ग है, वह विशाल द्वार। उसके अतिरिक्त उस प्राचीर को लाँघना असंभव है।”

“मुझे भलीभांति ज्ञात है कि वह प्राचीर अलंघ्य है। परंतु यदि हम प्राचीर के ऊपर से नहीं जा सकते तो हमें प्राचीर के नीचे से जाने का मार्ग निर्मित करना होगा।।”

चंद्रसेन से कोई उत्तर देते हुए नहीं बना।

“क्या यह संभव है?” अरिदमन ने प्रतापसेन की ओर देखते हुए कहा।

“हाँ! मुझे इस साधारण तथ्य में कुछ भी असंभव नहीं दिखता।” प्रतापसेन ने कुछ विचार करते हुए कहा, “हमारे पास लिखित आँकड़े हैं कि प्राचीर कितनी चौड़ी है और उसकी नींव कितनी गहरी है। कुशल कारीगर एक या दो दिन में एक भूमिगत सुरंग का निर्माण कर सकते हैं।”

“परंतु... परंतु क्या वर्षाण हमें भूमिगत मार्ग बनाते हुए देखेंगे और कोई विरोध नहीं करेंगे?” चंद्रसेन ने प्रतिरोध भरे स्वर में कहा।

“मैंने ध्यान दिया है कि प्राचीर पर वर्षाण मात्र द्वार के निकट ही निगरानी करते हैं। प्राचीर इतनी लंबी है कि उसपर प्रत्येक स्थान पर निगरानी करना असंभव है। हम ऐसा स्थान ढूँढ सकते हैं जहाँ से छिपकर भूमिगत सुरंग का निर्माण करना सुविधाजनक हो।” प्रतापसेन ने कहा। उसे कौस्तुभ का यह उपाय उचित लग रहा था। उसका स्वयं का मत था कि किसी भी आक्रमण से पूर्व नगर के भीतर की स्थिति के विषय में ज्ञात होना चाहिए। “अधिक सावधानी के लिए हम मात्र रात्रि में ही यह कार्य करेंगे।”

“ऐसे किसी स्थान को ढूँढने के पश्चात हम प्राचीर को लाँघ क्यों नहीं सकते?” एक दलपति ने अपनी शंका प्रकट करते हुए कहा, “भूमिगत मार्ग बनाने की क्या आवश्यकता है?”

“क्योंकि प्राचीर का निर्माण करते समय यह सुनिश्चित किया गया था कि द्वार को सरलता से लाँघा न जा सके।” प्रतापसेन ने कहा, “वह प्राचीर प्राचीन एकद्वीप की वास्तुकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। वास्तुकारों ने ऐसी युक्ति लगायी है कि अनधिकृत चढ़ाई करते ही नगर में कई चयनित स्थानों पर घंटे बजने लगेंगे।”

“हमें यह भी ध्यान देना होगा कि भूमिगत सुरंग का दूसरा सिरा नगर में ऐसे स्थान पर खुले जहाँ किसी के होने की संभावना अत्यंत कम हो।” कौस्तुभ ने कहा।

प्रतापसेन ने सहमति में सिर हिलाया।

“परंतु नगर में जायेगा कौन?” चंद्रसेन ने कहा। उसे अभी भी यह योजना मूर्खतापूर्ण प्रतीत हो रही थी।

“अधिक लोग भूमिगत सुरंग के मार्ग से नहीं जा सकते।” अरिदमन ने कहा, “हमें कुछ ऐसे लोग चाहिए जो सरलता से प्रसान नगर में घुल मिल जाएँ।”

“मैं जा सकता हूँ।” प्रतापसेन ने कहा।

“नहीं।” अरिदमन ने नहीं में सिर हिलाते हुए कहा, “आप सिंधुपद के सेनापति हैं। प्रसान वासियों के साथ साथ अधिकांश वर्षाण भी आपको पहचानते होंगे।”

“हम किसी युवती को भेज सकते हैं।” सभा कक्ष के कोने में अभी तक शांत बैठी वसुधा बोली तो स्वतः ही सबकी दृष्टि उस ओर मुड़ गयी।

“नहीं।” किसी के कुछ कहने से पूर्व ही अरिदमन ने गंभीर स्वर में कहा। उन्हें ज्ञात था कि वसुधा स्वयं के विषय में ही बात कर रही थी।”

“परंतु क्यों?” वसुधा ने पुनः कहा, “एक युवती पर कोई संदेह नहीं करेगा। मैं इस कार्य के लिए तत्पर हूँ।”

“नहीं।” अरिदमन ने पुनः वही उत्तर दिया।

“हम इस कार्य के लिए किसी सैनिक को भेज सकते हैं।” अमोघ ने सुझाव दिया।

“नहीं। साधारण सैनिकों को इस कार्य का उत्तरदायित्व देना उचित नहीं।”

“मैं नगर में जा सकता हूँ।” कौस्तुभ ने सभा में सभी की ओर देखा। कुछ क्षणों पश्चात उसने पुनः कहा, अपने शब्दों पर अधिक बल देते हुए, “मैं यह कार्य करने को तत्पर हूँ।”

किसी ने कोई प्रतिकार नहीं किया। नगर में जाना साहसिक कार्य अवश्य था, परंतु कई दलपति इसे मूर्खतापूर्ण कार्य समझ रहे थे। उनमें से कोई भी वर्षाणों से भरे नगर में बिना सेना के छिपकर नहीं जाना चाहता था।

“उचित है।” अरिदमन ने सभा के मध्य छाई शांति को भंग करते हुए कहा। “कौस्तुभ के अतिरिक्त भी हमें कुछ अन्य लोग ढूँढने होंगे।”

“मैं यह कार्य करूँगी।” वसुधा ने एक बार और अपनी बात दुहराई।

अरिदमन ने उसे घूरा। *क्यों वसुधा बारंबार एक ही बात कह रही है।* “नहीं। आपका जाना उचित नहीं।” उसने अपनी वाणी को संयत रखते हुए वसुधा से कहा।

“परंतु क्यों?” अरिदमन के विपरीत वसुधा का स्वर तीव्र होता जा रहा था, “क्या मैं आपके इस निर्णय का कारण जान सकती हूँ?”

क्योंकि आप उत्तराँचल की राजकुमारी हैं। अरिदमन ने कहना चाहा परंतु उन्हें यह भी ज्ञात था कि वसुधा अवश्य ही उनके उत्तर का प्रतिउत्तर देने वाली थी।

अरिदमन को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि उससे पूर्व चंद्रसेन ने कहा, “आप नगर में इस कारण नहीं जा सकतीं क्योंकि आप उत्तराँचल की राजकुमारी हैं। इसी कारण आपका छिपकर जाना अनुचित है।”

“मैं यहाँ एक सैनिक के रुप में उपस्थित हूँ।” वसुधा ने बिना चंद्रसेन की दिशा में देखे ही उत्तर दिया। “उत्तराँचल की राजकुमारी का पद मैं उत्तराँचल में ही त्याग आई हूँ। मेरा भाई उन वर्षाणों के कारण मृत है और मैं शिविर में रुकने के स्थान पर नगर में जाना अधिक पसंद करूँगी।”

वसुधा एक क्षण के लिए रुकी। *युद्ध क्षेत्र में भावनाओं का स्थान नहीं होता,* उसके अंतर्मन ने उससे कहा। *उसे अपने तथ्य को समझाने के लिए तर्क का आश्रय लेना होगा।*

उसने दुबारा कहना आरंभ किया, इस बार अपनी वाणी को धीमा रखते हुए, “मैं पुनः कहना चाहूँगी कि एक युवती पर कोई संदेह नहीं करेगा। हमारा उद्देश्य है नगर में छिपकर जाना और नगर की वास्तविक स्थिति ज्ञात करना। और उचित यही होगा कि इस कार्य के लिए एक युवती को भी भेजा जाये।”

वसुधा ने अपना अंतिम प्रयास किया और शांत हो गयी। उसे प्रतीत हो रहा था कि अरिदमन कभी भी उसे आज्ञा नहीं देने वाले। *परंतु वह ऐसा क्यों कर रहे थे?* इसका उत्तर तो वसुधा को भी नहीं ज्ञात था। *क्या उसके पिता ने अरिदमन से इस विषय में कुछ कहा था?*

“आपकी बात पूर्णतः सत्य है राजकुमारी।” प्रतापसेन ने कहा, “यद्यपि ऐसे कार्यों के लिए प्रशिक्षित गुप्तचर ही उचित रहेंगे, परंतु हमारे अधिकांश गुप्तचर नगर में ही हैं। किसी अन्य गुप्तचर को ढूँढने का समय हमारे पास नहीं है। मुझे आपके नगर में जाने से कोई आपत्ति नहीं है।”

चंद्रसेन ने आश्चर्य से अपने भाई की ओर देखा।

वसुधा के मुख पर कृतज्ञता भरी एक क्षीण मुस्कान आ गयी। उसने अपनी दृष्टि अरिदमन की ओर घुमाई, मानो पूछ रही हो आपका अंतिम निर्णय क्या है?

अरिदमन ने अपनी आँखें बंद कीं और सहमति में सिर हिलाया। *यह भी अपने भाई यश की भांति हठी है।*

“आपने वसुधा की बातों से सहमति क्यों प्रकट की भैया?” चंद्रसेन ने अपने बड़े भाई से प्रश्न किया। सभा समाप्त होने के पश्चात दोनों भाई शिविर में एकांत में बातें कर रहे थे।

“तुम्हें क्या प्रतीत होता है? अन्य लोगों की असहमति प्राप्त होने पर वह नगर में नहीं जाती?” प्रतापसेन ने शांत स्वर में कहा, “स्वयं महाराज कीर्तिवर्धन भी उसे यहाँ आने से रोक नहीं पाये। वह हठी है और उसका तर्क भी उचित था।”

“कदाचित हम नगर में जाने के संकट को भूल रहे हैं जहाँ उसकी मृत्यु भी हो सकती है।” चंद्रसेन बोला।

प्रतापसेन ने अनभिज्ञता से अपने कंधे उचकाए। “उसे भी इस विषय में ज्ञात है। यह युद्ध है, यहाँ आने से पूर्व मृत्यु का भय पीछे छोड़ना पड़ता है।”

“परंतु क्या उसकी सुरक्षा हमारा दायित्व नहीं है?”

“नहीं,” प्रतापसेन ने उत्तर दिया। “युद्ध में किसी की सुरक्षा किसी का दायित्व नहीं। वसुधा ने स्वयं कहा है कि वह यहाँ एक सैनिक की भांति है, अर्थात वह सभी संकटों से अनभिज्ञ नहीं है। वह स्वयं की सुरक्षा में सक्षम है।”

प्रतापसेन ने अपने छोटे भाई की ओर ध्यान से देखा और बोला, “वैसे तुम वसुधा के विषय में कुछ अधिक ही चिंतित प्रतीत हो रहे हो।”

“अ... ऐसा कुछ नहीं है।” चंद्रसेन ने शीघ्रता से कहा, “मैं नगर में जाने वाले दोनों व्यक्तियों के प्रति चिंतित हूँ। मेरा आशय यह है कि यह योजना अत्यधिक संकटपूर्ण है।”

प्रतापसेन ने कुछ कहना चाहा, परंतु उसी समय एक सैनिक ने शिविर में प्रवेश की अनुमति माँगी।

“सेनापति! एक युवक है जो कहता है कि वह हमारी सहायता कर सकता है।” अभिवादन करने के पश्चात उस सैनिक ने कहा।

“कैसी सहायता?” प्रतापसेन ने अपनी भृकुटियों को वक्र करते हुए पूछा।

“वह कहता है कि वह प्राचीर की दूसरी ओर नगर के भीतर ऐसे स्थानों के विषय में बता सकता है जो अधिकांशतः निर्जन हैं। उस स्थान पर भूमिगत सुरंग का दूसरा सिरा बनाने पर किसी के द्वारा देखे जाने की संभावना नगण्य है।” सैनिक ने पूरी बात बताई।

“हूँ।” विचारों में डूबे हुए प्रतापसेन ने सहमति में अपना सिर हिलाया। उसने कुछ समय पूर्व ही सैनिकों से ऐसे स्थानों के विषय में ज्ञात करने को कहा था जहाँ से भूमिगत सुरंग का निर्माण करना सुविधाजनक होता। “कौन है वह युवक?” उसने सैनिक से पूछा।

“उसके अनुसार वह दूर एक नगर के गुरुकुल में व्यापार की शिक्षा प्राप्त कर रहा था। उसका शेष परिवार नगर में ही रहता है। यहाँ का समाचार प्राप्त होते ही वह यहाँ आ गया, परंतु द्वार बंद होने के कारण वह कल से ही हमारे शिविर में रुका हुआ है।”

“कहीं वह युवक कोई गुप्तचर तो नहीं...” सेनापति ने अपनी शंका प्रकट की।

“नहीं युवराज। हमने संध्या में ही उसकी जाँच की थी, उसके पश्चात ही उसे शिविर में प्रवेश प्राप्त हुआ था।” वह युवक वास्तव में साधारण था, और अपने परिवार के विषय में जानने को व्यग्र था। सैनिक ने एक दिन पूर्व युवक द्वारा बताई गयी बातों को स्मरण करते हुए कहा।

“उचित है। उसकी सहायता लो और मुझे शीघ्र ही सूचित करो।” प्रतापसेन ने कहा, “भूमिगत सुरंग का निर्माण अविलंब होना चाहिए।”

अरिदमन के दल का भाग होने का एक ही अर्थ था - अनवरत अभ्यास। प्रतापसेन ने सूचना दी थी कि भूमिगत सुरंग बनाने के लिए स्थान का चयन कर लिया गया है और इसमें तीन रात्रि का समय लगने वाला था। इतने समय के लिए अरिदमन ने सभी सैनिकों को आदेश दिए थे कि वह कठिन अभ्यास करते रहें। वर्षाणों से युद्ध सरल नहीं होने वाला था।

कोई भी युद्ध सरल नहीं होता। उन्होंने स्मरण किया। अपने अस्सी वर्ष की आयु में उन्होंने अनेक युद्ध लड़े थे, जिनको गिनना भी संभव नहीं था। उनके मस्तिष्क में अब वह स्मृति भी धूमिल पड़ चुकी थी जब उन्होंने प्रथम बार शस्त्र उठाये थे।

बाल्यकाल में जब उनके मित्र क्रीड़ा करते थे तब उन्होंने शस्त्र अभ्यास करने का चयन किया। युवावस्था में जब उनके मित्र युवतियों के प्रेम पाश में बंधने में व्यस्त थे, तब उन्होंने युद्ध की पंचविद्या कला में पारंगत होने का निर्णय लिया। जब उनके मित्र गृहस्थ जीवन का कार्यभार संभाल रहे थे तब उन्होंने उत्तराँचल के सेनापति का पदभार संभाला।

युद्ध! यही मात्र उनका जीवन था जिसका चयन उन्होंने स्वयं किया था। और उन्हें यह विचार करने से ही संतुष्टि प्राप्त होती थी कि उन्होंने यह निर्णय लिया।

युद्ध के अतिरिक्त एक अन्य कार्य था जिसमें उन्हें आनंद प्राप्त होता था, शिक्षण कार्य। इसी कारण उन्होंने अम्राली में अपने गुरुकुल की स्थापना की थी। उनके दो शिष्य, जिन्हें उन्होंने स्वयं युद्ध की पंचविद्या कला की शिक्षा दी थी, उन्हें अतिप्रिय थे। हस्तिन और यशवर्धन।

उत्तराँचल की वर्तमान स्थिति और नीतियों से वह संतुष्ट नहीं थे, परंतु उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि यशवर्धन अवश्य एक कुशल शासक सिद्ध होगा।

चालीस वर्षों पूर्व उन्होंने यशवर्धन के पितामह, और पूर्व महाराज सूर्यवर्धन के ध्वज तले दक्षिणांचल से युद्ध किया था। उस समय दक्षिणांचल के वर्तमान महाराज गजबाहु ने संपूर्ण एकद्वीप पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहा था, परंतु उसे पुनः पराजित हो वापस लौटना पड़ा था। उस समय उन्हें ज्ञात हुआ कि यदि शासक योग्य हो तो राज्य पर आया बड़े से बड़ा संकट भी समाप्त किया जा सकता है।

सूर्यवर्धन के जो गुण उसके पुत्र कीर्तिवर्धन में नहीं थे, वह उसके पौत्र यशवर्धन में स्पष्ट दिखाई देते थे। *वह अवश्य ही एक महान राजा सिद्ध होता।*

परंतु स्थिति अब पूर्णतः भिन्न थी। यशवर्धन अब मृत था। जिस राज्य की सुरक्षा के लिए उन्होंने न जाने कितनी बार अपने जीवन को दाँव पर लगाया, वह राज्य अब पुनः संकट में था। वर्षों पूर्व उन्होंने निर्णय लिया था कि अब वह अपना शेष जीवन रणभूमि से बाहर व्यतीत करेंगे, परंतु वर्षों पश्चात आज वह पुनः वहीं खड़े थे।

अभ्यास कर रहे सैनिकों की ध्वनि उन्हें पुनः वर्तमान में खींच लायी। सभी दलपति अपने अपने दल के सैनिकों को प्रशिक्षित कर रहे थे। आने वाला युद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण था और उसकी महत्ता को समझते हुए वह सैनिक भी अपनी संपूर्ण शक्ति झोंक रहे थे।

“प्रणाम!” उनके निकट पहुँचते हुए कौस्तुभ ने कहा। अरिदमन ने धीरे से मुस्कराते हुए उसका अभिवादन स्वीकार किया।

“आपसे एक निवेदन था।” कौस्तुभ के स्वर में हिचकिचाहट थी, “आशा है आप अस्वीकार नहीं करेंगे।”

“अवश्य। कहो, कैसा निवेदन?” उन्होंने अपने समक्ष खड़े नवीन दलपति को देखते हुए कहा। परिस्थितियों ने उस युवक को कहाँ पहुँचा दिया था, उन्होंने सोचा। *यह क्या निवेदन करने वाला है!*

“मैं आपसे युद्ध की पंचविद्या कला सीखना चाहता हूँ।”

अध्याय 22
भूमिगत मार्ग

वह एक सव्यसाची है।

चंद्रसेन के लिए यह तथ्य आश्चर्यचकित कर देने वाला था। जब उसने उस युवक के विषय में ज्ञात किया जिसकी योजना को कार्यान्वित किया जा रहा था, तब उसे यह सूचना प्राप्त हुई थी। मेघपुरम में शस्त्र शिक्षा प्राप्त, धनुर्धरों के एक दल का दलपति कौस्तुभ एक सव्यसाची था।

वह कोई भी हो, मैं उसके विचारों से सहमत नहीं। चंद्रसेन ने मन ही मन कहा। भूमिगत मार्ग से नगर में जाने का अर्थ था आक्रमण को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर देना। अंततः प्रतापसेन ने भी अपनी सहमति दे दी थी इसी कारण वह कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। यद्यपि वह अभी भी यह प्रयास कर रहा था कि वसुधा नगर में जाने का अपना विचार त्याग दे।

"युद्ध में भाग लेना अन्य बात है परंतु बिना किसी सुरक्षा के गुप्त रूप से नगर में जाना पूर्णतः भिन्न है।" चंद्रसेन ने वसुधा को समझाते हुए कहा। वह दोनों इस समय वसुधा के शिविर के बाहर ही बैठे हुए थे। थोड़ी दूर बैठी उर्वी अपने शस्त्रों को सज्जित कर रही थी और रह रह कर उनकी ओर देख भी रही थी।

"मुझे नगर में जाने से कोई समस्या नहीं।" वसुधा ने मुस्कराते हुए कहा। "और मैंने सभा में भी बताया है कि किस प्रकार एक युवती का जाना अधिक लाभकर सिद्ध होगा।"

चंद्रसेन ने अपनी असहाय अवस्था को दर्शाती एक लंबी श्वास छोड़ी। उसके भाई ने सत्य ही कहा था, वसुधा को समझाना व्यर्थ था। वैसे भी उसे प्रतीत हो रहा था कि वह वसुधा की सुरक्षा के लिए चिंतित नहीं था अपितु वह कौस्तुभ के सुझाव का प्रतिरोध करना चाहता था, इसी कारण वह उस स्थान पर उपस्थित था।

"वैसे हमारी सेना अपनी पूरी तैयारियाँ कर रही है।" चंद्रसेन ने वार्तालाप की दिशा बदलते हुए कहा, "वर्षाणों की पराजय निश्चित है।"

"उत्तम। हमारे लिए यह युद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण है और हम इस युद्ध में अवश्य विजयी होंगे।" वसुधा ने कहा, "परंतु हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि इस युद्ध में हमारी सेना को कम से कम क्षति पहुँचे क्योंकि इसके पश्चात भी एक युद्ध हमारी प्रतीक्षा में है।"

चंद्रसेन ने सहमति में अपना सिर हिलाया, यद्यपि वह वसुधा की बातों से पूर्णतः सहमत नहीं था।

"अब मुझे आज्ञा दीजिये।" वह अपने स्थान से उठा और बिना एक क्षण रुके वहाँ से चला गया।

अपनी तलवार को म्यान में रखती उर्वी वसुधा के निकट पहुँची, "राजकुमार को आपकी अत्यधिक चिंता है।" उसने मुस्कराते हुए कहा। "यदि आपके स्थान पर मैं होती तो उनके इतने आग्रह के पश्चात नगर में नहीं जाती।"

वसुधा ने भी उसकी ओर मुस्कराते हुए देखा, "चंद्रसेन को समझाना कठिन कार्य है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि तुम परिहास करोगी।"

"परिहास? आप स्वयं को भाग्यशाली समझिये कि इस क्षण बेला यहाँ नहीं है।" उर्वी ने कहा, "अन्यथा..."

वसुधा की मुस्कान क्षीण हो गयी। बेला ने भी उनके साथ आने का प्रयत्न किया था, परंतु उसके पिता अरिम ने उसे युद्धभूमि में आने की आज्ञा नहीं दी थी।

"परिस्थितियाँ मनुष्य को कहाँ से कहाँ पहुँचा देती हैं।" वसुधा ने धीमे से कहा, मानो स्वयं से बातें कर रही हो। कुछ माह पूर्व वह अपने कक्ष में बैठी अपनी सखियों के साथ हास परिहास कर रही थी, यश जीवित था और उत्तराँचल पर कोई संकट नहीं था। और वर्तमान में वह अनावृत्त आकाश के नीचे खड़ी थी, अपने भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने को व्याकुल।

"जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं होता। चाहे हम भौतिक संसार के विषय में बात करें अथवा आंतरिक भावनाओं के विषय में।" उर्वी ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "परिस्थितियाँ भी स्थायी नहीं हैं, दुःख देने वाले क्षण भी धीरे धीरे समय में विलीन हो जाते हैं।"

वसुधा ने कुछ कहा नहीं और मात्र अपना सिर हिलाया। उर्वी ने एक तलवार उसकी ओर बढ़ाई, "एक अभ्यास द्वंद्व हो जाये? संभवतः कुछ क्षणों के लिए यह हमारे मस्तिष्क में निरंतर आ रहे विचारों को दूर करने में सहायक होगा।"

"अवश्य!" वसुधा ने मुस्कराते हुए तलवार ली और अभ्यास के लिए अपने स्थान से उठ खड़ी हुई।

छनाक!

दो तलवारों के टकराने से ध्वनि उत्पन्न हुई। कौस्तुभ अमोघ के साथ शस्त्र अभ्यास कर रहा था। आने वाले युद्ध में धनुर्विद्या के साथ साथ खड्ग विद्या भी उपयोगी सिद्ध होने वाली थी। उसका दल पूर्ण रूप से तत्पर था और अभ्यास रत भी। उसके दल में मात्र अम्राली के सैनिक थे जो पहले से ही अनुशासित थे। नासन को भी उसने अपने दल में सम्मिलित कर लिया था।

"मुझे ज्ञात नहीं था कि तुम इतने अच्छे धनुर्धर होने के साथ साथ खड्ग विद्या में भी इतने निपुण होगे।" अमोघ ने अभ्यास पश्चात अपनी तलवार 'संहारक' को म्यान में रखते हुआ कहा।

कौस्तुभ शालीनता से मुस्कराया। "मैंने मेघपुरम आश्रम में प्रथम सत्र में खड्ग विद्या का चयन किया था।"

"अद्भुत! तुम वाकई भाग्यशाली हो।" अमोघ बोला। दोनों अपने अपने शिविर की ओर बढ़ रहे थे।

भाग्यशाली! अवश्य। कौस्तुभ ने सोचा। उसने मेघपुरम पहुँचने के लिए अपने प्राण भी दाँव पर लगा दिए थे। दूसरों के लिए यह कहना सरल था।

अभ्यास के कारण उसका शरीर स्वेद से भीगा हुआ था। उसने अपनी तलवार को शिविर में रखा और मुँह हाथ धुलने के लिए बढ़ गया।

उसने एक दिन पूर्व अरिदमन से युद्ध की पंचविद्या कला सीखने का निवेदन किया था और पूर्व सेनापति ने उसका निवेदन स्वीकार कर लिया था। इसी कारण वह तनिक प्रसन्न था।

"इसे सीखने में कई दिन लगेंगे।" अरिदमन ने कहा था, "इस कारण मैं इस युद्ध के पश्चात ही तुम्हें यह विद्या सिखाना आरंभ करूँगा।"

कौस्तुभ ने कोई आपत्ति नहीं प्रकट की। उसके लिए यह किसी स्वप्न से कम नहीं था कि जिस उद्देश्य हेतु उसने एक वर्ष पूर्व अपने ग्राम से प्रस्थान किया था, वह अंततः उस उद्देश्य को पूर्ण करने वाला था। अब उसे मात्र प्रतीक्षा था इस युद्ध के शीघ्र अतिशीघ्र समाप्त होने की।

भूमिगत मार्ग का निर्माण कार्य आरंभ हो गया था जिसमें तीन रात्रि का समय लगने वाला था। *उसके पश्चात उसे नगर में जाना था।*

वसुधा के साथ।

उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न आये बिना नहीं रह पाया कि वसुधा ने नगर में जाने का निर्णय क्यों लिया था। क्यों वह अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध वहाँ उपस्थित थी। वह हठी थी और स्वभाव से विरोधी भी, और कौस्तुभ को उसकी यही बातें अच्छी लगती थीं क्योंकि वह स्वयं भी वैसा ही था।

"मैंने तुम्हारा अभ्यास द्वंद्व देखा। खड्ग विद्या का तुम्हारा कौशल अद्भुत है।" उसने अभी पात्र में जल लिया ही था कि उसे चंद्रसेन का स्वर सुनाई दिया।

कौस्तुभ ने प्रश्नवाचक दृष्टि से चंद्रसेन को देखा जो तलवार लिए हुए उसके निकट खड़ा था। *वह चाहता क्या है?*

चंद्रसेन ने अपनी तलवार निकाली और उसे कौस्तुभ के मुख के निकट घुमाया, "एक अभ्यास द्वंद्व हो जाये?"

कौस्तुभ ने चंद्रसेन के मस्तिष्क में चल रहे विचारों को समझना चाहा, परंतु असफल रहा। "अवश्य!" उसने प्रत्यक्षतः कहा। वह अभ्यास द्वंद्व के निमंत्रण को मना नहीं कर सकता था। उसने अपने कमर की ओर हाथ बढ़ाया तो उसे स्मरण हुआ कि अपनी तलवार को उसने शिविर में रख दिया है।

चंद्रसेन ने स्थिति को भाँपते हुए दूर खड़े एक सैनिक को संकेत किया। थोड़े ही समय में वह सैनिक एक तलवार ले आया। कुछ क्षणों पश्चात दोनों नग्न तलवार हाथों में लिए एक दूसरे के समक्ष खड़े थे।

"तो तुम्हारे अनुसार नगर में जाने से नगर वासियों को सुरक्षित किया जा सकता है?" चंद्रसेन ने प्रथम प्रहार के साथ प्रश्न किया।

"उनकी सुरक्षा की संभावना को बढ़ाया जा सकता है।" कौस्तुभ ने उसके तथ्यों को सही करते हुए कहा।

चंद्रसेन ने तीव्र गति से कई प्रहार किये, जिनसे बचने के लिए कौस्तुभ को अपना सारा ध्यान लगाना पड़ा। यह प्रतीत ही नहीं हो रहा था कि वह अभ्यास कर रहे हैं।

"यदि नगर में जाने के पश्चात तुम्हें ज्ञात हो कि सभी नागरिकों को बंधक बनाया गया है तब तुम क्या करोगे? क्या उस दशा में तुम आक्रमण पुनः स्थगित करने का सुझाव दोगे?" चंद्रसेन ने पूछा।

"संभवतः।" कौस्तुभ ने कहा। उसकी दृष्टि चंद्रसेन के हाथों पर टिकी हुई थी। उसके प्रहारों को रोकने के लिए उनका पूर्व अनुमान लगाना आवश्यक था।

चंद्रसेन ने कुछ कहने के स्थान पर कौस्तुभ के हाथों को लक्ष्य बनाकर प्रहार किया। *घायल हाथ के साथ तलवार पकड़ना कठिन होता है और घातक प्रहार करना असंभव।* यह पाठ तलवार के साथ अभ्यास कर रहे बालकों को सिखाया जाता था, इसी कारण कौस्तुभ के लिए यह समझना कठिन नहीं था कि चंद्रसेन क्या कर रहा था। कौस्तुभ ने चंद्रसेन पर कुछ अनियमित प्रहार किये और एकाएक एक प्रहार उसके पैरों पर किया। *घायल पैरों के साथ खड़े रहना कठिन होता है।* यह भी आरंभिक पाठों में से एक था, परंतु अत्यधिक प्रभावी। चंद्रसेन कौस्तुभ के प्रहार से बच गया परंतु अपना संतुलन बनाये रखने के लिए उसे दो पग पीछे हटना पड़ा।

"युद्ध में जन हानि तो निश्चित रहती है।" चंद्रसेन बोला, "विजय बलिदान माँगता है।"

"परंतु हम उस निश्चित जन हानि को कम करने के लिए प्रयास तो कर सकते हैं न।"

चंद्रसेन ने कौस्तुभ की आँखों में घूरकर देखा। वह कौस्तुभ को समझने का प्रयास कर रहा था।

"संभवतः तुम्हें युद्ध का अधिक अनुभव नहीं।" उसने व्यंग्य भरी मुस्कान के साथ कौस्तुभ की ओर देखते हुए कहा, "युद्ध में प्रवेश करने के पश्चात जीवन अथवा मृत्यु की सुनिश्चितता समाप्त हो जाती है।"

"सत्य है। मुझे युद्ध का अधिक अनुभव नहीं।" कौस्तुभ बोला, "परंतु युद्ध का समय हो अथवा नहीं, प्रत्येक सक्षम मनुष्य का कर्तव्य होता है कि वह असक्षम की रक्षा करे।"

"चाहे वह युद्धभूमि में खड़ा हमारा शत्रु ही क्यों न हो?" चंद्रसेन ने कहा।

"युद्धभूमि में शस्त्र लिए समक्ष खड़ा शत्रु असक्षम नहीं होता।" कौस्तुभ ने आगे बढ़कर प्रहार किया। *द्वंद्व अभी समाप्त नहीं हुआ था।*

चंद्रसेन ने शीघ्रता से उसके प्रहार को रोका और अगले ही क्षण पुनः दोनों के तलवारों के टकराने की ध्वनि गूँजने लगी।

चंद्रसेन ने भी अब तीव्र और जटिल प्रहार करने आरंभ कर दिए थे। उसने कौस्तुभ के गले पर प्रहार किया जिसे कौस्तुभ ने अत्यंत कठिनाई से रोका। चंद्रसेन ने अपनी तलवार पर दबाव बढ़ाया तो कौस्तुभ की तलवार उसी के गले को छूने लगी। उसने चंद्रसेन की शक्ति को कम आँक लिया था।

"युद्ध के समय कोई भी अपना जीवन दाँव पर लगाकर दूसरों की रक्षा नहीं करता।" चंद्रसेन ने कहा।

कौस्तुभ ने एक गहरी श्वास ली, अपने पैरों को भूमि पर दृढ़ता से टिकाया और चंद्रसेन को पीछे धकेला। इससे पूर्व कि चंद्रसेन संभल पाता कौस्तुभ ने अपनी तलवार संपूर्ण वेग से घुमाई। चंद्रसेन की तलवार छिटककर दूर जा गिरी और इस बार वह स्वयं को सँभालते हुए भूमि पर जा गिरा।

कौस्तुभ शीघ्रता से उसके निकट पहुँचा और उसने अपनी तलवार उसके गले से लगा दी। यह ज्ञात होने के पश्चात भी कि यह अभ्यास द्वंद्व था चंद्रसेन भय से काँप उठा।

कौस्तुभ ने अपने हाथों में थमी तलवार को मोड़ा और उसकी मूठ को चंद्रसेन की ओर बढ़ा दिया। *वह उसकी तलवार नहीं थी।* चंद्रसेन ने वह तलवार ले ली तो कौस्तुभ ने उसे उठने में सहायता के लिए अपना हाथ बढ़ाया।

"कुछ लोग अवश्य ऐसे होते हैं जो दूसरों की रक्षा हेतु अपना जीवन भी दाँव पर लगा सकते हैं।" कौस्तुभ ने चंद्रसेन को ध्यान से देखा और मुस्कराते हुए कहा। इसके पश्चात किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह वहाँ से चला गया।

चंद्रसेन दूर जाते कौस्तुभ को देख रहा था। उसने आज तक किसी को नहीं देखा जो दूसरों के जीवन की रक्षा हेतु स्वयं के प्राण संकट में डाले। *उसे उस दिन की प्रतीक्षा रहेगी जब वह किसी ऐसे व्यक्ति से मिलेगा।*

तीन रात्रि के पश्चात भूमिगत सुरंग तैयार थी। कौस्तुभ और वसुधा के अतिरिक्त बालसेन तीसरा व्यक्ति था जो गुप्त रुप से प्रसान नगर में जाने वाला था।

कुछ दिनों पूर्व वह वहाँ से दूर एक गुरुकुल में पढ़ रहा था जब उसे प्रसान नगर पर आक्रमण की सूचना प्राप्त हुई। उसके पिता एक व्यापारी थे इसी कारण वह नगर के व्यापार को भली भांति समझता था। जो वर्षाण इतनी भारी मात्रा में आयात और निर्यात करते थे उनके द्वारा आक्रमण अप्रत्याशित था।

समाचार प्राप्त होते ही वह अतिशीघ्र प्रसान नगर के लिए निकला था परंतु मुख्य द्वार बंद होने के कारण उसे सिंधुपद के सैनिकों के साथ नगर के बाहर ही रुकना पड़ा।

जब तीन दिनों पूर्व उसे ज्ञात हुआ कि सेना एक भूमिगत मार्ग का निर्माण करने वाली है और उन्हें नगर के भीतर ऐसे स्थान का चयन करना है जो निर्जन भी हो और द्वार के निकट भी, तब उसने ही सैनिकों की सहायता की थी।

उस नगर में ऐसा कौन सा स्थान होगा जिसके विषय में उसे ज्ञात न हो। उसका बाल्यकाल उसी नगर की गलियों में अपने मित्रों के साथ खेलते कूदते व्यतीत हुआ था। अंततः उसने भी निर्णय किया कि वह भी नगर में जायेगा।

“यदि आपका उद्देश्य है कि गुप्त रूप से नगर में जाकर सूचनाएँ एकत्र करना तो मैं इस कार्य में आपकी सहायता कर सकता हूँ।” एक दिवस पूर्व वह सेनापति के शिविर में उनके समक्ष खड़ा था।

“किस प्रकार?” प्रतापसेन ने पूछा।

“आपको ज्ञात होगा कि प्रसान नगर का अधिकांश हिस्सा छोटी बड़ी गलियों से भरा हुआ है। वह गलियाँ आपको नगर के प्रत्येक हिस्से में पहुँचा सकती हैं जिनसे सूचना एकत्र करना अत्यंत सरल हो सकता है।।” बालसेन ने समझाने का प्रयत्न किया, “मैं नगर का मूल निवासी हूँ इसी कारण नगर में जा रहे व्यक्तियों को सरलता से उनके विषय में बता सकता हूँ।”

प्रतापसेन विचारों में डूब गया। बालसेन सत्य कह रहा था। उसका उद्देश्य भी किसी ऐसे ही व्यक्ति को ढूँढना था, परंतु वह असफल रहा था।

“तुम्हें ज्ञात है न कि यह कार्य संकटपूर्ण है?” सेनापति ने अपने समक्ष खड़े बालसेन को ध्यानपूर्वक देखा। श्याम वर्ण, लंबे केश, सुंदर मुख और सामान्य शारीरिक बनावट; किसी भी प्रकार से यह नहीं कहा जा सकता था कि उसने अपने जीवन में कभी शस्त्र भी उठाये होंगे।

“मुझे ज्ञात है। मैं अभी भी यह कार्य करने के लिए तत्पर हूँ।” बालसेन ने दृढ़ भाव से कहा।

“हूँ। उचित है।” प्रतापसेन ने सहमति में सिर हिलाया। “यदि तुम संकट से अवगत होने के पश्चात भी यह कार्य करना चाहते हो तो मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं। समय आने पर तुम्हें सूचना दे दी जाएगी।”

बालसेन ने सेनापति का अभिवादन किया और शिविर से बाहर निकल आया।

अगले दिन संध्या समय उसे संदेश प्राप्त हुए कि वह तत्पर रहे। अँधेरा होते ही उन्हें भूमिगत मार्ग द्वारा नगर में प्रवेश करना था।

वह शीघ्र ही नियत स्थान पर पहुँच गया। कौस्तुभ और वसुधा पूर्व में ही वहाँ उपस्थित थी। बालसेन ने ध्यान दिया कि इस समय दोनों ने सामान्य नागरिकों जैसे वस्त्र पहने हुए थे। परंतु उन दोनों के हाथों में तलवार देख उसे आश्चर्य भी हुआ।

हाथों में तलवार देख तो कोई भी यह सरलता से समझ जायेगा कि वह साधारण नगरवासी नहीं हैं।

प्रतापसेन और अरिदमन ने तीनों को सुरक्षा आदि से संबंधित कुछ आवश्यक निर्देश दिए और उसके पश्चात वह तीनों मात्र एक सैनिक के साथ उस दिशा में बढ़ गए जहाँ भूमिगत मार्ग का निर्माण हुआ था।

“तुम अपने शस्त्र लेकर नगर में जाओगे क्या?” मार्ग में बालसेन ने कौस्तुभ से पूछा।

“हाँ! परंतु नगर में प्रवेश करते ही हम इसे किसी स्थान पर छुपा देंगे। इससे किसी संकट के समय हमें शस्त्र ढूँढने में कठिनाई नहीं आयेगी।” कौस्तुभ ने समझाया।

शीघ्र ही वह ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ घनी ऊँची झाड़ियाँ उगी हुई थीं। उनके मध्य कुछ कम ऊँचाई वाले वृक्ष भी उगे हुए थे जिन्हें पार कर वह प्राचीर के तल के निकट पहुँचे। सैनिक ने सावधानीपूर्वक भूमि पर रखी हुई एक विशाल टहनी उठाई तो सुरंग का मुख उन्हें स्पष्ट दिखने लगा।

“यहाँ से आप तीनों को अकेले ही आगे बढ़ना है।” सैनिक ने सम्मानजनक स्वर में उनसे कहा, “आपके प्रवेश करते ही मैं यह टहनी पुनः इसी स्थान पर रख दूँगा। ठीक इसी प्रकार की व्यवस्था दूसरी ओर भी की गयी है। नगर में प्रवेश करने के पश्चात आप सुरंग के दूसरे मुख को भी भलीभांति छिपा दीजिएगा।”

“अवश्य!” वसुधा ने कहा और सर्वप्रथम भूमिगत सुरंग में प्रवेश कर गयी। उसके पश्चात बालसेन और उसके पश्चात कौस्तुभ ने प्रवेश किया।

भूमिगत सुरंग में प्रवेश करने से पूर्व कौस्तुभ ने एक बार पीछे मुड़कर देखा। नगर के बाहर दूर-दूर तक कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। उसके निकट भावहीन मुख वाला वह सैनिक खड़ा था जिसके हाथ में एक दीपदंड था।

कौस्तुभ ने एक दीर्घ श्वास ली और भूमिगत सुरंग में प्रवेश कर गया। अपने समक्ष उसे दो मानवाकृतियाँ दिखीं। *वसुधा और बालसेन!*

सुरंग के भीतर की वायु शीतल थी और भूमि नर्म। शीघ्रता में निर्माण कार्य होने के कारण भूमि समतल नहीं थी जिस कारण उन्हें अत्यधिक ध्यान से चलना पड़ रहा था। उसी क्षण सैनिक ने सुरंग के मुख को ढक दिया और वहाँ पूर्ण रूप से अँधेरा छा गया।

न चाहते हुए भी कौस्तुभ अपने हृदय स्पंदन को बढ़ने से रोक नहीं पाया। अब उन्हें एक दूसरे के श्वास लेने की ध्वनि भी सुनाई देने लगी जो उस स्थान में गूँज रही थी। उसने जितना अनुमान लगाया था यह उससे भी कठिन कार्य था।

वह अंधकार में दीवारों को टटोलते हुए आगे बढ़ रहे थे। कुछ कुछ स्थानों पर पर्याप्त ऊँचाई न होने के कारण उन्हें अपने सिर को झुकाकर आगे बढ़ना पड़ रहा था। इन सब के पश्चात भी कभी कभी उनके कंधे सुरंग की दीवारों से टकरा रहे थे।

इस क्षण वह उस विशाल प्राचीर के नीचे थे जिसका निर्माण सैकड़ों वर्ष पूर्व किया गया था, इस विचार मात्र से ही कौस्तुभ का हृदय रोमांचित हो उठा। *प्रसान नगर की दीवार, अभेद्य, अलंघ्य और विराट।*

“हम पहुँच गये।” कुछ क्षणों पश्चात उसे वसुधा का स्वर सुनाई पड़ा। हालाँकि उस बंद और वायुरहित स्थान पर वह कुछ क्षण बहुत अधिक प्रतीत हुए थे।

अगले क्षण उसे टहनियों के सरकने का स्वर सुनाई दिया और एक अत्यंत क्षीण प्रकाश की किरण उस सुरंग में पहुँची जिसका स्रोत था आकाश में उदित चंद्रमा। एक स्वच्छ वायु का झोंका कौस्तुभ के मुख से टकराया। *अंततः*, उसने सोचा, *हम नगर में पहुँच ही गए।* एक गहरी श्वास लेकर उसने उस स्वच्छ वायु को अपने फेफड़ों में भर लिया।

शीघ्र ही वह भूमिगत सुरंग से बाहर निकल आये और बालसेन ने पुनः उसके मुख को टहनियों से इस प्रकार ढक दिया कि दूर से देखने पर यह ज्ञात न हो कि वहाँ किसी सुरंग का निर्माण हुआ है।

कौस्तुभ ने अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई। उसे मात्र कुछ जीर्ण शीर्ण भवन ही दिखाई दिए। जीवित मनुष्य तो क्या वहाँ जीवित पशु भी दिखाई नहीं दे रहे थे। और संभवतः इसका कारण था वहाँ वायु में फैली एक विचित्र सड़ांध जैसी गंध, कौस्तुभ ने अनुमान लगाया।

वह स्थान वास्तव में निर्जन था।

अध्याय 23

रम्या

रम्या ने अपने स्थान से छिपकर उस वर्षाण को देखा। रात्रि के समय भी वह उस भवन के बाहर अत्यंत सावधानी से खड़ा था। भवन की दीवार पर लगे दीपदंड के प्रकाश में उस वर्षाण का काला रंग स्पष्ट दिखाई दे रहा था जो उसे भयावह बना रहा था।

रम्या ने अपने निकट खड़े युवक को कुछ संकेत किया। युवक ने धीरे से अपना सिर हिलाया और भवन से पर्याप्त दूरी बनाये हुए भवन की दूसरी ओर बढ़ गया।

वर्षाण का सारा ध्यान भवन के द्वार पर था जिसके पीछे इस समय तीन प्रसान वासी बंधक थे। वर्षाणों के अनाधिकृत रूप से नगर में प्रवेश करने के कारण अधिकांश सैनिक उनका प्रतिरोध कर रहे थे। यद्यपि उनकी संख्या इतनी पर्याप्त नहीं थी कि वह वर्षाणों को पूर्ण रूप से रोक पाते, परंतु वह उनके लिए भारी समस्या अवश्य उत्पन्न कर रहे थे। इसी कारण वर्षाणों ने सैनिकों एवं अन्य ऐसे नगर वासियों को बंधक बनाना आरंभ कर दिया जो उनका प्रतिरोध करने में सक्षम थे। वर्षाणों के समक्ष दूसरा कठिन प्रश्न था कि उन सैनिकों को किस स्थान पर रखा जाये, क्योंकि नगर के कारागार सभी बंधकों के लिए पर्याप्त नहीं थे। तब उन्होंने सैनिकों को छोटे छोटे समूहों में भवनों में बंधक बनाना आरंभ कर दिया जिनके बाहर सशस्त्र वर्षाण पहरा देते थे।

इस समय रम्या का लक्ष्य था उस भवन के भीतर बंधक बनाये गए तीन सैनिकों को स्वतंत्र कराना। उस स्थान के निकट के भवन रिक्त थे और कुछ दूर तक पहरे पर कोई अन्य वर्षाण नहीं था। इसका अर्थ था कि उनके लक्ष्य में मात्र एक ही बाधा थी - वह वर्षाण। परंतु यह बाधा भी सरल नहीं थी। रम्या को ज्ञात था कि वह और उसके साथ आया हुआ युवक, दोनों मिलकर भी उसे परास्त नहीं कर सकते थे। *परंतु रम्या के पास एक योजना थी।*

सूर्योदय होने में एक प्रहर शेष था, परंतु वह वर्षाण तनिक भी थका हुआ अथवा असावधान नहीं प्रतीत हो रहा था। उन्हें सूर्योदय से पूर्व ही सैनिकों को स्वतंत्र कराना था जिससे उन्हें सरलता से 'गुप्त स्थान' पर पहुँचाया जा सके।

रम्या ने अपने हाथों में ली हुई तलवार को सावधानी से पकड़ा हुआ था। यदि उसका अनुमान सही था तो उसे कुछ ही क्षणों में उस तलवार की आवश्यकता पड़ने वाली थी।

रम्या के साथ आया अत्रिक सावधानीपूर्वक भवन के दूसरी ओर पहुँचा। उसकी कमर पट्टिका से भी एक तलवार लटक रही थी जिसकी मूठ पर उसकी हथेलियाँ कसी हुई थीं। रात्रि की शीतलता में भी उसके माथे पर स्वेद की कुछ बूँदें दिखाई देने लगीं। वह तलवार चलाने में इतना निपुण नहीं था कि एक वर्षाण का सामना कर सके। *यदि रम्या का उपाय प्रभावी सिद्ध नहीं हुआ तो मेरी मृत्यु निश्चित है।*

अत्रिक ने वृक्ष की ओट से देखा, वर्षाण अधिक दूर नहीं था, परंतु उस ओर से आश्वस्त था। अत्रिक ने तलवार अपने एक हाथ में ले ली और दूसरे हाथ से भूमि पर गिरा हुआ एक पत्थर का टुकड़ा उठाया। *"मुझे रम्या की बातों में नहीं आना चाहिए थे।"* वह धीरे से बुदबुदाया। उसने वहीं खड़े होकर वर्षाण के सिर को लक्ष्य बनाया, जैसा कि रम्या ने उसे समझाया था, और उस ओर अपने हाथ में लिया हुआ पत्थर उछाल दिया।

वर्षाण के सिर को लक्ष्य बनाकर फेंका गया पत्थर का टुकड़ा उसके पैरों से टकराया। वर्षाण को अपनी तलवार निकाल कर हाथ में लेने में एक क्षण का समय भी नहीं लगा। उस एक क्षण में ही उसके मुख के भाव परिवर्तित हो गए। उसने उस दिशा में देखा जिस ओर से पत्थर फेंका गया था।

तब तक अत्रिक पुनः वृक्ष की ओट में छिप चुका था। वर्षाण उसे नहीं देख सकता था परंतु उसे ज्ञात था कि वर्षाण अब उसी की ओर बढ़ रहा होगा। उसके हृदय स्पंदन की गति कई गुना बढ़ गयी।

भगवान एकेश्वर रक्षा करें।

रम्या ने छिपे हुए ही पत्थर को वर्षाण के पैरों से टकराते हुए देखा। वर्षाण दूसरी ओर बढ़ गया। रम्या दबे पाँव भवन के द्वार की ओर बढ़ गयी। उसने धीरे से द्वार पर लगी हुई सीकड़ हटायी और भीतर झाँका। वह भवन अधिक विशाल नहीं था और प्रत्येक वस्तु भूमि पर बिखरी हुई थी। इनके अतिरिक्त जैसी उसे सूचना प्राप्त हुई थी वहाँ उसे तीन व्यक्ति दिखाई दिए जिनके हाथ, पैर और मुँह बंधे हुए थे।

उन तीनों ने हाथ में तलवार ली हुई एक युवती को अपनी ओर बढ़ते देखा तो उनकी आँखों में आश्चर्य के भाव आये बिना नहीं रह सके। बंधक बनने के पश्चात उन्हें स्वयं के बचाव की तनिक भी आशा नहीं थी, एक युवती द्वारा तो कदापि नहीं।

वहाँ से थोड़ी दूर, वर्षाण उस वृक्ष के निकट पहुँचा जहाँ से उसकी ओर पत्थर फेंका गया था। *आक्रमणकारी निकट ही कहीं छिपा होगा।* वह वृषाण सभी वृक्षों के पीछे देख रहा था।

तभी अत्रिक एकाएक एक वृक्ष की ओट से बाहर आ गया, तलवार पर अपनी पकड़ दृढ़ता से बनाये हुए। वर्षाण की आँखों में देखते हुए। ठीक वैसा ही जैसे रम्या ने उसे समझाया था। उस क्षण वह यही प्रार्थना कर रहा था कि वर्षाण उसके काँपते पैरों को न देखे।

वर्षाण के लिए यह समझना कठिन नहीं था कि उसके समक्ष खड़ा युवक चाहता क्या है। *तो नगर के सैनिकों ने मुझसे द्वंद्व करने के लिए एक बालक को भेजा है, जिसके पैर भूमि पर रखते हुए काँप रहे हैं और जो विचित्र दृष्टि से मुझे घूर रहा है।*

यह भी संभावना थी कि उस युवक को सैनिकों ने न भेजा हो अपितु वह स्वेच्छा से आया हो। वर्षाण उस नगर में बलपूर्वक घुस आये थे, जो उन्हें प्रत्येक प्रसान वासी का शत्रु बनाता है।

कारण जो भी हो, वर्षाण ने सोचा, इस युवक ने मुझपर आक्रमण करने का दुस्साहस किया है तो यह जीवित नहीं लौटेगा। उसने तलवार घुमाकर प्रहार किया।

अत्रिक ने फुर्ती से अपना बचाव किया। इस द्वंद्व में अधिक समय तक टिके रहने का सबसे सरल उपाय था वर्षाण के प्रहारों से बचते रहना। वर्षाण ने उसके उदर पर प्रहार किया जिसे उसने अपनी तलवार से रोका, परंतु तीव्र प्रहार के कारण उसके हाथ झनझना गए।

वर्षाण ने पुनः प्रहार किया जिसे अत्रिक ने पुनः रोका, परंतु इस बार वर्षाण ने अत्रिक के तलवार में अपनी तलवार फँसायी और एक तीव्र झटका दिया। अत्रिक की तलवार दूर जा गिरी। उसका मुख पीला पड़ गया, मानो सारा रक्त निचुड़ गया हो। भय की तरंग उसके शरीर में दौड़ गयी। *कहाँ है रम्या, उसने तो कहा था कि मुझे मात्र कुछ ही क्षण वर्षाण को रोकना पड़ेगा और संभवतः उसकी आवश्यकता भी नहीं आएगी।*

परंतु यहाँ तो कुछ ही क्षणों में उसकी जीवन लीला भी समाप्त होने वाली थी। वर्षाण ने अपनी तलवार घुमाई और उसकी आँखें स्वतः ही बंद हो गयीं।

टनाक!

यह तो दो तलवारों के टकराने की ध्वनि थी। अत्रिक ने धीरे धीरे अपनी आँखें खोलीं। एक तलवार धारक ने वर्षाण के प्रहार को रोक लिया था। वह अवश्य ही उन तीन सैनिकों में से एक था जिन्हें वह भवन से स्वतंत्र कराने आये थे, क्योंकि निकट ही अन्य दो व्यक्तियों के साथ रम्या खड़ी थी। उन दोनों में से एक ने झुककर अत्रिक की तलवार उठा ली, परंतु उसने वर्षाण और प्रथम सैनिक के द्वंद्व में हस्तक्षेप नहीं किया।

प्रथम सैनिक के पास वह तलवार थी जो रम्या अपने साथ लायी थी। *यदि उसका अनुमान सही था तो उसे कुछ ही क्षणों में उस तलवार की आवश्यकता पड़ने वाली थी।* रम्या को तलवार चलाने का अधिक अनुभव नहीं था और न ही अत्रिक को, इसी कारण उसे ज्ञात था कि वह दोनों उस वर्षाण को कभी परास्त नहीं कर पायेंगे। परंतु बंधक बने सैनिक अवश्य ही यह कार्य कर सकते थे।

और रम्या का अनुमान पूर्णतः सत्य था। वह सैनिक उस वर्षाण को तलवार द्वंद्व में टक्कर दे रहा था।

यद्यपि वर्षाण मात्र एक व्यक्ति से द्वंद्व कर रहा था, परंतु स्वयं को अन्य चार व्यक्तियों से घिरा होने के कारण उसका आत्मविश्वास प्रतिपल क्षीण होता जा रहा था। शीघ्र ही प्रसान सैनिक की तलवार उसके उदर को भेद चुकी थी। सैनिक ने घृणा से अंतिम बार उस वर्षाण को देखा और रम्या की ओर मुड़ा।

“धन्यवाद!” वह कृतज्ञ था।

रम्या ने मात्र धीरे से अपने सिर को हिलाया। “धन्यवाद के अवसर आगे भी आयेंगे। हमें अधिक से अधिक सैनिकों को एकत्र करना है। किसी भी दशा में वर्षाण सिंधुपद की ओर नहीं बढ़ने चाहिए।”

वर्षाणों का प्रतिरोध कर रहे सैनिकों एवं अन्य प्रसान वासियों ने नगर में कई स्थानों पर गुप्त आश्रय बनाये थे। इस कार्य के लिए अधिकांशतः कुछ भूमिगत कक्षों का प्रयोग किया जा रहा था जो अब उपयोग में नहीं आते थे और जिनके विषय में वर्षाणों को तनिक भी अंदेशा नहीं था।

जब वर्षाणों ने नगर को अधिकार में लिया था तब प्रसान सैनिक असावधान और असंगठित थे। उन्होंने वर्षाणों को रोकने का प्रयास किया परंतु असफल रहे। अब वह पुनः उन्हें चुनौती देना चाहते थे और इस कारण वह पुनः अपनी शक्ति एकत्र कर रहे थे। परंतु गुप्त रूप से।

रम्या और अत्रिक के अतिरिक्त रात्रि के समय ही कई अन्य व्यक्तियों ने भी कई सैनिकों को मुक्त कराया था। और वह सभी सैनिक सूर्योदय से पूर्व ही गुप्त आश्रयों में पहुँचाये जा चुके थे।

सूर्योदय होने से पूर्व सैनिकों को नियत स्थान पर पहुँचाने के पश्चात रम्या वहाँ से पुनः नगर में स्थित एक छोटे से भवन की ओर लौट गयी। मार्ग में वह पूर्ण रूप से सावधान थी कि कोई भी व्यक्ति उसे किसी भी दशा में देखने न पाए और यदि भूलवश किसी की दृष्टि उसपर पड़ भी जाये तो वह उसे पहचान न पाए।

ऐसा इसलिए क्योंकि वह नगर में सामान्य कुम्भकार की भांति रहती थी और नगर में विचरण कर सूचनाएँ एकत्र कर रात्रि के समय गुप्त आश्रय में एकत्र सैनिकों तक पहुँचाती थी। नगर में कैसी भी स्थिति हो, कुछ वस्तुओं की आवश्यकता सदैव रहती है। इसी कारण रम्या ने इस कार्य का चयन किया था और उसे इसका लाभ भी प्राप्त हो रहा था। कई वर्षाण उसे कुम्भकार के रूप में उसे पहचानने लगे थे क्योंकि मृदभांडों की आवश्यकता उन्हें भी पड़ती थी।

वह अपने भवन से कुछ ही दूर थी जब उसने एक वर्षाण को देखा जो उस क्षेत्र का प्रहरी था। उस वर्षाण प्रहरी ने अपनी ओर आते हुए एक युवक और युवती को मार्ग में ही रोक लिया।

“कौन हो तुम दोनों?” उस वर्षाण ने पूछा, “इस नगर के तो नहीं प्रतीत होते।”

यह सत्य था, रम्या ने सोचा, *वह युवक और युवती इस नगर के नहीं प्रतीत होते थे।* वह उनकी ओर बढ़ गयी। यदि वह इस नगर के नहीं थे तो कौन थे? वह वर्षाणों के साथ तो नहीं हो सकते, अन्यथा वह वर्षाण उन्हें इस प्रकार नहीं रोकता। और वह इस नगर में आये कैसे? क्योंकि नगर का प्रवेश द्वार तो बंद था।

“आपको अवश्य कोई भ्रम हुआ है,” रम्या को उस युवक का स्वर सुनाई दिया, “मेरा नाम अमोघ है और इसका नाम उर्वी। हम दोनों निकट ही एक भवन में रहते हैं।”

“मैंने तो तुम्हें कभी नहीं देखा,” वर्षाण ने अपनी भौंहों को सिकोड़ते हुए कहा, “कार्य क्या करते हो?”

परंतु इससे पूर्व कि उन्हें कोई उत्तर देना पड़ता, रम्या उनके निकट आ गयी और शीघ्रता से बोली, “अरे! तुम दोनों अभी तक यहीं हो। काकी कब से तुम्हें ढूँढ रही हैं।”

वर्षाण ने रम्या को देखा, वह उसे भलीभांति पहचानता था। रम्या द्वारा उस युवक और युवती को पहचानने से उसका संदेह कुछ कम होने लगा, परंतु पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुआ।

वह पुनः युवक की ओर मुड़ा, “तुमने उत्तर नहीं दिया। कार्य क्या करते हो?”

“अरे यह दोनों तो साफ सफाई का कार्य करते हैं।” इस बार भी रम्या ने ही उत्तर दिया।

वर्षाण ने घूरकर रम्या को देखा। “क्या यह स्वयं उत्तर नहीं दे सकते?”

“वास्तव में इनकी माँ इनकी प्रतीक्षा कर रही है, और उन्होंने मुझे इन्हें ढूँढने के लिए भेजा है।” रम्या ने शीघ्रता से कहा और व्यग्रता से मुस्कुराई।

वर्षाण ने धीरे से अपना सिर हिलाया और वहाँ से आगे बढ़ गया। वह प्रतिदिन रम्या को देखता था इसी कारण आश्वस्त था कि वह झूठ नहीं बोल सकती।

रम्या ने चैन की श्वास ली। यदि वह वर्षाण उससे पूछ लेता कि वह दोनों कहाँ गए थे अथवा कहाँ से आ रहे थे, तो उसके पास तत्क्षण कोई उत्तर नहीं होता।

“मेरे साथ आओ।” उसने धीमे स्वर में युवक और युवती से कहा और एक ओर बढ़ गयी। वह दोनों भी बिना कुछ कहे उसके साथ बढ़ गए।

“संभवतः तुमने उस वर्षाण को अपने वास्तविक नाम नहीं बताये होंगे।” कुछ दूर चलने के पश्चात रम्या बोली।

“हाँ, वह हमारे मित्रों के नाम थे।” युवक ने कहा।

“तो तुम्हारे वास्तविक नाम क्या हैं?” रम्या ने पूछा।

युवक ने युवती की ओर देखा मानो पूछ रहा हो कि क्या इसे अपने वास्तविक नाम बताने चाहिए। युवती ने सहमति में सिर हिलाया।

“कौस्तुभ और वसुधा।” युवक ने रम्या के प्रश्न का उत्तर दिया।

कुछ प्रहर पूर्व -

वह स्थान वास्तव में निर्जन था, कौस्तुभ ने अवलोकन किया।

वह, वसुधा और बालसेन तीनों प्रसान नगर में खड़े थे। सिंधु के तट पर स्थित और एकद्वीप का व्यापारिक केंद्र जो इस समय वर्षाणों के अधिकार में था।

बालसेन ने भूमिगत सुरंग के मुख को ढक दिया था और वसुधा ने अपने शस्त्र निकट ही एक स्थान पर छिपा दिए थे।

“इस स्थान पर ऐसी दुर्गंध क्यों है?” कौस्तुभ ने बालसेन से पूछा।

“यह प्रसान नगर का सर्वाधिक प्राचीन भाग है। परंतु कुछ वर्षों से यहाँ वर्षा ऋतु के समय जल भराव हो जाता है। इसी कारण इस भाग के निवासी दूसरे भागों में पलायन कर गए और यह स्थान जीर्ण शीर्ण हो गया।” बालसेन ने बताया, “वर्षा ऋतु का जल सूखने के पश्चात यहाँ ऐसी ही दुर्गंध फैली रहती है।”

“अर्थात यहाँ वर्षाण नहीं आयेंगे?” वसुधा ने पूछा।

“नहीं।” बालसेन ने अपना सिर नहीं में हिलाया और बोला, “किसी भी दशा में नहीं। यहाँ सामान्य नागरिक नहीं आते तो शत्रु सैनिक क्यों आयेंगे?”

वसुधा आश्वस्त हुई, उसने धीरे से अपना सिर हिलाया। *तो इसी कारण बालसेन ने इस स्थान का चयन किया था।*

“हमारे सामने अब मुख्य समस्या यह है कि हम अपना कार्य कहाँ से आरंभ करें।” कौस्तुभ बोला, “हमें सावधानीपूर्वक नगर में प्रवेश करना है और नगर की वर्तमान परिस्थितियों का अवलोकन करना है।”

“और जीवित रहना है जिससे हम वह सूचना पुनः प्राचीर के बाहर खड़ी अपनी सेना तक पहुँचा सकें।” वसुधा ने कहा।

“मैं अपने भवन की ओर जाऊँगा।” बालसेन ने कहा।

“मैं नहीं हम।” वसुधा बोली, “यदि हम साथ रहेंगे तो ही सबकी सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।”

“उचित है। हम सभी मेरे भवन की ओर जायेंगे।”

“परंतु तुम्हारे भवन ही क्यों?” वसुधा ने कहा, “स्मरण है न तुमने कहा था कि तुम नगर की वर्तमान स्थिति के विषय में सूचना एकत्र करने में हमारी सहायता करोगे।”

“हाँ। और सूचना एकत्र करने का सबसे सरल मार्ग है लोगों से नगर की स्थिति के विषय में पूछना। मेरे भवन के निकट मेरे सभी परिचित लोग रहते हैं जो हमें उचित रूप से बता पायेंगे कि नगर की वास्तविक स्थिति क्या है?”

कौस्तुभ और वसुधा ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। उनका अनुमान था कि वर्षाणों के आक्रमण में कुछ नागरिकों ने भी सहायता की थी और किसी अपरिचित व्यक्ति से प्रश्न पूछने पर यह समस्या आ सकती थी कि वह व्यक्ति वर्षाणों का साथी हो सकता था।

उनके पास एक अन्य विकल्प यह भी था कि वह छिपकर नगर के हाटों, चौमार्गों और गलियों का अवलोकन करें। परंतु इस कार्य में बहुत अधिक समय लगता और संभवतः उन्हें कभी पूर्ण स्थिति ज्ञात भी नहीं हो पाती।

उन्होंने कुछ समय और चर्चा की और अंततः उस स्थान से बाहर निकल बालसेन के भवन की ओर बढ़ गए जो कि उसके अनुसार नगर के दूसरे छोर पर था।

जैसे-जैसे वह नगर के भीतर बढ़ रहे थे उन्हें प्रत्येक चौमार्ग पर कुछ सशस्त्र वर्षाण अवश्य दिखाई दे रहे थे। हालाँकि उन्हें एक भी एकद्वीप वासी नहीं दिखा। संभवतः रात्रि का समय होने के कारण वह सभी अपने अपने भवनों में सो रहे थे।

“नगर की स्थिति तो सामान्य प्रतीत हो रही है।” बालसेन ने धीमे स्वर में कहा, “सत्य कहूँ तो मुझे अत्यधिक मात्रा में जलते और टूटे हुए भवनों के मिलने की आशंका थी।”

“रात्रि का समय होने के कारण हमारे अनुमान गलत भी हो सकते हैं।” कौस्तुभ ने भी उसी की भांति धीमे स्वर में कहा। “हो सकता है नागरिकों को उनके भवनों में बंधक बनाया गया हो और दिन रात्रि भीतर ही रहने को विवश किया जाता हो। दिन होने से पूर्व कुछ भी बता पाना कठिन है।”

वसुधा ध्यानपूर्वक सभी वर्षाणों को देख रही थी। “यहाँ तो पर्याप्त संख्या में वर्षाण हैं। यदि ऐसा है तो वह आगे बढ़कर युद्ध क्यों नहीं कर रहे हैं?” उसने भी धीमे स्वर में कहा मानो स्वयं से ही प्रश्न पूछ रही हो।

“क्योंकि वह किसी व्यक्ति अथवा किसी विशेष समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।” कौस्तुभ ने अनुमान लगाया। “और उस विषय में ही हमें सूचना एकत्र करनी है।”

कौस्तुभ ने आकाश में देख समय का अनुमान लगाया। सूर्योदय होने में मात्र आधे प्रहर का समय शेष था और बालसेन के अनुसार वह उसके भवन के निकट पहुँच चुके थे।

यहाँ तक की यात्रा उन्होंने मुख्य मार्गों द्वारा नहीं तय की थी। प्रसान नगर में भवनों के मध्य पतली गलियाँ बनायीं गयी थीं, जिनका मुख्य कार्य जल निकासी की व्यवस्था को सुगम बनाना था। वह छिपकर, शांति बनाये हुए उन्हीं गलियों में होते हुए आगे बढ़ रहे थे।

“दाहिनी ओर तीन वर्षाण हैं।” वसुधा ने एक गली के मुहाने से झाँकते हुए कहा, “अगली गली में बढ़ने के लिए हमें उनके जाने की प्रतीक्षा करनी होगी।”

वसुधा के पीछे खड़े कौस्तुभ और उसके पीछे खड़े बालसेन ने सहमति में अपना सिर हिलाया। अब तक उन्हें मार्ग में कोई बाधा नहीं मिली थी और वह शेष मार्ग भी उसी प्रकार तय करना चाहते थे।

जैसे जैसे बालसेन अपने भवन के निकट बढ़ता जा रहा था उसका मन अशांत होता जा रहा था। उसने एक दो स्थानों पर बलपूर्वक नष्ट किये गए भवन देखे थे इसी कारण वह अपने परिवार के विषय में चिंतित था। कौस्तुभ ने सत्य कहा था, रात्रि के समय कुछ भी निश्चित रुप से बता पाना कठिन था।

"वह चले गए।" वसुधा का स्वर सुनकर उसकी तंद्रा भंग हुई। वह बढ़ने के लिए तत्पर हुआ कि उसे स्वयं के गर्दन पर एक ठंडक का अनुभव हुआ।

"जहाँ हो वहीं ठहर जाओ।" उस स्थान पर एक भारी स्वर गूँजा। किसी ने बालसेन की गर्दन पर तलवार रखी थी। क्षण भर में उसका शरीर स्वेद से भीग गया।

बालसेन के साथ साथ कौस्तुभ और वसुधा भी अपने अपने स्थान पर जड़ हो गए। उन्होंने पीछे मुड़कर उस व्यक्ति को देखा जिसने अपनी तलवार बालसेन के गर्दन पर रखी थी और क्रोधित नेत्रों से उन तीनों को देख रहा था। उसका शरीर भीमकाय था, वर्ण अत्यधिक काला; निःसंदेह वह एक वर्षाण था।

"वतीरा! इधर आ जा।" अप्रत्याशित रूप से उस वर्षाण ने एकाएक ऊँचे स्वर में कहा, "वध करने वाले मिल गए।"

कौस्तुभ और वसुधा के नेत्र मिले। *वह वर्षाण क्या कह रहा था?*

"हमने किसी का वध नहीं किया।" बालसेन ने कहा।

वर्षाण ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"आपने अवश्य ही हमें कोई अन्य समझ लिया है।" इस बार कौस्तुभ ने कहा। वह दोनों वर्षाण की पहुँच से दूर थे। वर्षाण भी उन दोनों की ओर से निश्चिंत था क्योंकि उसने उनके तीसरे साथी के गर्दन पर अपनी तलवार रखी थी।

"तुम दोनों शांत रहो।" वर्षाण ने अपने स्थान से हिले बिना कहा। "वतीरा!" वह पुनः चिल्लाया।

कौस्तुभ विचलित होने लगा। वह वर्षाण अवश्य ही अपने किसी साथी को बुला रहा था जिसके आने के पश्चात उनके लिए समस्या बढ़ जाने वाली थी।

"आप किसके वध के विषय में कह रहे हैं।" कौस्तुभ ने पुनः प्रयास किया।

"हमारे साथी प्रहरी के विषय में जिसका वध कुछ ही समय पूर्व किया गया है।" अंततः उस वर्षाण ने कहा। उसने पीछे मुड़कर देखा, संभवतः वह अपने साथी के न आने से चिंतित हो रहा था।

बालसेन मन ही मन काँप रहा था। तलवार अभी भी उसके गर्दन पर थी जिसपर हल्का सा दबाव बढ़ते ही उसकी मृत्यु निश्चित थी। जैसे ही वह वर्षाण पीछे मुड़ा बालसेन ने अपने पैरों से उसके पैरों के मध्य प्रहार करना चाहा। परंतु वर्षाण चौकन्ना था। वह मात्र सरलता से बचा ही नहीं अपितु उसने अपने बाएँ हाथ से बालसेन की गर्दन पकड़ ली।

"यदि तुम लोगों को जीवित बंधक बनाने का आदेश नहीं होता, तो मैं अब तक तुझे मृत्यु द्वार तक पहुँचा चुका होता।" वर्षाण ने अपने दाँत भींचते हुए कहा, "यदि अब अपने स्थान से तनिक भी हिले तो मैं अपना आदेश भूल जाऊँगा।"

बालसेन एक बार पुनः काँप उठा। उसके भीतर अब प्रतिरोध की शक्ति समाप्त हो चुकी थी।

उसी क्षण गली में तीन अन्य वर्षाणों ने प्रवेश किया। सशस्त्र वर्षाण। बालसेन के गर्दन पर तलवार रखे हुए वर्षाण ने तनिक पीछे मुड़कर अपने साथियों को अपनी ओर आता देखा तो उसके मुख पर एक मुस्कान आ गयी। वास्तव में वह पद में स्वयं से उच्च वतीरा से प्रशंसा प्राप्त करना चाहता था क्योंकि उसके अनुसार उसने उन व्यक्तियों को पकड़ लिया था जिसने उनके एक वर्षाण साथी का वध किया था।

यह तीनों अवश्य वही थे अन्यथा नगर में रात्रि के समय गलियों में छिप छिप कर क्यों विचरते।

"हमें यहाँ से इसी क्षण निकलना होगा।" वसुधा ने धीमे स्वर में कौस्तुभ से कहा। परंतु कौस्तुभ ध्यानपूर्वक वर्षाणों को गली में बढ़ते हुए देख रहा था। वह अवश्य ही गणना कर रहा होगा कि उन चारों वर्षाणों से कैसे निपटा जाये, वसुधा ने अनुमान लगाया।

"कौस्तुभ!" वसुधा पुनः धीमे से फुसफुसाई।

कौस्तुभ ने पुनः कुछ नहीं कहा।

"वतीरा! यही हैं हत्यारे। इन्हें भी बंधक बना लो।" वर्षाण ने अपने एक साथी से कहा जो संभवतः वतीरा था।

"म... मेरी चिंता न करो।" एकाएक बालसेन चिल्लाया। वर्षाण ने उसके गाल पर एक चाँटा लगाया और उसका पूरा सिर हिल गया।

वतीरा वसुधा और कौस्तुभ की ओर बढ़ गया।

वसुधा ने कौस्तुभ का हाथ पकड़ा और उसे हिलाया, "हमें जाना होगा। कोई अन्य विकल्प नहीं।" कहकर वह स्वयं भी दौड़ पड़ी और कौस्तुभ का भी हाथ खींचने लगी।

कौस्तुभ ने इस बार कोई प्रतिरोध नहीं किया और दोनों उस स्थान से दौड़ पड़े। वह दोनों एक गली के मुहाने पर खड़े थे अतः अगले ही क्षण वह दूसरी गली में मुड़ गए और कुछ क्षणों पश्चात तीसरी गली में।

वर्षाणों ने उनका पीछा करने का प्रयास किया परंतु उन्हें ढूँढ नहीं पाए।

दोनों लगभग एक घड़ी तक प्रसान नगर की गलियों में बढ़ते रहे। वर्षाणों से छिपकर कभी दौड़ते हुए, कभी चलते हुए; बिना किसी निश्चित लक्ष्य के। जब उन्हें यह निश्चय हो गया कि अब वर्षाण उनके पीछे नहीं है, तब वह एक स्थान पर रुके।

"हम बालसेन को मुक्त करा सकते थे।" कौस्तुभ ने कहा।

"संभवतः नहीं।" वसुधा ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा, "मत भूलो कि हम निःशस्त्र थे और वह वर्षाण अपने अन्य साथियों को भी संकेत दे सकते थे। कुछ ही समय में हम असंख्य वर्षाणों से घिर जाते।"

कौस्तुभ मौन रहा। स्पष्ट था कि वह बालसेन को इस प्रकार छोड़ कर नहीं आना चाहता था।

"मैं भी प्रसन्न नहीं हूँ।" वसुधा बोली, "परंतु हम अपने मुख्य लक्ष्य से नहीं भटक सकते। यहाँ प्रश्न पूरे नगर का है। कभी कभी हमें बड़े उद्देश्य के लिए ऐसे कठिन निर्णय लेने पड़ते हैं।"

कौस्तुभ ने मात्र सहमति में सिर हिलाया। “वह वर्षाण कह रहा था कि उसे हमें मात्र बंधक बनाने का आदेश मिला था। संभवतः वह बालसेन को मारे नहीं।”

वसुधा ने एक दीर्घ श्वास ली। “ईश्वर करे कि वह बालसेन को मात्र बंधक बनाये।” उसे ज्ञात था कि इसकी कोई निश्चितता नहीं थी। उन्हें और सावधान रहना चाहिए था।

वसुधा ने सावधान नेत्रों से चारों ओर देखा और बोली, “सूर्योदय बस होने ही वाला है। अब हम छिपकर आगे नहीं बढ़ सकते क्योंकि इस प्रकार सहज ही हम सबकी दृष्टि में आ जायेंगे। हमें पुनः अपना लक्ष्य निर्धारित करना होगा।”

“हमें यह भी ज्ञात नहीं कि हम नगर के किस भाग में हैं।” कौस्तुभ ने कहा, “परंतु इतना स्पष्ट है कि पुनः लौटने के लिए हमें उसी सुरंग तक जाना होगा। और यह कार्य मात्र रात्रि के समय हो सकता है।”

“परंतु रात्रि तो अभी अभी समाप्त हुई है। दिन में हम क्या करेंगे?” वसुधा ने पुनः अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई। भले ही उन्होंने वर्षाणों को पीछे छोड़ दिया हो परंतु उसके मन में अभी भी यह भय व्याप्त था कि कहीं वह किसी दिशा से एकाएक आ न जाएँ।

“दिन में हम वह करेंगे जिसके लिए हम नगर में आये हैं। हम नगर में विचरण कर सूचना एकत्र करेंगे। और हम सरलता से पकड़े न जाएँ, इस कारण हम अधिकांश समय हाटों और सार्वजनिक स्थानों पर व्यतीत करेंगे।”

वसुधा ने कोई प्रतिकार नहीं किया। उसने कुछ प्रसान वासियों को अपने अपने भवनों से निकलते हुए निकलते हुए देखा था, अर्थात उन्हें बंधक नहीं बनाया गया था। वह भी उनमें से एक बनकर पर्याप्त सूचना एकत्र कर सकते थे।

“अब यहाँ से चलो,” कौस्तुभ ने कहा, “कोई हमें इस स्थान पर रुका हुआ देखेगा तो संदेह करेगा।”

दोनों एक बार पुनः आगे बढ़ गए। कुछ दूर बढ़ने के पश्चात वह सावधानी पूर्वक एक हाट में प्रवेश कर गए और सामान्य नागरिकों में घुल मिल गए। हाट में अधिक भीड़ नहीं थी, साथ ही कई वर्षाण भी वहाँ घूम रहे थे, परंतु किसी का भी ध्यान उनकी ओर नहीं था।

कौस्तुभ ने ध्यान दिया कि नागरिकों पर कोई प्रतिरोध नहीं था, परंतु वह भयभीत अवश्य दिखाई दे रहे थे। और उसे एक भी प्रसान नगर का सैनिक नहीं दिख रहा था। *संभवतः उन्हें बंधक बनाया गया था।* वह मन ही मन अनुमान लगाने लगा।

वह दोनों स्वयं को सामान्य नागरिक प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हुए कुछ दूर ही बढ़े थे कि एक वर्षाण ने उन्हें रोक लिया।

“कौन हो तुम दोनों?” उस वर्षाण ने पूछा, “इस नगर के तो नहीं प्रतीत होते।”

जब वर्षाण ने उन्हें रोका था तब वसुधा को प्रतीत हुआ कि अब वह किसी भी दशा में बच नहीं सकते। परंतु उचित समय पर आकर एक युवती ने रहस्यमय तरीके से उन्हें बचा लिया।

अब वह उन्हें किसी स्थान पर ले जा रही थी और दोनों उसपर इतना विश्वास कर रहे थे कि बिना कोई प्रश्न पूछे उसके साथ जा रहे थे।

“तुमने उस वर्षाण से यह क्यों कहा कि हम साफ सफाई का कार्य करते हैं।” वसुधा ने रम्या से पूछा।

रम्या ने सरल भाव से अपने कंधे उचका दिए। “कुछ और व्यवसाय बताने पर वह उस विषय में पूछ सकता था। मुझे उस क्षण यही उत्तर सूझा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति कम से कम साफ सफाई का कार्य तो कर ही सकता है।”

कौस्तुभ मन ही मन मुस्कराया। *वह युवती उन्हें नगर के विषय में पर्याप्त सूचना दे सकती है और वह उसपर विश्वास भी कर सकते हैं।*

“हम कहाँ जा रहे हैं?” वसुधा ने पुनः प्रश्न किया।

“मेरे भवन,” रम्या ने कहा, “और शेष बातें वहीं होंगी।”

अध्याय 24
योजना

प्रसान नगर की गलियों में बढ़ रहे कौस्तुभ और वसुधा शांत थे। कौस्तुभ ने स्वभावतः मार्ग में दिख रहे व्यक्तियों का अवलोकन किया। नगरवासी अपने दैनिक कार्य कर रहे थे परंतु नगर में एक उदासीनता था। उसके मस्तिष्क में कई प्रश्न थे परंतु रम्या ने कहा था कि शेष बातें उसके भवन पर होंगी।

रम्या उन दोनों को लेकर शीघ्र ही अपने भवन पहुँची। इस छोटे से अंतराल में वह निरंतर प्रार्थना कर रही थी कि मार्ग में उन्हें पुनः कोई वर्षाण प्रहरी न मिल जाये। भवन के द्वार पर पहुँचकर उसने एक बार चारों ओर सजग दृष्टि से देखा, उसके पश्चात द्वार खोला और वसुधा और कौस्तुभ को भीतर आने का निमंत्रण दिया।

वसुधा ने ध्यानपूर्वक उस भवन को देखा, कई स्थानों पर टूटी हुई दीवारें, टूटी हुई छत और गिनती के बर्तन। इनके अतिरिक्त उस भवन में दैनिक उपयोग की कोई अन्य वस्तु नहीं थी।

“यह मेरा भवन नहीं है।” रम्या ने कहा, मानो वह वसुधा के मन में चल रही बातों को समझ गयी हो, “मेरा भवन तो वर्षाणों द्वारा लगायी गयी अग्नि की भेंट चढ़ गया।”

रम्या ने द्वार पर भीतर से कुंडी लगायी और उन्हें पर्यंक पर बैठने का संकेत किया।

“कौन हो तुम दोनों?” उसने पूछा।

कौस्तुभ ने स्वयं का और वसुधा का वास्तविक परिचय दिया और वहाँ आने का उद्देश्य बताया। उसकी बातें सुन पहले तो रम्या के मुख पर आश्चर्य के भाव आये और उसके पश्चात दुःख के।

“क्या हुआ?” वसुधा ने उसके परिवर्तित हुए भावों पर ध्यान देते हुए प्रश्न किया, “क्या तुम हमें कुछ बताना चाहती हो?”

“जिस युवती ने युवराज की मृत्यु की सूचना नगर पाल को दी थी, वह मैं ही हूँ।” रम्या ने धीरे से कहा।

यह सुनते ही वसुधा ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

“यश को किसने मारा था? यश वास्तव में यहाँ क्या कार्य कर रहा था? वर्षाण नगर के बाहर खड़े सैनिकों पर आक्रमण क्यों नहीं कर रहे?”

वसुधा के नेत्र अश्रुओं से भर गए। *वह उसी नगर में खड़ी थी जहाँ यश ने अपने जीवन की अंतिम श्वास ली थी।* यश से संबंधित जितने भी प्रश्न उसके मस्तिष्क में थे उनके उत्तर प्राप्त होने की संभावना मात्र से ही वह अत्यंत व्याकुल हो गयी।

“आपको इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होंगे।” रम्या ने कहा, “परंतु उसके लिए हमें कहीं और जाना होगा।”

“कहाँ?” कौस्तुभ ने संदेहपूर्ण स्वर में रम्या से पूछा, “हम अभी-अभी तो यहाँ आये हैं।”

“हम यहाँ इस कारण उपस्थित हैं क्योंकि नगर में तुम दोनों सुरक्षित नहीं हो। मैं तुम्हें पर्याप्त सूचना दे सकती हूँ। परंतु...” रम्या कुछ क्षणों के लिए रुकी और पुनः बोली, “...‘वह’ तुम्हें मुझसे भी अधिक सूचना दे सकते हैं।”

“कौन हैं ‘वह’?” कौस्तुभ मन ही मन झुंझलाया।

“युवराज नगर में कई गुप्तचरों के साथ कार्य कर रहे थे। उनमें से अधिकांश तो वर्षाणों द्वारा मारे गए, परंतु कुछ हैं जो अभी भी जीवित हैं।” रम्या ने बताया। “वह नगर में ही विभिन्न स्थानों पर छिपे हुए हैं और वर्षाणों का सामना करने के लिए शक्ति एकत्र कर रहे हैं। वह तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर उचित रूप से दे सकते हैं।”

“वर्षाणों ने युवराज के गुप्तचरों का वध क्यों किया?” वसुधा ने पूछा, “और उससे भी मुख्य प्रश्न कि उन्हें सभी गुप्तचरों के विषय में ज्ञात कैसे हुआ?”

रम्या ने धीरे से श्वास ली और बोली, “क्योंकि उनमें से एक वर्षाणों से मिला हुआ था। और उसने ही युवराज यशवर्धन का वध किया था।”

रम्या की आँखों के समक्ष वह दृश्य घूम गया। वह उसके जीवन की सबसे स्याह रात्रि थी। न मात्र यश अपितु उस रात्रि के अंधकार में उसका पूरा परिवार नष्ट हो गया था। उस रात्रि उसने एक वर्षाण का वध किया था। और जब वह रात्रि समाप्त हुई तब उसका अस्तित्व पूर्ण रूप से परिवर्तित हो चुका था।

वह असहाय थी, अनाथ थी, अक्षम थी। परंतु उसने स्वयं परिस्थितियों को परिवर्तित करने का निर्णय किया। शीघ्र ही उसे उन शेष सैनिकों के विषय में ज्ञात हुआ जो छिप कर पुनः संगठित हो रहे थे और वह भी उनकी सहायता करने लगी।

“नगर में हमारे साथ एक अन्य युवक भी आया था।” कौस्तुभ ने कहा तो उसका स्वर सुनकर रम्या अपनी स्मृतियों से बाहर आई।

“परंतु हमारी असावधानी के कारण वह एक वर्षाण द्वारा बंधक बना लिया गया।” कौस्तुभ ने उसे बालसेन के बंधक बनने की सारी घटना संक्षिप्त में बताई।

“बालसेन!” रम्या ने धीरे से कहा। उसका मुख श्वेत हो गया।

“क्या हुआ? तुम उस युवक से परिचित हो क्या?” कौस्तुभ ने प्रश्न किया, “क्या तुम इस विषय में हमारी कोई सहायता कर सकती हो?”

“बालसेन का परिवार मेरे भवन के निकट ही रहता था।” रम्या ने कहा “वह स्वयं एक निर्भीक युवक है, इसी कारण वह तुम्हारे साथ आने को तैयार हो गया होगा। यदि वर्षाण के मुख से तुमने सुना है कि उन्हें मात्र बंधक बनाने का आदेश मिला है तो इसकी पूर्ण संभावना है कि वह अभी जीवित होगा।”

“इस संभावना का कोई कारण?” वसुधा ने पूछा। वह अपने हृदय में झूठी उम्मीद नहीं पालना चाहती थी।

“उसके जीवित होने की संभावना है क्योंकि वर्षाण इस समय एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य में व्यस्त हैं। साथ ही आक्रमण के पश्चात वह लोगों को मारने के स्थान पर बंधक बना रहे हैं, युद्धबंदियों की भांति।”

“ऐसा क्यों?” वसुधा ने पूछा, “यह तो वर्षाणों के स्वभाव से मेल नहीं खाता।”

“मेरा अनुमान है कि उन्हें ऐसा करने का आदेश मिला है। यदि नगर में लोगों को अधिक मात्रा में अपने परिचितों के शव मिलेंगे तो वर्षाणों के प्रति उनका भय क्रोध में परिवर्तित हो जायेगा जो कि उनके लिए एक विकट समस्या बन जाएगी।” रम्या ने कहा, “उनका लक्ष्य प्रसान नगर से आगे बढ़ना है इसी कारण वह नगर में स्वयं की कम से कम क्षति कराना चाहते हैं।”

वसुधा ने मात्र सहमति में सिर हिलाया। उसे अनुभव हुआ कि वर्षाणों के विषय में उसे जो भी ज्ञात था वह मात्र दूसरों से सुनकर ही ज्ञात था। कुछ वास्तविकता, कुछ कथाएँ जो वर्षों से लोगों के मध्य फैली हुई थीं। वर्तमान समय में वर्षाण उन कथाओं से भिन्न रणनीति अपना रहे थे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि वर्तमान में उनका नेतृत्व भिन्न था।

“बालसेन को किस स्थान पर बंधक बनाया गया है, यह ज्ञात करना कठिन है।” रम्या बोली, “परंतु संभवतः गुप्त आश्रय में छिपे सैनिक हमारी कोई सहायता कर पायें।”

“उचित है।” कौस्तुभ ने वसुधा की ओर देखते हुए कहा, “हम वहाँ जायेंगे।”

आधी घड़ी पश्चात वह तीनों एक गुप्त आश्रय में थे। यद्यपि रम्या दिन के समय कभी भी वहाँ नहीं जाती थी परंतु आज की स्थिति अपवाद थी। मार्ग में वह पूर्ण रूप से सावधान थी कि कोई अन्य उस स्थान के विषय में न ज्ञात कर सके।

रम्या ने वसुधा और कौस्तुभ का परिचय जगदेव से करवाया। वह उत्तराँचल की सेना का एक पूर्व दलपति और यशवर्धन द्वारा नियुक्त उन गुप्तचरों में से एक था जो वर्षाणों के आक्रमण में जीवित बच गए थे। इसके अतिरिक्त वह गुप्त रूप से संगठित हो रहे सैनिकों का अकथित अगुआ भी था।

उत्सुक वसुधा ने सर्वप्रथम उससे यही प्रश्न किया कि यश उन सभी गुप्तचरों के साथ वहाँ क्या कर रहा था। जगदेव ने बताना आरंभ किया, “आरंभ में हमें मात्र यही आदेश थे कि हम सामान्य नागरिकों की भांति नगर में रहें और वर्षाणों की गतिविधियों पर ध्यान दें। यदि हमें कोई अनुपयुक्त वस्तु अथवा घटना दिखे तो हम उसके विषय में युवराज को सूचित करें। परंतु इतने प्रयासों के पश्चात भी हमें वर्षाणों के वास्तविक उद्देश्य की भनक नहीं लगी, उस रात्रि तक जब युवराज का वध हुआ।”

रम्या कुछ नहीं बोली। अपने मृत भाई के विषय में बातें करना उसके लिए सरल नहीं था।

“वर्षाणों का उद्देश्य था क्या?” कौस्तुभ ने पूछा, “वह ऐसा क्या कर रहे थे जो संदेहात्मक था?”

“वर्षाणों का उद्देश्य आरंभ से ही आक्रमण करना था। कई वर्षाण मात्र इसी कारण यहाँ आकर बस रहे थे। हालाँकि कई ऐसे भी वर्षाण थे और हैं, जिनका इस योजना से कोई सम्बन्ध नहीं था।” जगदेव ने बताया। “आक्रमण के उद्देश्य से नगर में रह रहे वर्षाण वृषाण देश से कुछ अत्यंत विशाल बक्से मंगा रहे थे जिनमें वास्तव में योद्धा वर्षाण भरे रहते थे। एक नियत समय पर वह नगर पर बाहर और भीतर दोनों प्रकार से आक्रमण करना चाहते थे।”

“परंतु बक्से में भरकर क्यों? सामान्य प्रकार से क्यों नहीं?”

“क्योंकि यदि इतने सारे वर्षाण योद्धा प्रसान नगर में आते तो किसी के भी मस्तिष्क में यह प्रश्न आ जाता कि वह यहाँ क्यों आये हैं।” जगदेव ने बताया, “व्यापारी वर्षाण और योद्धा वर्षाण में सरलता से अंतर किया जा सकता है।”

“परंतु यदि मात्र यही कार्य था, वृषाण देश से बक्से मँगवाना तो वर्षाण इतने दिनों पूर्व से ही नगर में आ आकर क्यों बस रहे थे?” कौस्तुभ ने पुनः प्रश्न किया।

उसका प्रश्न सुनकर जगदेव धीमे से मुस्कराया, “इसके कई कारण है। परंतु मुख्य कारण यह है कि उन्हें बक्से गुप्त रूप से मंगाने थे। पोताश्रय पर प्रत्येक आयातित अथवा निर्यातित वस्तु की जाँच की जाती है इसलिए यह सरल कार्य नहीं था। अपने उद्देश्य में सफल होने के लिए उन्होंने कई अधिकारियों को धन का प्रलोभन दिया, कुछ को कृत्रिम रुप से अस्वस्थ किया। इस प्रकार जब-जब वह बक्से नगर में आये उनकी जाँच नहीं की गयी।”

“परंतु इस षड्यंत्र के विषय में कब ज्ञात हुआ?” इस बार प्रश्न वसुधा ने पूछा। वह स्वयं को संभाल चुकी थी। *वह युद्ध के मध्य थी और युद्ध में भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता।* वैसे भी उसे प्रतीत हो रहा था कि यह विषय जितना सरल लग रहा था, वास्तव में उतना ही जटिल है।

“वर्षाणों ने नगर पर आक्रमण का एक दिन तय किया हुआ था। हमें इस षड्यंत्र के विषय में मात्र एक दिन पूर्व ज्ञात हुआ। वास्तव में युवराज को इस विषय में ज्ञात हुआ,” जगदेव ने वसुधा के मनोभावों का अवलोकन करते हुए कहा, “परंतु उस समय तक भी कुछ बक्से नगर में आ चुके थे। युवराज ने इसकी सूचना उत्तराँचल पहुँचानी चाही परंतु उससे पूर्व ही उनका वध कर दिया गया।”

“किसके द्वारा?”

“वह हममें से ही एक था।” जगदेव ने कहा। वह असहज प्रतीत हो रहा था। “स्वयं युवराज द्वारा नियुक्त, और उनके द्वारा ही चयनित हमारा प्रमुख। परंतु न जाने कब और किस प्रकार वह वर्षाणों से जाकर मिल गया।”

जगदेव ने वसुधा की मुट्ठियाँ क्रोध के कारण कसती हुई देखीं। उसने आगे बोला, “युवराज की मृत्यु के पश्चात नगर में पूर्व में ही प्रवेश कर चुके वर्षाणों ने नगर पर आक्रमण कर दिया। अगले दिन वह सभी और नगर में छिपकर रह रहे अन्य वर्षाण सैनिक पूरे नगर में उत्पात मचाते रहे। सबसे अधिक क्षति उन्होंने पोताश्रय के निकट नियुक्त प्रहरियों को पहुँचायी।”

“क्यों?” कौस्तुभ ने प्रश्न किया।

“क्योंकि अगले दिन संध्या समय वर्षाणों ने नगर पर आक्रमण कर दिया। वह कई जलयानों में भर कर सिंधु के उस पार से आये थे। पहले से ही स्तब्ध सैनिक एक साथ आये इतने वर्षाणों का सामना नहीं कर सकते थे, इसी कारण हमारा पक्ष तनिक दुर्बल हो गया। परंतु हम उन्हें अभी भी पर्याप्त क्षति पहुँचा चुके थे, इसी कारण उन्होंने प्रसान नगर से आगे बढ़ने का विचार स्थगित कर दिया और नगर के मुख्य द्वार को बंद कर दिया जिससे कोई बाहरी सहायता यहाँ तक न पहुँच सके।”

“परंतु वह अभी भी क्यों रुके हैं? अब तो उनका नगर पर पूर्ण नियंत्रण है?” कौस्तुभ ने वह प्रश्न पूछा जिसका उत्तर जानने के लिये वह वहाँ तक आये थे। जिसका उत्तर नगर के बाहर खड़ी सिंधुपद की सेना में किसी को नहीं ज्ञात था।

“क्योंकि वह असाक की प्रतीक्षा कर रहे हैं?” जगदेव ने धीरे से कहा।

“असाक!” कौस्तुभ ने चौंकते हुए पूछा, “वृषाण देश का राजा?”

“हाँ! वही।” जगदेव बोला, “वह अब कोई जोखिम नहीं लेना चाहता, इसी कारण वह स्वयं नगर में आकर अपनी सेना का नेतृत्व करेगा। यह बताना तो आवश्यक नहीं कि उसके साथ कुछ अतिरिक्त वर्षाण सैनिक भी आयेंगे। उसके पश्चात ही वह नगर द्वार खोलेंगे और आक्रमण करेंगे।”

कौस्तुभ ने वसुधा की ओर देखा, वह भी स्थिति की गंभीरता को समझ रही थी। अरिदमन स्वयं इसी विषय में चिंतित थे। *यदि ऐसा हुआ तो वर्षाणों को रोकना कठिन हो जायेगा।*

"परंतु हम ऐसा नहीं होने देंगे।" रम्या ने उनके मध्य छाई शांति को भंग करते हुए कहा, "हम उन्हें नगर में ही रोक देंगे।" उसके स्वर में एक दृढ़ता थी, क्रोध था और प्रतिशोध की भावना भी।

कौस्तुभ और वसुधा दोनों ही रम्या की ओर मुड़े। असाक की समस्या साधारण नहीं थी, तो रम्या और कुछ सैनिक किस प्रकार उस विकट समस्या का सामना करेंगे?

"किस प्रकार?" कौस्तुभ ने पूछा।

"असाक और उसकी सेना को रोकने के लिए ही हम अपनी शक्ति एकत्र कर रहे हैं।" उत्तर जगदेव ने दिया।

"रम्या ने हमें बताया है कि किस प्रकार वर्षाण सैनिकों को भवनों में बंधक बनाये हुए हैं और आप लोग उन्हें मुक्त करा रहे हैं।" कौस्तुभ बोला, "परंतु क्षमा करें, क्या सभी सैनिकों को एकत्र करने के पश्चात भी आप असाक और वर्षाणों को रोकने में सफल हो पायेंगे?"

जगदेव ने कोई उत्तर नहीं दिया। इसका अर्थ था कि वह अपने अभियान की सफलता को लेकर आश्वस्त नहीं थे, कौस्तुभ ने अनुमान लगाया।

"हमारे पास यही एकमात्र विकल्प है।" जगदेव ने दृढ़ स्वर में कहा, "पिछली बार हम असावधान थे, इस बार हम सज्ज हैं।"

"समस्या संख्या की है। आपकी संख्या वर्षाणों से अत्यधिक कम है।" कौस्तुभ ने कहा, "और जहाँ तक मेरा अनुमान है शस्त्र भंडारों पर भी उनका अधिकार होगा, अर्थात आपके पास पर्याप्त अस्त्र शस्त्र भी नहीं होंगे।"

जगदेव ने धीरे से अपना सिर हिलाया।

"आप सभी की इच्छाशक्ति और वीरता प्रशंसनीय है।" कौस्तुभ ने पुनः कहा, "संभव है कि आप सभी असाक को रोक दें परंतु यह भी संभव है कि आप सभी असाक तक पहुँचने से पूर्व ही मारे जाएँ।"

जगदेव ने तत्क्षण उत्तर नहीं दिया। कौस्तुभ की बातों में सत्यता थी। वह बोला, "तब हमें कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए? सिंधुपद की सेना नगर के बाहर है इस विषय में मुझे अभी अभी तुम्हारे द्वारा ही ज्ञात हुआ है। हमारे पास कोई मार्ग नहीं था जिससे हम उनकी स्थिति ज्ञात कर सकते। सत्य कहूँ तो इतने दिनों पश्चात हमें उनके आने की कोई उम्मीद ही नहीं थी। हम हाथ पर हाथ धरे तो नहीं बैठे रह सकते थे।"

"आपने जो किया पूर्णतः उचित किया। अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु प्रत्येक सैनिक यही करता। परंतु अब परिस्थिति भिन्न है, सहायता के लिए सिंधुपद की सेना बाहर खड़ी है। पूर्ण रूप से सज्ज, युद्ध हेतु पर्याप्त अस्त्र शस्त्र सहित। आपको अपनी योजना मात्र परिवर्तित करनी होगी।" कौस्तुभ ने आगे बोलने से पूर्व एक बार जगदेव को देखा। वह उसकी बातों से पूर्णतः सहमत था। उसने जगदेव से पूछा, "असाक नगर में कब आने वाला है?"

असाक मात्र एक दिन पश्चात ही नगर में आने वाला था। सैनिकों ने कुछ वर्षाणों से बलात यह सूचना एकत्र की थी, अतः इसके गलत होने की संभावना नहीं थी। जगदेव अब कौस्तुभ की बातों से पूर्णतः सहमत था कि उन्हें समस्या को नए दृष्टिकोण से देखना होगा। वह शांत अपने विचारों में डूबा हुआ बैठा था।

"परंतु हम करें क्या?" रम्या ने कहा, "हम असाक को आगे नहीं बढ़ने दे सकते।"

"नहीं। यही तो उनकी योजना है कि वह पूर्ण रूप से सज्ज होकर अपनी सुविधानुसार द्वार खोलें और बाहर खड़े सैनिकों पर आक्रमण कर दें।" जगदेव बोला, "परंतु यदि हम स्थिति को उलट दें तो?"

"अर्थात वर्षाणों से पूर्व हमारे सैनिक द्वार तोड़कर आक्रमण कर दें?" वसुधा ने कहा, "उचित है। हालाँकि मुझे नहीं ज्ञात कि द्वार तोड़ने में कितना समय लगेगा, परंतु हम अभी बाहर जाकर सिंधुपद की सेना को सब समझा सकते हैं।"

"नहीं! यह आक्रमण कुछ समय पश्चात होना चाहिए।" जगदेव ने कहा। वह अपने मस्तिष्क में सभी संभावनाओं और उनके परिणामों पर विचार कर रहा था, "मैं चाहता हूँ कि हम नगर में छिपे अपने सैनिकों को भी यह सूचना दे दें। इससे हम वर्षाणों पर दो दिशाओं से आक्रमण कर सकते हैं।"

कौस्तुभ ने भी जगदेव द्वारा सुझाये गए विकल्प के विषय में सोचा। सिंधुपद की सेना मात्र इसी कारण द्वार नहीं तोड़ रही थी क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं प्रसान वासी बंधक न हों और उनके आक्रमण की दशा में वर्षाण उन्हें आगे कर दें। परंतु ऐसा कुछ नहीं था।

"परंतु द्वार तोड़ना सरल नहीं होगा।" रम्या बोली, "द्वार तोड़ने का प्रयास करते ही प्राचीर पर खड़े प्रहरी वर्षाण अन्य वर्षाणों को सजग कर देंगे।"

"तो क्या हुआ?" वसुधा ने कहा, "हमारे पास पर्याप्त सैनिक हैं। हम अभी तक किसी अन्य कारण से ऐसा करने से रुके हुए थे।"

"नहीं।" कौस्तुभ ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, "इस योजना से भी अधिक लाभ नहीं होगा। एक अन्य विकल्प भी है जिससे हमारे सैनिकों की क्षति कम से कम हो।"

"परंतु ऐसा तो तभी संभव है जब द्वार पहले से ही खुला हुआ हो।" जगदेव ने कौस्तुभ की ओर देखते हुए कहा, "और द्वार को मात्र नगर से भीतर से खोला जा सकता है।"

"क्या यह संभव है?" कौस्तुभ ने पूछा, "कि हम नगर के भीतर से द्वार खोल दें।"

"द्वार के निकट बहुत अधिक मात्रा में वर्षाण हैं।" जगदेव ने विचार मग्न स्वर में कहा।

"क्या यह संभव है?" कौस्तुभ ने पुनः अपना प्रश्न दुहराया।

जगदेव ने तत्क्षण कोई उत्तर नहीं दिया। *क्या यह संभव था?* अवश्य। परंतु इसमें संकट बहुत अधिक था। *परंतु वह तो सीधा वृषाण देश की मुख्य सेना से युद्ध करने वाले थे, यह तो उसके समक्ष बहुत छोटा कार्य था।*

जगदेव ने एक गहरी श्वास ली और कहा, "यह संभव है। परंतु इस कार्य के लिए भी हमें सैनिकों को एकत्र करना होगा।"

उन सभी ने सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया कि नगर के सैनिकों को एकत्र कर द्वार को भीतर से खोला जायेगा। एक निश्चित समय पर। ठीक उसी समय सिंधुपद की सेना भी सज्ज रहेगी और द्वार खुलते ही वह भी नगर में प्रवेश कर जायेंगे।

परंतु वह समय कौन सा हो, यह मुख्य समस्या थी। कुछ और विचार विमर्श करने के पश्चात अंततः उन्होंने निर्णय लिया कि यह कार्य अगली रात्रि को किया जाये। नगर के सैनिकों को एकत्र होने के लिए और द्वार के बाहर खड़े सिंधुपद के सैनिकों को सज्ज होने के लिए इतना समय देना आवश्यक था। उसके अगले ही दिन असाक नगर में आने वाला था अतः इस कार्य को और अधिक टाला भी नहीं जा सकता था।

आक्रमण के लिए उन्होंने रात्रि के अंतिम प्रहर का चयन किया था क्योंकि उस समय लोग गहरी निद्रा में सोते हैं और प्रहरी इत्यादि भी थके हुए और निश्चिंत रहते हैं।

अगला महत्वपूर्ण कार्य था पुनः नगर के बाहर जाकर प्रतापसेन और अरिदमन को सूचित करना। परंतु कौस्तुभ ने निर्णय लिया कि वह नगर के बाहर नहीं जायेगा और द्वार को भीतर से खोल रहे सैनिकों की सहायता करेगा।

वसुधा को कौस्तुभ के इस निर्णय से कोई आपत्ति नहीं थी। उसे अकेले ही लौटना था और इसके लिए वह रात्रि की प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि रम्या के अनुसार दिन के समय नगर में इतनी दूर जाने में बहुत अधिक संकट था।

रम्या ने उन्हें वहाँ उपलब्ध भोजन दिलवाया, जो तनिक भी स्वादिष्ट नहीं था, और संध्या समय आने को कह कर पुनः नगर में लौट गयी। नगर में अपने दैनिक कार्यों के साथ साथ कई स्थानों पर उसे सूचना भी देनी थी।

जगदेव उसी गुप्त आश्रय में उपलब्ध कुछ अन्य सैनिकों को समझा रहा था कि किस प्रकार यह सूचना चयनित समय से पूर्व सब तक पहुँचायी जा सके। यह कहना गलत नहीं था कि इस नयी और सुदृढ़ योजना से सैनिकों में भी एक नवीन उत्साह आ गया था।

भोजन करने के पश्चात वसुधा और कौस्तुभ एकांत में बैठे हुए थे। रात्रि से पूर्व उनके करने के लिए कोई विशेष कार्य भी नहीं था। रात्रि भर जगे रहने के कारण कौस्तुभ कुछ समय के लिए सोना चाहता था क्योंकि अगली रात्रि होने वाले युद्ध में शारीरिक और मानसिक शक्ति दोनों की ही आवश्यकता थी।

“तुमने नगर में रुकने का निर्णय क्यों लिया?” वसुधा ने उससे पूछा।

“यह सुनिश्चित करने के लिए कि कल रात्रि में द्वार खोल दिया जाये।” कौस्तुभ बोला, “ऐसा नहीं है कि मुझे प्रसान नगर के सैनिकों पर कोई संदेह है, परंतु यदि नगर के बाहर खड़ी सेना से भी कोई व्यक्ति उनके साथ रहेगा तो उनका उत्साह बढ़ा रहेगा। एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव की भांति।”

वसुधा धीमे से मुस्करायी, “मैं भी तो नगर के बाहर खड़ी सेना का ही भाग हूँ। यह भी तो संभव था कि मैं नगर में रुक जाती और तुम पुनः लौट जाते।”

कौस्तुभ ने उसे ध्यान से देखा और उसकी मुस्कान के रहस्य को समझना चाहा। *क्या सिद्ध करना चाहती है वह?* परंतु उसे अपने अंतर्मन के इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। वह बोला, “नगर में रुकने वाले को वर्षाणों से युद्ध करना है और इसमें संकट है। हालाँकि संकट पुनः लौटने में भी है, परंतु मैंने जगदेव से आग्रह किया है कि वह तुम्हारे साथ किसी अन्य को भी सहायता के लिए भेज दे।”

“यह तो अनुचित उत्तर है।” वसुधा ने कहा, “तुम्हें ज्ञात है कि मैं यहाँ युद्ध में भाग लेने आई हूँ और लूंगी भी, संकट तो उसमें भी है।”

कौस्तुभ ने एक गहरी श्वास ली। अपने प्रश्न का उत्तर वसुधा को भी ज्ञात था परंतु वह उसके मुख से सुनना चाहती थी। “अरिदमन ने मुझसे आग्रह किया था कि मैं प्रयास करूँ कि तुम सकुशल लौट जाओ। मैं मात्र उनके आग्रह का सम्मान कर रहा था।”

वसुधा मौन हो गयी। अरिदमन के स्वभाव से वह अपरिचित नहीं थी। कुछ समय शांतिपूर्वक विचार करने के पश्चात उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसे नगर में आने का हठ नहीं करना चाहिए था। वह यशवर्धन के गुरु थे और वह उनका अत्यधिक सम्मान करता था। अरिदमन उससे अधिक अनुभवी थे और उसे भी उनकी बात सुननी चाहिए थी, वसुधा ने सोचा।

अरिदमन का उसकी सुरक्षा के प्रति चिंतित होना समझ आता था, वसुधा के मन में यह विचार आया, परंतु कौस्तुभ ने उनकी बात क्यों मानी। वह तो उसकी सुरक्षा के लिए बाध्य नहीं था।

उसने अपने जीवन में जितने भी व्यक्ति देखे थे उनके प्रत्येक उचित अनुचित कार्य में उनका कुछ लाभ अवश्य निहित रहता था। परंतु वह उन सबसे भिन्न था।

वसुधा ने उसकी ओर ध्यान से देखा। वह गहनता से कुछ विचार कर रहा था, परंतु उसे अपनी ओर देखता पाकर वह भी सजग हो गया।

कौस्तुभ ने अपनी भौंहें उठाई, मानो वसुधा से पूछ रहा हो, *क्या हुआ? क्या तुम्हारे मन में कोई प्रश्न है?*

वसुधा ने कुछ क्षणों तक उसे पुनः ध्यान से देखा और पूछा, “तुमने पिताश्री से मुझसे विवाह का वचन क्यों लिया था?”

वसुधा को उसकी आँखों में स्पष्ट दिखा कि वह कुछ कहने के लिए संघर्ष कर रहा है, संभवतः उचित शब्दों का चयन करने के लिए। परंतु वह कुछ कह पाता इससे पूर्व जगदेव उनके निकट बढ़ आया और बोला, “सभी व्यवस्थाएँ पूर्ण हो गयीं।”

कौस्तुभ और वसुधा ने अपनी दृष्टि उसकी ओर घुमाई।

“संध्या घिरते ही अत्रिक राजकुमारी के साथ भूमिगत सुरंग तक जायेगा, और उन्हें पहुँचा कर लौट आयेगा।” जगदेव ने कहा, “अत्रिक को नगर के मार्गों, और रात्रि के समय किस स्थान पर वर्षाण रहते हैं और किस स्थान पर नहीं, इन सब विषय में गहरी जानकारी है।”

वसुधा ने सहमति में सिर हिलाया। यह कार्य अकेले करने में बहुत संकट था और उसे वह मार्ग स्मरण भी नहीं था जिससे वह यहाँ तक आये थे। इसी कारण उसे अत्रिक की सहायता लेने में कोई समस्या नहीं थी। इसके अतिरिक्त वह सशस्त्र होकर जाने वाली थी जिससे एक रात्रि पूर्व जैसी कोई समस्या उत्पन्न होने पर सरलता से उसका सामना कर सके।

कौस्तुभ ने वसुधा ने कहा कि वह उसी स्थान पर छिपाए गये उसके धनुष को भी अत्रिक के साथ वापस भिजवा दे। *युद्ध में स्वयं के शस्त्र होने से अत्यंत सहजता रहती है।*

“तुम हमारे साथ आओ।” जगदेव ने कौस्तुभ को संबोधित करते हुए कहा, “द्वार पर आक्रमण की रणनीति पर चर्चा करनी है।”

कौस्तुभ ने सहमति में सिर हिलाया और अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। *विश्राम को कुछ समय के लिए टालना होगा।* उसने एक बार मुड़कर वसुधा को देखा और तत्पश्चात जगदेव के साथ उस स्थान से चला गया।

वसुधा ने अपनी आँखें बंद कर लीं और सिर दीवार से टिका लिया। *अंततः कौस्तुभ उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाया।* हालाँकि उसे सत्य का अनुमान था, परंतु वह स्वयं कौस्तुभ के मुख से उस सत्य को सुनना चाहती थी।

उसने कौस्तुभ से अपना ध्यान हटाया और वर्षाणों पर केंद्रित कर दिया। नगर के भीतर से उन्हें अभी तक कोई संकेत नहीं प्राप्त हुआ था कि इस आक्रमण से शतबाहु का भी कोई सम्बन्ध था। *तो क्या दक्षिणांचल और वृषाण देश का एक ही समय आक्रमण करना मात्र संयोग था? क्या प्रसान नगर पर आक्रमण करना मात्र असाक की योजना थी?*

अध्याय 25

असाक

सिंधु के पश्चिम में स्थित दर्मक वृषाण देश का प्रथम नगर था। जिस प्रकार उत्तराँचल में व्यापार का अधिकांश कार्य प्रसान नगर में होता था, उसी प्रकार वृषाण देश का सारा कार्य राजधानी दर्मक में सम्पन्न होता था।

उस नगर के भवन अत्यंत छोटे और अधिकांशतः अर्धनिर्मित और अव्यवस्थित थे, मात्र उस राजभवन के जो नगर के मध्य कीचड़ में खिले पुष्प की भांति खड़ा था। दर्मक के राजा के निवासस्थल की ऊँचाइयों पर स्वर्ण मढ़े हुए थे।

वृषाण देश का राजा असाक इस समय राजभवन के तीसरे तल पर स्थित अपने कक्ष में बैठा था। प्रथम तल पर मुख्यतः पाकशाला और सेवकों के कक्ष थे और दूसरे तल पर उसकी सात रानियों के कक्ष थे। इस समय वह भविष्य में अनिवार्य हो चुके युद्ध के विषय में विचार कर रहा था। कुछ ही समय पश्चात सिंधु पार करने के लिए उसका बेड़ा तैयार हो रहा था। विचार करते करते कब उसके माथे पर चिंता की सलवटें पड़ने लगीं, उसे भी नहीं ज्ञात हुआ।

उसकी आयु मात्र तीस वर्ष थी। उसका बलिष्ठ शरीर, चौड़े कंधे, मांसल भुजाएँ, घनी भौंहें और मूंछें और चौड़ा मस्तक उसके व्यक्तित्व को अन्य वर्षाणों से भिन्न बनाता था।

कक्ष में सेनापति त्रीमा ने प्रवेश किया तो उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसे ध्यानपूर्वक देखा।

“उम्मीद करता हूँ राजा असाक कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर रहे थे।” त्रीमा ने असाक के समक्ष सिर झुकाकर कहा।

“नहीं नहीं! मैं कोई कार्य नहीं कर रहा था।” असाक ने अपने विचारों की श्रृंखला को तिलांजलि देते हुए कहा, “कहो क्या बात है।”

त्रीमा वास्तव में असाक का भाई था। उसके पिता, वृषाण देश के पूर्व राजा ने तेरह विवाह किये थे जिनसे कुल उनतीस पुत्र थे। दो वर्षों पूर्व जब उसके पिता की मृत्यु हुई तब उसके अधिकांश भाई राजा बनने की होड़ में लग गए। भयानक रक्तपात हुआ और अंततः सत्ताईस भाइयों के वध के पश्चात असाक राजा बनने में सफल हो गया। हालाँकि त्रीमा उसका सौतेला भाई था, परंतु उसका साथ देने के कारण उसने उसे जीवित छोड़ दिया था।

“सैनिकों का एक दल सिंधु पार जाने के लिए तत्पर है। उनको पहुँचा कर कुछ जहाज वापस लौटेंगे। कल आखिरी बेड़े के साथ हम भी प्रस्थान करेंगे।” त्रीमा बोला।

“उत्तम!” असाक ने तनिक प्रसन्न होते हुए कहा, “तुम्हारे रहते मुझे इन सब बातों पर व्यर्थ समय नहीं नष्ट करना पड़ता।”

“यह तो राजा असाक का बड़प्पन है जो मुझे अपनी सेवा का अवसर दिया।” त्रीमा ने कहा। असाक ने उसे आदेश दिया था कि वह उसे भाई, भैया जैसे शब्दों से न संबोधित करे, अपितु सदैव राजा असाक कहकर संबोधित करे।

त्रीमा की बात सुन असाक मुस्कराया। उसके निकट फलों का एक थाल रखा हुआ था। उसने उसमें से एक फल उठाया और थाल को त्रीमा की ओर बढ़ा दिया। “बैठो! बेड़ों के लौटने तक तुम्हें कोई अन्य कार्य तो नहीं?”

“नहीं। कुछ छोटे मोटे कार्य हैं, परंतु उन्हें कुछ समय पश्चात भी पूर्ण किया जा सकता है।” त्रीमा ने बैठते हुए कहा। उसने थाल में रखे फल उठाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

“शतबाहु का कोई अन्य पत्र आया?” असाक ने पूछा।

“नहीं।” त्रीमा ने उत्तर दिया।

असाक ने कुछ क्षणों तक फल खाया और त्रीमा को देखते हुए बोला, “तुम कुछ चिंतित लग रहे हो।”

“ऐसी कोई बात नहीं है।” त्रीमा ने ऐसे स्वर में कहा जिससे यह सरलता से पुष्टि हो जाती थी कि वह चिंतित है। “परंतु शतबाहु के उद्देश्य को लेकर मेरे मन संदेह अवश्य है।”

“कैसा संदेह?” असाक ने बिना उसकी ओर देखे अनभिज्ञ भाव से कहा, “युद्ध में जाने से पूर्व मन में कोई संदेह नहीं रहना चाहिए।”

“जब एक वर्ष पूर्व शतबाहु यहाँ आया था तब उसने हमसे कहा था कि हम उसकी सहायता करें और उसके प्रतिदान में वह हमें प्रसान नगर का स्वामित्व दे देगा।” त्रीमा ने कहना आरंभ किया मानो वह कोई विवरण पढ़ रहा हो। “उसने हमें नियत समय और पूर्ण योजना भी बताई। परंतु अंततः उत्तराँचल के युवराज के कारण वह योजना मूल स्वरुप में क्रियान्वित नहीं हो पाई। हमें सिंधुपद को अपने अधिकार में लेना था परंतु हमें प्रसान नगर में ही रुकना पड़ा। अब उसने पुनः संदेश भेजा है कि हम प्रसान नगर से आगे बढ़ें और सिंधुपद पर आक्रमण करें।”

“तुमने सारी घटनाओं का सार अत्यंत उत्तम रुप से प्रस्तुत किया है।” असाक बोला, “अब बताओ तुम्हें संदेह क्या है?”

“शतबाहु की मूल योजना के अनुसार इस युद्ध अथवा आक्रमण में हमें अत्यधिक कम क्षति पहुँचनी थी परंतु इन परिवर्तित स्थितियों में भी हम उसकी सहायता क्यों कर रहे हैं? यदि वह अपने वचन पर टिका नहीं रहा तो?”

“अर्थात यदि उसने प्रसान नगर हमें नहीं दिया तो?” असाक ने उसे घूरकर देखा।

“हाँ।” त्रीमा ने सहमति में अपना सिर हिलाया। उसके लिए असाक और उसके द्वारा किये जा रहे कार्यों को समझना कठिन था और वह स्वयं भी उन्हें समझना नहीं चाहता था। क्योंकि प्रत्येक दशा में असाक का निर्णय ही अंतिम होता था, वह किसी भी प्रकार का प्रस्ताव, सुझाव अथवा हस्तक्षेप पसंद नहीं करता था। जब वर्षाणों को नियत समय से पूर्व आक्रमण करना पड़ा तब उसने ही उन्हें प्रसान नगर में रुकने का आदेश दिया था। उस समय त्रीमा को उसका यह निर्णय उचित प्रतीत हुआ था। असाक ने शतबाहु को सभी स्थितियों से अवगत कराया जिसके प्रतिउत्तर में उसने संदेश भेजा था कि वह नगर से आगे बढ़कर आक्रमण करें। और अब असाक न मात्र आक्रमण का आदेश दे रहा था अपितु स्वयं भी उसमें भाग लेने जा रहा था। यह उसके स्वभाव के विपरीत था।

त्रीमा की बात सुन असाक हँसा। उसने आधा खाया हुआ फल फेंक दिया और कहने लगा, “क्योंकि मैं इसे आरंभ से ही शतबाहु की नहीं, स्वयं की योजना मन कर चल रहा हूँ। तुम बताओ, तुम्हारा क्या अनुमान है कि शतबाहु उत्तराँचल पर आक्रमण क्यों कर रहा है?”

त्रीमा ने कुछ क्षणों तक विचार किया और बोला, “सामान्य दृष्टि से देखें तो ऐसा प्रतीत होगा कि वह अपने राज्य का विस्तार करने के लिए ऐसा कर रहा है। परंतु मेरा अनुमान है कि उसका उद्देश्य अवश्य व्यक्तिगत है अन्यथा वह इतना व्याकुल नहीं रहता कि हमसे सहायता माँगता। मैंने सुना है कि उसने तिरम के जल दस्युओं से भी सहायता ली थी।”

"सहायता तो उसे चाहिए ही थी क्योंकि उसके बिना वह उत्तराँचल की विशाल सेना को पराजित नहीं कर पाता। परंतु हाँ, तुम्हारा अनुमान पूर्णतः उचित है। उसका उद्देश्य अवश्य ही व्यक्तिगत है। संभवतः वह कीर्तिवर्धन से कुछ प्रतिशोध लेना चाहता हो या ऐसा ही कुछ। परंतु उससे मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि मैं अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए यह कार्य कर रहा हूँ।"

"किस प्रकार?" त्रीमा ने पूछा।

"मैं मात्र प्रसान नगर नहीं अपितु पूरे सिंधुपद को अपने अधीन करूँगा।" असाक बोला।

त्रीमा ने असाक के शांत और मुस्कराते हुए मुख को देखा। उसमें एक दृढ़ता थी। उसने मात्र तीस वर्ष की आयु में वह सब कुछ प्राप्त कर लिया था जो वृषाण देश का एक नागरिक प्राप्त कर सकता है। परंतु क्या सिंधुपद को अपने अधीन करने का स्वप्न इतना ही सरल होगा, त्रीमा ने सोचा। कहीं असाक अपनी क्षमता से अधिक उड़ान तो नहीं भर रहा। क्योंकि ऐसी उड़ानों के प्रायः एक जैसे ही परिणाम होते हैं - औंधे मुँह भूमि पर गिरना।

"सिंधुपद तक हमारी सेना पहुँचने के पश्चात कोई भी हमें वापस नहीं कर पायेगा।" असाक ने कहा।

"परंतु क्या शतबाहु ने ऐसा नहीं सोचा होगा?"

"अवश्य सोचा होगा। यदि नहीं तो मैं यही समझूँगा कि वह एक मूर्ख है जिसे राजनीति का कोई ज्ञान नहीं।" असाक अपने आसन पर पसर कर बैठ गया। "यह भी संभव है कि वह हमें प्रसान नगर न भी देता, परंतु उस दशा में वह हमारी क्षमताओं को बहुत कम करके आँकता। उसने जो भी विचार किया हो परंतु अब तो परिस्थितियाँ भी हमारे पक्ष में हैं। उत्तराँचल और दक्षिणांचल का युद्ध रुक अवश्य गया है परंतु समाप्त नहीं हुआ है। शीघ्र ही वह युद्ध पुनः आरंभ होगा और वह युद्ध कोई भी जीते यह तो निश्चित है कि विजयी पक्ष की भारी हानि होगी। और क्षतिग्रस्त दुर्बल सेना के साथ हमें सिंधुपद से वापस भेजना कठिन ही नहीं असंभव हो जायेगा। मैं शतबाहु के आदेश अनुसार इसलिए कार्य कर रहा हूँ क्योंकि उचित समय आने तक मैं उसे इस भ्रम में रखना चाहता हूँ कि जो भी घटित हो रहा है वह उसकी इच्छा के अनुसार घटित हो रहा है।"

असाक के पास वह सबकुछ था जो उसकी आयु में एक वर्षाण प्राप्त कर सकता है, परंतु कुछ और प्राप्त करने की उसकी क्षुधा अतृप्त थी। अपना शेष जीवन वह दर्मक के उस राजभवन में नहीं व्यतीत करना चाहता था। जिस दिन उसने राजा का पद ग्रहण किया था उसी दिन उसने निर्णय लिया था कि वह एकद्वीप पर आक्रमण करेगा। राज्य विस्तार उसकी क्षुधा को शांत कर सकता था।

परंतु यह सरल नहीं था। एकद्वीप पर कहाँ से और किस प्रकार आक्रमण किया जाये यह निर्णय करना ही कठिन था। बिना किसी योजना के एकद्वीप पर आक्रमण करना किसी शिला पर सिर टकराने जैसा था जिसमें मात्र स्वयं की ही क्षति थी। परंतु शीघ्र ही शतबाहु के रुप में अवसर स्वयं उसके समक्ष प्रकट हो गया। वह स्वयं जलमार्ग से वृषाण देश आया था अतः यह निश्चित था कि वह अत्यंत गंभीर है। और जब उसने अपनी सहायता के प्रतिदान में प्रसान नगर देने का प्रस्ताव किया तो वह मना नहीं कर पाया।

शतबाहु ने उसे भोजन का एक ग्रास देने का वचन दिया था परंतु उसकी दृष्टि पूरे भोजन पर थी।

अध्याय 26
पुनर्विवाह

उत्तराँचल -

"यह प्रश्न आपके भविष्य का है महाराज।"

कीर्तिवर्धन ने अपने समक्ष खड़े राज ज्योतिष अरिम की बातें ध्यान से सुनीं। *यह विचार तो उसके मस्तिष्क में आया ही नहीं।*

"अंततः आपको निर्णय लेना ही पड़ेगा कि उत्तराँचल का नया युवराज कौन बनेगा।" अरिम ने पुनः कहा।

कुछ ही समय पूर्व कीर्तिवर्धन को सूचना प्राप्त हुई थी कि उनकी सेना प्रसान नगर के बाहर पहुँच गयी है। इस समय उसकी दूसरी समस्या रत्नगढ़ में उपस्थित दक्षिणांचल की सेना थी, वह उसी विषय में उधेड़ बुन कर रहा था कि अरिम ने उसके समक्ष एक नयी समस्या रख दी।

"यश की मृत्यु के पश्चात तो यह पद रिक्त ही रहेगा। संभवतः समय बीतने के साथ किसी उपर्युक्त को मैं अपना दत्तक पुत्र स्वीकार कर लूँगा," कीर्तिवर्धन ने उदास स्वर में कहा, "अथवा जिससे वसुधा का विवाह होगा, वही युवराज का पद ग्रहण करेगा।"

"इन सभी विकल्पों के अतिरिक्त एक अन्य विकल्प भी शेष है।"

"कौन सा विकल्प?" कीर्तिवर्धन ने पूछा।

उत्तर देने से पूर्व अरिम धीरे से मुस्कराया, तत्पश्चात बोला, "पुनर्विवाह।"

"पुनर्विवाह?"

"हाँ महाराज! उत्तराँचल के युवराज पद के लिए उत्तम यही रहेगा कि वह आपका रक्त हो, न कि दत्तक।" अरिम ने कहा, "इस प्रकार आकाश में ग्रहों की स्थिति उत्तराँचल सिंहासन के अनुकूल बनी रहेगी।

यह अनुचित विकल्प नहीं था, कीर्तिवर्धन ने सोचा। उसकी आयु के न जाने कितने पुरुष पुनर्विवाह करते थे। और सैकड़ों वर्षों से अपना उत्तराधिकारी प्राप्त करने के लिए कई राजपुरुषों ने भी पुनर्विवाह किये थे।

यह विकल्प तनिक भी अनुचित नहीं था, कीर्तिवर्धन ने पुनः मन ही मन इस तथ्य को दुहराया।

"परंतु इसकी शीघ्रता क्या है?" उसने प्रत्यक्षतः अरिम से कहा। उसका मन अभी भी शंकित था। उसके राज्य को दो दिशाओं से शत्रुओं ने घेरा हुआ था, उसके उपराज्य रत्नगढ़ का एक भाग शत्रुओं के अधिपत्य में था; अनेकों समस्याएँ उसके समक्ष मुँह बाये खड़ी थीं। प्रतिदिन राज सभा में अपनी समस्या लेकर आने वाली प्रजा की संख्या बढ़ती जा रही थी। युद्ध के कारण कई व्यापार रुके हुए थे और अंततः इसका प्रभाव सामान्य प्रजा पर दिखना आरंभ हो गया था।

ऐसे समय में वह विवाह के विषय में कैसे विचार कर सकता था?

"क्षमा करिए महाराज! कृपया मेरे प्रस्ताव को अन्यथा न लीजियेगा। यह सत्य है कि युवराज का निधन हुए अधिक समय नहीं बीता, परंतु मेरा मत है कि आपको यह कार्य शीघ्र अतिशीघ्र कर लेना चाहिए।" अरिम ने उत्तर देने के स्थान पर अपनी बात दुहराई।

"ऐसा क्यों?" कीर्तिवर्धन ने अपनी भौंहों को वक्र करते हुए पूछा।

"क्योंकि आने वाले कुछ समय में ग्रहों की स्थिति कुछ ऐसी है कि उचित कन्या से सम्बन्ध बनाने पर आपको अवश्य ही पुत्र प्राप्ति होगी।" अरिम ने कहा, "और इस समय काल के पश्चात यह निश्चितता समाप्त हो जाएगी। हालाँकि मेरे इस प्रस्ताव के पीछे कुछ अन्य कारण भी हैं।"

"जैसे?"

"युवराज के निधन और आपके विवाह न करने की दशा में लोग स्वतः ही यह अनुमान लगा लेंगे कि आप सिंहासन के उत्तराधिकारी पद के लिए किसी दत्तक पुत्र को ढूँढ रहे हैं, और उस दशा में असंख्य लोग सिंहासन के पद हेतु दावा प्रस्तुत करने लगेंगे। इस दशा में हमारी आंतरिक सुरक्षा भी संकट में पड़ जाएगी।" अरिम ने अपनी बात समाप्त की स्थिर खड़ा हो गया। कीर्तिवर्धन की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करते हुए।

कीर्तिवर्धन अरिम द्वारा बताई गयी परिस्थितियों से अनभिज्ञ नहीं था। न जाने कितने राजा पूर्व राजाओं का वध कर राजा बने थे और कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण उन्हें अधिक विरोध का सामना भी नहीं करना पड़ा था। और उससे भी अधिक लोभ उसे एक पुत्र का था। यदि ग्रहों की स्थिति यह सुनिश्चित कर सकती थी कि उसे पुत्र प्राप्ति ही होगी तो वह यह अवसर गँवाना नहीं चाहता था।

उसने अरिम की ओर देखा, मानो यह पूछ रहा हो कि अब मुझे क्या करना चाहिए।

"मैं महात्य को सूचित कर देता हूँ, वह उपयुक्त कन्याओं के परिवारों को निमंत्रण भेज देंगे।" अरिम ने कहा, "यद्यपि अंतिम निर्णय आपका होगा।"

कीर्तिवर्धन ने मात्र सहमति में अपना सिर हिलाया।

प्रधानमंत्री महात्य ने अपने समक्ष खड़े अरिम को देखा जिसके होंठों पर एक मुस्कान थी।

"परंतु यह उचित निर्णय नहीं है।" महात्य ने झुँझलाते हुए कहा, "वर्तमान में विवाह का निर्णय लेना मूर्खता होगी।"

"यह महाराज का निर्णय है। हम और आप कौन होते हैं उनके निर्णयों का विरोध करने वाले।" अरिम ने मात्र इतना ही कहा।

महात्य ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे ज्ञात था कि इस निर्णय के पीछे किसके विचार थे। पुनर्विवाह का विचार उचित था, महात्य ने सोचा, परंतु इस समय नहीं। *अवश्य ही अरिम ने कोई बढ़िया तर्क दिया होगा।*

"प्रधानमंत्री किन विचारों में डूब गए?" अरिम ने पूछा।

"कुछ नहीं, मात्र एक कथा का स्मरण हो आया था।" महात्य ने कहा।

"कौन सी कथा?"

"वर्षों पूर्व महाराज के पिता, उत्तराँचल के पूर्व महाराज की सभा में एक व्यक्ति आया था। उसने यह दावा किया कि आकाश में रात्रि के समय दिखने वाले ग्रहों की गति और स्थिति का अवलोकन कर मनुष्यों के भविष्य के विषय में बताया जा सकता है। परंतु भरी सभा में महाराज एवं अन्य सभासदों ने उसका अपमान किया और उसे वापस भेज दिया, क्योंकि किसी को ऐसी किसी विद्या पर विश्वास नहीं था।"

"क्योंकि यह विद्या नवीन है और जटिल भी," अरिम ने मध्य में हस्तक्षेप करते हुए कहा, "सभी से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह इसे समझ सकें।"

"उस व्यक्ति का क्या हुआ यह तो किसी को ज्ञात नहीं," महात्य ने अरिम की बातों को अनसुना करते हुए पुनः कहा, "परंतु कइयों का कहना है कि उस व्यक्ति का एक पुत्र भी था।"

महात्य ने अपनी दृष्टि अरिम के मुख पर टिका दी, "आपका क्या अनुमान है, पुत्र ने क्या किया होगा?"

अरिम ने अनभिज्ञ भाव से अपने कंधे उचका दिए, "राजभवनों में सहस्रों वर्षों से कथाएँ सुनाई जाती हैं और गढ़ी जाती हैं। कुछ वास्तविक, कुछ काल्पनिक। कुछ सत्य घटनाएँ जिन्हें प्रतिभावान कथाकार एक कथा का रूप दे देते हैं। मेरे विचार से प्रधानमंत्री को ऐसी कथाओं पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए। अब मुझे आज्ञा दीजिये।"

इसके पश्चात अरिम एक क्षण भी वहाँ नहीं रुका। हालाँकि महात्य के कक्ष से लौटते समय उसके मुख पर वह मुस्कान नहीं थी जो प्रवेश करते समय थी।

जो कथा महात्य ने उसे सुनाई थी वह उसके पिता की थी। जिस विद्या का पूर्व महाराज ने अपमान किया था, आज उसी विद्या का प्रयोग कर वह मंत्री परिषद का अंग था।

जब वर्षों पूर्व यह घटना घटित हुई थी, तब वह छोटा था। परंतु इतना भी छोटा नहीं कि अपने पिता के अपमान पर क्रोधित न हो सके। उस समय उसके पिता ने उसे समझाया कि क्रोध करने से कोई लाभ नहीं, क्रोध मात्र बुद्धि का नाश करता है। उन्होंने उसे स्वयं इस विद्या के विषय में समझाया और कहा कि इसमें इतना पारंगत हो जाओ कि लोग स्वयं तुम्हारे पास आयें। और अरिम ने वही किया।

मात्र महात्य ही नहीं, कइयों को इस कथा के विषय में ज्ञात था। परंतु वह चिंतित नहीं था, क्योंकि उसने कुछ भी अनुचित कार्य नहीं किया था, कोई नियम नहीं भंग किया था। और इन सबके पश्चात भी वह अपना लक्ष्य प्राप्त कर रहा था।

उसके पिता को सबके मध्य मूर्ख कहकर निष्कासित किया गया था, और उसके सभी प्रयास ऐसे रहते थे कि लोग कीर्तिवर्धन को मूर्ख समझें।

संदेशवाहक ने कीर्तिवर्धन के कक्ष में आने की आज्ञा माँगी। कीर्तिवर्धन के माथे पर बल पड़ गए। *अभी कुछ समय पूर्व ही तो प्रसान नगर से संदेश आया था,* अर्थात संदेश कहीं और से आया था।

कीर्तिवर्धन ने संदेशवाहक को कक्ष में आने की आज्ञा दी, उससे पत्र लिया और संदेशवाहक अभिवादन करता हुआ कक्ष से बाहर चला गया।

संदेश नर्मदा के तट पर उपस्थित सुरक्षा सैनिकों के प्रमुख द्वारा भेजा गया था। शतबाहु ने अपने अंगरक्षकों के साथ नौका द्वारा नर्मदा को पार किया था और प्रमुख को उसने सूचित किया था कि वह मरुभूमि अपने गुरु महर्षि वह्निमित्र से भेंट करने जा रहा था। प्रमुख ने उसे रोका नहीं और जाने दिया।

कीर्तिवर्धन को इस छोटे से संदेश में कुछ भी अनुचित नहीं प्रतीत हो रहा था। स्वर्ण सेतु के नष्ट होने के पश्चात नर्मदा को पार करने के लिए नौकाएँ चलने लगी थीं। परंतु यह बहुत अधिक खर्चीला था, इसी कारण अधिकांश लोग लंबे मार्ग से ही यात्रा करते थे। इसके अतिरिक्त नौकाओं की बहुत अधिक जाँच की जाती थी, किसी भी दशा में किसी अवांछित व्यक्ति या वस्तु का उत्तराँचल में प्रवेश करना असंभव था। परंतु शतबाहु छिप कर नहीं आया था, किसी भी दशा में उसे उसके गुरु से मिलने से नहीं रोका जा सकता था। वैसे भी प्रमुख के संदेश के अनुसार उसने वचन दिया था कि वह कोई अनुचित कार्य नहीं करेगा।

परंतु क्या शतबाहु अपने वचन पर टिका रहने वाला था, कीर्तिवर्धन ने सोचा। और उससे भी महत्वपूर्ण, क्या वह वास्तव में मात्र अपने गुरु से मिलने आ रहा था। दक्षिणांचल की सेना अभी भी रत्नगढ़ में रुकी हुई थी और यह अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि इतने समय में वह अपनी सेना को सुदृढ़ कर रहे थे।

क्या शतबाहु का मरुभूमि जाना भी इसका भाग हो सकता है?

उसके मस्तिष्क में एक योजना का निर्माण होने लगा। उसने महात्य को बुलाया।

"प्रणाम महाराज! निमंत्रण भेजने का कार्य अगले प्रहर तक पूर्ण हो जायेगा।" कक्ष में आते ही महात्य ने कहा।

"निमंत्रण भेजने की कोई आवश्यकता नहीं।"

महात्य ने उलझन में कीर्तिवर्धन को देखा। पिछला एक प्रहर उसने इसी उधेड़बुन में व्यतीत किया था कि किसे निमंत्रण भेजा जाये और किसे नहीं, और अब महाराज का कहना था कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं। वैसे भी अरिम के आत्मविश्वास को देखते हुए उसे पूर्ण विश्वास था कि महाराज द्वारा इस निर्णय को बदला नहीं जाने वाला था।

कुछ ही समय में ऐसा क्या भिन्न हो गया था?

"क्षमा करें महाराज! परंतु आपने ही तो स्वयं संदेश भिजवाया था," महात्य ने प्रश्न किया, "क्या निमंत्रण न भेजने के पीछे कोई विशेष कारण है?"

कीर्तिवर्धन ने संदेश महात्य की ओर बढ़ा दिया। उसने शीघ्रता से वह संदेश पढ़ा और पुनः कीर्तिवर्धन की ओर दृष्टि उठाई। उसे भी इस संदेश में कुछ अनुचित नहीं दिख रहा था।

"मेरे मत से सुरक्षा प्रमुख का निर्णय उचित था," महात्य ने कहा, "शतबाहु को मरुभूमि न जाने देना अनुचित होता। परंतु मुझे अभी भी यह समझ नहीं आया कि आपने मुझे निमंत्रण भेजने से क्यों रोका।"

"महात्य! क्या तुम्हारे जीवन में कभी ऐसा क्षण आया है जब तुमने सोचा हो कि यदि तुम भूतकाल में जाकर अपना कोई निर्णय परिवर्तित कर सकते तो कितना सुखद रहता?" कीर्तिवर्धन ने एक गहरी श्वास लेते हुए कहा, मानो उसकी छाती पर कोई भार रखा हुआ हो, "यश की मृत्यु के जितने दोषी वर्षाण हैं, उतना मैं भी हूँ, और उससे कहीं अधिक शतबाहु है। पुनर्विवाह करना मेरी आवश्यकता है, परंतु शतबाहु की मृत्यु के पश्चात।"

एक क्षण के लिए महात्य की दृष्टि के समक्ष कई घटनाएँ घूम गयीं। ऐसे निर्णय जिनको वह किसी भी मूल्य पर परिवर्तित करना चाहता था। परंतु समय में पीछे जाना कहाँ संभव होता है, समय के आगे तो सब निर्बल होते हैं। वह पुनः वर्तमान में लौट आया। “परंतु महाराज, क्या शतबाहु को मरुभूमि जाने से रोकना उचित होगा?” उसकी उलझन बढ़ती जा रही थी।

“उचित अनुचित का प्रश्न तो उसी दिन समाप्त हो गया था महात्य, जिस दिन शतबाहु ने छल से हमपर आक्रमण किया था।” कीर्तिवर्धन के स्वर में पुनः क्रोध लौट आया, “राजभवन में उपस्थित सभी सैनिकों और मेरे अंगरक्षकों को सूचित कर दो। शतबाहु के मरुभूमि से बाहर आते ही हम वन में ही उसपर आक्रमण करेंगे।” *और उसके वध के पश्चात ही विवाह के विषय में निर्णय लिया जायेगा। संभवतः किसी अन्य समय, जब ग्रहों की स्थिति पुनः अनुकूल हो जाएगी। यह अवसर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है।*

“परंतु महाराज उनका नेतृत्व कौन करेगा। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि शतबाहु के अंगरक्षक भी सामान्य सैनिकों से कई गुना अधिक सक्षम होंगे। उचित नेतृत्व के अभाव में उससे सीधे द्वंद्व करना कठिन कार्य है।” महात्य ने कीर्तिवर्धन को दुबारा उचित अनुचित समझाने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उसे ज्ञात था कि अब कीर्तिवर्धन इस विषय में नहीं सुनने वाला।

“नहीं। अवसर एक समान नहीं होगा।” कीर्तिवर्धन ने कहा, “तुम्हें ज्ञात है कि कुछ वर्षों पूर्व मायावी हमारे लिए इतनी बड़ी समस्या क्यों बन गए थे? इसका एक कारण यह भी था कि वह वनों में रहते थे और सैनिकों के वहाँ जाते ही वह छिपकर प्रत्येक दिशाओं से हमपर आक्रमण कर देते थे। हमने कुछ समय तक उनकी इस आक्रमण नीति का विश्लेषण किया था और उसी आक्रमण नीति का प्रयोग हमारे सैनिक करेंगे। मैं स्वयं सारी योजना बनाऊँगा।”

महात्य प्रसन्न था कि कीर्तिवर्धन ने इस समय विवाह के निर्णय को स्थगित कर दिया है, परंतु वह उसके आक्रमण के निर्णय को लेकर भी चिंतित था। कीर्तिवर्धन के पास एक अन्य विकल्प भी था कि वह स्वयं अपने सैनिकों का नेतृत्व करे, परंतु महात्य को ज्ञात था कि यह भी संभव नहीं था।

“नियति ने हमें एक अवसर दिया है,” कीर्तिवर्धन ने पुनः कहा, “बिना रक्तपात के इस युद्ध को जीतने का और एकद्वीप में पुनः शांति स्थापित करने का।”

महात्य ने एक गहरी श्वास ली। अपने जीवन के अनुभवों से उसने जितनी भी सीख ली थी, उनमें से एक यह भी था कि बिना रक्तपात, बिना युद्ध के शांति संभव नहीं।

अध्याय 27
द्वार

रात्रि का अंतिम प्रहर आरंभ होने वाला था। प्रसान नगर में एक अशुभ शांति पसरी हुई थी, मानो प्रकृति को भविष्य में होने वाले युद्ध और रक्तपात के विषय में ज्ञात हो गया हो और वह मृतकों का शोक मना रही हो।

कौस्तुभ ने अपने साथ खड़े सैनिकों को देखा। जगदेव, अत्रिक, रम्या उनमें से कुछ के नाम उसे ज्ञात थे और अधिकांश के नहीं। कुछ सैनिकों को वह प्रथम बार देख रहा था जो जगदेव की सूचना पर रातोंरात एकत्र हुए थे।

और अब वह सभी वर्षाण प्रहरियों के मध्य से होते हुए प्रसान नगर का मुख्य द्वार खोलने वाले थे।

नगर में द्वार के आगे एक विशाल स्थान रिक्त था जिसके पश्चात भवनों की श्रृंखला आरंभ होती थी। यद्यपि द्वार के निकट कुछ कक्ष अवश्य निर्मित थे जिनमें प्रहरी विश्राम करते थे। प्रसान नगर के सैनिकों के लिये यह एक मुख्य समस्या थी क्योंकि रात्रि के समय भी द्वार के निकट और प्राचीर पर खड़े प्रहरी उन्हें दूर से ही आते हुए देख सकते थे। परंतु उन्हें यह बाधा पार करनी ही थी।

वह द्वार दो हाथ मोटा था और उसे दो अत्यंत मोटे लोहे के सीकड़ों की सहायता से खोला और बंद किया जाता था। यह दोनों सीकड़ द्वार के ऊपरी भाग में लगी हुई थीं जिनका दूसरा सिरा भूमि पर निर्मित दो घिरनियों के माध्यम से होता हुआ भूमि पर ही फँसाया जाता था। द्वार को खोलने के लिए उन दोनों सीकड़ों को मात्र मुक्त करना पड़ता था परंतु द्वार बंद करने लिए उनको खींचना पड़ता था जिसमें प्रायः पंद्रह से बीस मनुष्यों का बल लगता था।

सामान्यतः नगर का वह द्वार कभी बंद नहीं रहता था और भूमि पर ही पड़ा रहता था। नगर में प्रवेश करने वाले मार्ग का एक अंग बनकर।

कौस्तुभ और अन्य सैनिक भवनों की प्रथम श्रृंखला के निकट छिपे हुए थे और अपने अपने स्थानों से स्पष्ट रुप से द्वार को देख पा रहे थे। प्राचीर पर चढ़े वर्षाण या तो नगर के बाहर देख रहे थे या आपस में ही बातें कर रहे थे। यदि उनमें से कोई भी वर्षाण ध्यानपूर्वक नगर की ओर देखता तो उनमें से कुछ सैनिकों को अवश्य देख लेता।

कौस्तुभ ने एक दीर्घ और गहरी श्वास ली। *यह कार्य सरल नहीं होने वाला था।*

उसके हाथों में धनुष था, कमर में तलवार बंधी थी और पीठ पर बाणों से भरा तूणीर रखा हुआ था। उसने अपने धनुष त्रैनाक को अपने हाथों में कसकर पकड़ा, जिसे अत्रिक लेकर आया था। अत्रिक ही वसुधा को भूमिगत मार्ग तक पहुँचाने गया था और उसके अनुसार उन्हें मार्ग में कोई बाधा नहीं आई थी। उसने मन ही मन प्रार्थना की कि द्वार के उस पार प्रतापसेन और अरिदमन ने वसुधा का प्रस्ताव मान्य किया हो और इस क्षण वह भी द्वार की दूसरी ओर सज्ज हो रहे हों। यदि ऐसा नहीं था तो उनका सारा परिश्रम व्यर्थ जाने वाला था।

कौस्तुभ से कुछ दूरी पर खड़े जगदेव ने सैनिकों को कुछ संकेत किया और वह सभी योजनाबद्ध रुप से आगे बढ़ गए। सर्वसम्मति से जगदेव को इस आक्रमण का अगुआ चयनित किया गया था।

ऐसे स्थान पर जहाँ छिपने अथवा आड़ लेने का कोई विकल्प न हो, ऊँची प्राचीरों पर खड़े सैनिक एक विकट समस्या थे। इसी कारण जगदेव ने सबसे प्रथम पंक्ति में ढाल और तलवार लिए हुए सैनिकों को भेजा। उनका कार्य आक्रमण के साथ साथ स्वयं और स्वयं के पीछे दूसरी पंक्ति में खड़े धनुर्धरों की रक्षा करना था।

कौस्तुभ जगदेव की रणनीति से प्रसन्न था। जगदेव स्वयं भी एक पूर्व दलपति था इसी कारण उसे सैन्य अभियानों और संरचनाओं का पूर्ण ज्ञान था। युद्ध में संख्या से अधिक महत्व संरचना का होता है, इस तथ्य से वह भलीभांति परिचित था।

जैसे ही प्राचीर पर खड़े सैनिकों ने भारी संख्या में प्रसान नगर के सैनिकों को द्वार की ओर बढ़ते हुए देखा, उन्होंने अविलंब उनपर बाण वर्षा आरंभ कर दी। परंतु प्रसान नगर के सैनिक भी सज्ज थे। प्रथम पंक्ति के सैनिकों ने अपनी अपनी ढालों की सहायता से उस बाण वर्षा को निरर्थक कर दिया। उसी समय विलंब न करते हुए द्वितीय पंक्ति के धनुर्धरों ने अपना कार्य कर दिया। उन्होंने अपने अपने धनुष ऊँचे किये और प्राचीर पर खड़े सैनिकों को अपना लक्ष्य बनाया।

वर्षाण युद्ध में बल प्रयोग करने के अभ्यस्त थे। उनके तलवार के प्रहार अत्यंत वेग पूर्ण और घातक होते थे परंतु उनके लक्ष्य अधिक सटीक नहीं होते थे। इसी कारण प्रसान नगर के सैनिक सरलता से उनकी बाण वर्षा से बच गए, जबकि वर्षाण स्वयं को नहीं बचा पाए। सर्वप्रथम तो उन्हें बाण वर्षा की आशा नहीं थी, द्वितीय प्राचीर पर खड़े वर्षाणों के पास छिपने का पर्याप्त स्थान नहीं था और तृतीय प्रसान नगर के सैनिकों के लक्ष्य अचूक थे।

द्वार के निकट भूमि पर खड़े वर्षाणों ने भी प्रतीक्षा नहीं कि और अपने अपने शस्त्र हाथों में लिए दौड़ पड़े। मात्र कुछ ही क्षणों में भयंकर मार काट मच गयी और रात्रि का सन्नाटा कोलाहल में लुप्त हो गया।

प्राचीर पर खड़े जो प्रहरी वर्षाण बच गए थे वह सब भी नीचे उतर आक्रमण करने लगे थे। वर्षाणों को ज्ञात था कि इस आक्रमण का अर्थ क्या था। उन्हें ज्ञात था कि यदि द्वार खुल गया तो उनकी सारी योजना, सारी प्रतीक्षा व्यर्थ जाने वाली थी।

युद्ध का यह कोलाहल सुन नगर के रात्रि प्रहरी वर्षाण भी उस स्थान पर आने लगे, परंतु जगदेव ने इस विषय में भी विचार किया हुआ था। उसने सैनिकों की एक तीसरी पंक्ति का निर्माण भी किया था जो नगर की ओर से आने वाले वर्षाणों को दूर से ही मार दे रहे थे।

कौस्तुभ दूसरी पंक्ति का भाग था। बाण वर्षा के समय उसका प्रत्येक बाण प्राचीर पर खड़े किसी न किसी वर्षाण के प्राण हरने में सफल रहा था। अब उसका तूणीर बाणों से रिक्त हो चुका था और अब उसने भी अधिकांश सैनिकों की भांति तलवार द्वारा द्वंद्व आरंभ कर दिया था।

वह जिस वर्षाण से द्वंद्व कर रहा था, वह उससे दस अंगुल ऊँचा था और बार बार उसके सिर को लक्ष्य बना रहा था। ऊँचे कद का लाभ। परंतु इससे एक हानि भी थी। कौस्तुभ ने उसके प्रहारों से बचते हुए झुककर उसके पैरों पर प्रहार किया, जिसने वर्षाण की दोनों पिंडलियों को काट दिया। उस घाव से बहता रक्त भल्ल भल्ल करता भूमि पर गिरने लगा। परंतु वर्षाण रुका नहीं, उसने क्रोध से अपने नथुने फुलाते हुए कौस्तुभ पर प्रहार किया परंतु वह कूदकर दो पग पीछे हट गया। वर्षाण की तलवार भूमि पर टकराई। कौस्तुभ को यह स्पष्ट रुप

से दिख रहा था कि वर्षाण भले ही रुका न हो परंतु उसकी गति धीमी अवश्य हो गयी थी। इससे पूर्व की वर्षाण अपनी तलवार को उठा पुनः प्रहार कर पाता कौस्तुभ ने उसके हृदय को भेद दिया। वह वर्षाण मुँह से रक्त उगलता भूमि पर गिर पड़ा।

कौस्तुभ ने युद्ध कर रहे वर्षाणों और प्रसान सैनिकों के पार देखा, द्वार के निकट अभी भी कुछ वर्षाण खड़े थे जो युद्ध में भाग नहीं ले रहे थे। द्वार को खोलने के लिए उन्हें पराजित करना आवश्यक था। परंतु उन तक पहुँचने के लिए वर्षाणों से भरे युद्ध क्षेत्र को पार करना पड़ता और यह अत्यंत कठिन कार्य था।

रम्या को युद्ध का बहुत कम अनुभव था, अपितु उसे युद्ध और द्वंद्व के विषय में जितना भी ज्ञान था मात्र कुछ दिनों पूर्व ही ज्ञात हुआ था। परंतु इसके पश्चात भी वह तीसरी पंक्ति में सम्मिलित होकर वर्षाणों से युद्ध कर रही थी। *नगर वासी उनसे युद्ध कर रहे हों और वह तटस्थ बैठी रही यह संभव नहीं था।* अपने जीवन में सब कुछ गँवा देने के पश्चात अब उसे मृत्यु का भी भय नहीं था।

उन्हें ज्ञात था कि नगर के भीतर से आ रहे वर्षाणों की संख्या अभी कम थी परंतु किसी भी समय पोताश्रय के निकट से उनका विशाल समूह वहाँ आ सकता था। और उस अवस्था में न मात्र उनका अभियान असफल होता अपितु वह सभी दो दिशाओं से वर्षाणों द्वारा घिर जाते और संभवतः मारे भी जाते।

जगदेव भी इस परिस्थिति से अनभिज्ञ नहीं था। *योजना के दूसरे चरण को आरंभ करने का समय आ चुका था,* उसने युद्ध क्षेत्र में अपनी दृष्टि घुमाते हुए सोचा। उसने कुछ दूर खड़े कौस्तुभ की ओर देखा, उसने भी धीरे से सिर हिलाया। इसका अर्थ था कि वह भी उससे सहमत था।

जगदेव मुड़ा और उसने अपने निकट युद्ध कर रहे सैनिकों को कुछ संकेत किया। उन सैनिकों से अन्य सैनिकों को संकेत किया और शीघ्र ही प्रसान नगर के सभी सैनिकों को ज्ञात हो गया कि योजना का अगला चरण आरंभ हो गया है।

तृतीय पंक्ति के सैनिक भी एकाएक आक्रामक होकर वर्षाणों से युद्ध करने लगे। कौस्तुभ कुछ अन्य सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र में वर्षाणों को मार उनके मध्य से मार्ग बनाते हुए द्वार की ओर बढ़ने लगा। उन्होंने अपनी अपनी ढालों से एक बाण जैसी संरचना का निर्माण कर लिया था और वर्षाणों के समूह को चीरते हुए आगे बढ़ रहे थे।

उनके पास अधिक समय शेष नहीं था।

आकाश में लालिमा दिखने लगी थी। सूर्योदय होने में अधिक समय नहीं था।

द्वार की दूसरी ओर एकत्र सिंधुपद के सैनिक भी सज्ज थे। नगर के भीतर होने वाले युद्ध का कोलाहल उनके कानों तक भी पहुँच रहा था और युद्ध करने के लिए उनके अंग भी फड़क रहे थे।

एक रात्रि पूर्व वसुधा शिविर में पुनः लौटी थी और उसने विस्तारपूर्वक नगर की स्थिति के विषय में बताया था। नगर में छिपे हुए सैनिक, उनकी योजना और द्वार को भीतर से खोलने की नई योजना, इन सबके विषय में अरिदमन और प्रतापसेन ने ध्यान से सुना।

असाक के आगमन से अरिदमन चिंतित थे। इस कारण नहीं कि वह एक विकट योद्धा था, अपितु इस कारण कि उसके आने के पश्चात युद्ध में वर्षाणों का उत्साह कई गुना बढ़ जाता। यह युद्ध का सरल मनोविज्ञान था। यदि किसी प्रकार वह असाक के आगमन से पूर्व नगर पर आक्रमण कर पाते तो उन्हें बहुत अधिक लाभ मिलता। इस प्रकार असाक के नगर में आने से पूर्व ही उसकी शक्ति क्षय हो जाती

अरिदमन और प्रतापसेन दोनों ही इस योजना से सहमत थे कि द्वार को भीतर से खोला जाये और इसके लिए वह नियत समय पर युद्ध हेतु सज्ज रहने के लिए तत्पर थे। यह ज्ञात होने के पश्चात कि प्रसान नगर के सामान्य जन बंधक नहीं है, उन्हें नगर पर आक्रमण करना ही था तो यह अवसर भी अनुचित नहीं था।

यद्यपि कुछ व्यक्ति ऐसे भी अवश्य थे जिन्हें इस योजना में संदेह था। उनमें से एक चंद्रसेन भी था।

“यदि वह लोग द्वार को नहीं खोल पाए तब?” उसने मंत्रणा के समय यह प्रश्न उठाया था, “तब तो हमारी सारी तैयारियाँ व्यर्थ चली जायेंगी।”

“किस प्रकार?” प्रतापसेन ने शांत स्वर में पूछा, “अंततः हमें युद्ध के लिए सज्ज होना ही है। हाँ, यदि दिन के प्रथम प्रहर में द्वार नहीं खुल पाया तो द्वितीय प्रहर आरंभ होते ही हम द्वार पर आक्रमण कर देंगे।”

चंद्रसेन को कोई उत्तर नहीं सूझा। वह मौन हो गया।

वर्तमान में वह भी अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ तत्पर खड़ा द्वार की दिशा में ही देख रहा था। प्राचीर पर खड़े प्रहरी अब नहीं दिखाई दे रहे थे, अर्थात वह भी नीचे उतर कर अब युद्ध कर रहे थे। न चाहते हुए भी उसके मस्तिष्क में यह संदेह आ रहा था कि क्या जगदेव, कौस्तुभ और अन्य सैनिक द्वार को खोल पायेंगे?

उसके साथ साथ अन्य लोग भी आकाश में बढ़ती लालिमा के साथ अपना धैर्य खोते जा रहे थे।

तो क्या यह योजना असफल हो चुकी थी?

वर्षाणों को पार करता हुआ कौस्तुभ द्वार के निकट पहुँचा। युद्ध क्षेत्र के मध्य में ही उनकी बाण जैसी सैन्य संरचना भंग हो गयी थी परंतु कुछ सैनिक युद्ध क्षेत्र के पार आ चुके थे।

शेष सैनिक वर्षाणों से युद्ध कर रहे थे। कौस्तुभ के साथ अब मात्र गिनती के सैनिक शेष थे।

कौस्तुभ ने बारी बारी द्वार के निकट निर्मित दोनों घिरनियों को देखा। दोनों के ही निकट कई वर्षाण खड़े थे। उन्हें भी अनुमान था कि यदि कोई आक्रमण करेगा तो उसका लक्ष्य वही होगा इसी कारण वह उसकी सुरक्षा कर रहे थे।

कौस्तुभ ने दोनों घिरनियों पर एक साथ आक्रमण करने का विचार किया था परंतु कम सैनिक संख्या होने के कारण उसने सभी को एक ही ओर आक्रमण करने का संकेत किया।

वर्षाणों ने भी अपनी ओर बढ़ते सैनिकों को देखा तो अपने अपने शस्त्र ले आगे बढ़कर युद्ध करने लगे। कौस्तुभ ने भी अपनी तलवार को कसकर पकड़ा और वर्षाणों पर प्रहार करने लगा।

यह अभ्यास क्षेत्र नहीं है, उसने स्वयं को समझाया, *यहाँ चूक का अर्थ था मृत्यु।*

कौस्तुभ ने अपने प्रतिद्वंदी वर्षाण के उदर पर प्रहार किया। वर्षाण ने उस प्रहार को रोका परंतु उसी क्षण कौस्तुभ ने विद्युत गति से तलवार उसके वक्ष पर घुमाई जो एक अत्यंत गहरा घाव कर गयी।

वर्षाण मरा नहीं था, और संभवतः उपचार के उपरांत जीवित भी बच जाता, परंतु कौस्तुभ उसे उसी दशा में छोड़कर आगे बढ़ गया। इस समय दूसरे कार्य को शीघ्र करना अधिक महत्वपूर्ण था। नगर के वर्षाण किसी भी समय वहाँ आ सकते थे।

वह घिरनी तक पहुँच गया, परंतु इससे पूर्व कि वह उसमें बंधी सीकड़ को खोल पाता, एक वर्षाण ने अपनी गदा से उसपर प्रहार किया। वह गदा ठोस धातु से निर्मित थी और अत्यधिक भारी थी, यदि कौस्तुभ अपने स्थान से कूद नहीं गया होता तो अवश्य ही उसके सिर का चूर्ण बन जाने वाला था।

कौस्तुभ शीघ्रता से उठा और गदा लिए हुए वर्षाण के समक्ष खड़ा हो गया। वर्षाण ने अपने दांत पीसते हुए उसकी पसलियों पर प्रहार किया। कौस्तुभ ने अत्यंत कठिनाई और अपना संपूर्ण बल लगाकर अपनी तलवार से उस प्रहार को रोका। अन्यथा उसकी पसली टूट कर उसके हृदय को ही भेद जाती। प्रहार की तीव्रता से उसके दोनों हाथ झनझना गए।

वर्षाण ने पुनः उसी प्रकार का प्रहार किया, परंतु इस बार उस प्रहार को रोकने के स्थान पर कौस्तुभ कूदकर दो पग पीछे हट गया।

भारी गदा से द्वंद्व करने का लाभ यह था कि उसे जितनी गति से घुमाया जाये वह उतना ही अधिक मारक हो जाता है। *परंतु भारी गदा से युद्ध करने में एक हानि भी थी,* कौस्तुभ ने वर्षाण के प्रहार का अनुमान लगाते हुए सोचा, *जब वह एक बार भूमि पर आ जाती है तो उसे उठाना सरल नहीं रहता।*

वर्षाण ने निरंतर तीसरा प्रहार भी उसी प्रकार किया जिसका अनुमान कौस्तुभ पूर्व में ही लगा चुका था। वह कूदकर एक पग पीछे हटा और वर्षाण की गदा भूमि से टकराई। इससे पूर्व कि वह उस गदा को पुनः उठा पाता कौस्तुभ ने उसके दोनों हाथों पर प्रहार किया। वर्षाण के हाथों से रक्त बहने लगा, कौस्तुभ ने बिना विलंब किये उसके पैरों पर प्रहार किया।

वर्षाण अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह पाया।

कौस्तुभ कूदकर घिरनी के पास पहुँचा और उसने सीकड़ खोल दी। द्वार में तनिक हलचल हुई परंतु दूसरी सीकड़ के कारण वह अभी भी यथास्थान टिका रहा।

कौस्तुभ ने थोड़ी दूर दूसरी घिरनी को देखा। वहाँ कई वर्षाण एकत्र होने लगे थे। संभवतः द्वार के 'आधा' टूटने से वह चिंतित थे।

उसने युद्ध क्षेत्र की ओर देखा, सभी सैनिक वर्षाणों से युद्ध कर रहे थे। कोई भी उसकी सहायता करने में सक्षम नहीं था। तभी उसे एक भिन्न कोलाहल सुनाई दिया। *नगर से भी वर्षाण सैनिक वहाँ पहुँच रहे थे। तो क्या उनका अभियान असफल हो चुका था?*

नहीं!

कौस्तुभ ने धीरे से अपने सिर को झटका। उसे जो निर्णय लेना था अविलंब लेना था।

उसने भूमि पर गिरी एक ढाल उठाई और उसे अपने हाथों में पकड़ा। दूसरे हाथ में थमी तलवार को व्यवस्थित किया; एक गहरी श्वास ली और चीखते हुए दूसरी घिरनी की ओर दौड़ पड़ा।

उसका लक्ष्य घिरनी के ठीक सामने खड़ा वर्षाण था।

वर्षाण ने उसे किसी विक्षिप्त की भांति चीखते हुए अपनी ओर दौड़ता देखा तो कुछ समझ नहीं पाया। यह इतना अप्रत्याशित था कि उसके कोई प्रतिक्रिया कर पाने से पूर्व ही कौस्तुभ उसके ऊपर कूद गया।

कौस्तुभ ने अपनी ढाल आगे कर दी थी जो वर्षाण के वक्ष से टकराई। दोनों एक साथ घिरनी के ऊपर गिरे। एक सीकड़ के खुल जाने के कारण उस घिरनी में पहले से ही तनाव था, वर्षाण के अत्यधिक वेग से पीठ के बल गिरते ही वह घिरनी टूट गयी।

सीकड़ स्वतः ही मुक्त हो गयी।

जो द्वार धीरे धीरे खुलता था वह *धम्म* की ध्वनि करता भूमि पर जा गिरा।

कुछ क्षणों के लिए भूमि भी काँप गयी।

यह ध्वनि इतनी तीव्र थी कि वर्षाण और प्रसान सैनिक भी रुककर उस ओर देखने लगे। द्वार के गिरने के कारण धूल का ऐसा गुबार उठा कि उसके पार देखना असंभव था।

कुछ क्षणों के लिए सब कुछ शांत हो गया, मानो वायु का प्रवाह भी ठप्प हो गया हो।

और उसके अगले क्षण होने वाले कोलाहल और तीव्र ध्वनि से पूरा वातावरण दहल उठा। परंतु यह ध्वनि नगर के बाहर से आ रही थी।

वर्षाणों ने अपनी आश्चर्यचकित दृष्टि से देखा कि धूल के गुबार को छाँटती सिंधुपद की सेना सूर्य की प्रथम रश्मि के साथ नगर में प्रवेश कर रही है। उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह सभी पीछे मुड़कर भाग गए। जो वर्षाण नगर की ओर से आ रहे थे वह अपने स्थानों पर रुके रहे परंतु उनमें से किसी का साहस नहीं हुआ कि वह आगे बढ़कर सिंधुपद के सैनिकों से द्वंद्व करे।

देखते ही देखते द्वार के निकट सिंधुपद के सैनिक भर गए। अरिदमन ने उन्हें उसी स्थान पर रुकने का आदेश दिया क्योंकि नगर में जाना घातक हो सकता था। नगर में अभी भी वर्षाण भरे थे और वह शीघ्रता में कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते थे जो उनके लिए समस्या उत्पन्न करे। जो छिटपुट वर्षाण उस स्थान पर शेष थे उन्हें जीवित बंधक बना लिया गया।

कौस्तुभ अपने स्थान से उठा, उसने अपने वस्त्रों पर लगी धूल को झाड़ा और अरिदमन की ओर देखा। उनके मुख पर एक क्षीण परंतु गर्वीली मुस्कान विद्यमान थी। उसने अपनी दृष्टि जगदेव की ओर घुमाई, वह भी प्रसन्न था। उसने रम्या को देखा जो न जाने वसुधा से क्या बातें कर रही थी।

यह सत्य था कि कुछ ही समय में पुनः युद्ध का आरंभ होने वाला था परंतु यह क्षण आनंद का अनुभव करने का था। उन्होंने एक छोटा, परंतु महत्वपूर्ण पड़ाव पार कर लिया था।

स्वतः ही उसके मुख पर भी एक मुस्कान प्रकट हो गयी।

अध्याय 28
युद्ध

संपूर्ण सेना के नगर में पहुँचते ही सेनापति प्रतापसेन ने उन्हें पंक्तिबद्ध रचना के निर्माण का आदेश दिया। सभी सैनिक धनुर्धर, तलवार धारक, गदा धारक, भाला धारक जैसी श्रेणियों में बंट गए। उनके पीछे अश्वों पर बैठे सैनिकों की पंक्ति थी। सिंधुपद के पास एक छोटी गज सैनिकों की भी टुकड़ी थी, परंतु प्रतापसेन ने उन्हें नगर के बाहर ही रहने का आदेश दिया था। नगर के तंग स्थान में वह गज शत्रु सैनिकों के साथ साथ स्वयं के सैनिकों को भी हानि पहुँचा सकते थे।

सैनिकों के व्यवस्थित होने के पश्चात अरिदमन और प्रतापसेन, जगदेव और नगर के अन्य सैनिकों से मिले और कुछ समय तक उनसे भिन्न भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछते रहे। उन्होंने नगर में भीतर बढ़ने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि नगर में कोई अन्य विशाल रिक्त स्थान नहीं था जहाँ युद्ध किया जा सके। नगर के भीतर युद्ध करने से अनगिनत नागरिकों के प्राण संकट में पड़ जाते।

कौस्तुभ भी अपने दल के पास पहुँच उन्हें युद्ध करने के लिए सज्ज कर रहा था। समय आ गया था कि वह दलपति के रूप में अपने धनुर्धर दल का नेतृत्व करे। उसकी अनुपस्थिति में नासन ने अस्थायी दलपति का कार्य किया था। जब कौस्तुभ ने गुप्त रूप से नगर में आने का निर्णय लिया था तब नासन भी उसके साथ आना चाहता था, परंतु कौस्तुभ ने उसे समझाया कि वह नगर के बाहर रहकर एक अन्य विशेष और महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है। नासन अब पुनः कौस्तुभ के नेतृत्व में युद्ध करने को तत्पर था।

अरिदमन वर्षाणों के विषय में विचार मग्न थे। सेना के आने के पश्चात नगर में लौटे वर्षाण अभी तक नहीं लौटे थे, *इसका अर्थ था वह अवश्य ही एक साथ एकत्र होकर पुनः आक्रमण करेंगे।* संसार में विजय की इच्छुक प्रत्येक सेना यही करती, विपक्ष सेना पर एक साथ अपने संपूर्ण शक्ति से आक्रमण।

अरिदमन असाक के विषय में भी चिंतित थे। सूचना अनुसार असाक आज ही नगर में आने वाला था, परंतु कब इसके विषय में उन्हें नहीं ज्ञात था। वह चाहते थे कि असाक के आगमन से पूर्व ही युद्ध आरंभ हो जाये।

प्रसान नगर की वर्तमान परिस्थितियों से अनभिज्ञ अपने जलयान में बैठा असाक दर्मक से सिंधु नदी के तट से प्रस्थान कर चुका था। शीघ्र ही वह एकद्वीप की भूमि पर पहुँचने वाला था। वह भूमि जिसको अपने अधिकार में लेने का स्वप्न वह अपने नेत्रों में संजोये हुए था।

सिंधु के दूसरी ओर तट पर निर्मित पोताश्रय के निकट भारी मात्रा में वर्षाण एकत्र हुए थे। एकाएक नगर में आ गए सिंधुपद के सैनिकों से वह संभल चुके थे और अब वह पुनः आक्रमण की तैयारी कर रहे थे।

सिंधुपद के सैनिकों को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

दिन के द्वितीय प्रहर के आरंभ होते होते वर्षाणों का पूरा दल सशस्त्र वहाँ उपस्थित हो गया। कौस्तुभ ने अपने अश्व पर बैठे हुए ही उनका अवलोकन किया। रात्रि के समय द्वार पर आक्रमण करते समय वर्षाण तत्पर नहीं थे परंतु इस समय वह पूर्ण रुप से सज्ज होकर आये थे। मात्र कुछ वर्षाणों के अतिरिक्त सभी वर्षाण पैदल ही थे। उनके हाथों में तलवार के साथ साथ मुगदर, गदा और कुल्हाड़ी जैसे भारी शस्त्र भी थे।

वर्षाणों के दल से अश्व पर बैठे एक वर्षाण ने उच्च स्वर में कुछ कहा और अन्य सभी वर्षाण भी चीखते हुए सिंधुपद के सैनिकों की ओर बढ़ गए।

प्रतापसेन ने भी अपनी सेना को संकेत किया और वह सभी भी आगे बढ़ गए। दोनों पक्षों के सैनिकों के दौड़ने की गति से भूमि भी मानो काँप उठी।

कुछ ही क्षणों में दोनों सेनाएँ गुत्थम गुत्था हो गयीं। शस्त्रों के परस्पर टकराने की प्रतिध्वनि आकाश में गूँजने लगी। सिंधुपद के सैनिक कई दिनों से नगर के बाहर खड़े युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह युद्ध उन्हें प्राप्त हो रहा था। वह मानसिक और शारीरिक दोनों रूप से सज्ज थे और साथ ही उनके ह्रदय में वर्षाणों के प्रति क्रोध भी था।

परिणामस्वरुप प्रहर बीतते बीतते सिंधुपद के सैनिक वर्षाणों पर भारी पड़ने लगे। यद्यपि आरंभ में कई सिंधुपद सैनिकों की क्षति हुई परंतु कुछ ही समय पश्चात प्रतापसेन ने सभी सक्षम सैनिकों को भाले से युद्ध करने के आदेश दे दिए। वर्षाण भाले द्वारा युद्ध के अभ्यस्त नहीं थे इसी कारण उन्हें भाले द्वारा किये गये प्रहार से बचाव में भी कठिनाई आ रही थी। भाले द्वारा दूर से ही चपलता से वर्षाणों को घायल करना निकट रहकर द्वंद्व करने से सरल था।

कौस्तुभ स्वयं भी भाले द्वारा युद्ध कर रहा था और उसके दल के अधिकांश सैनिक तलवार और भाले द्वारा। उसने दूर वसुधा और उर्वी को देखा, वह दोनों भी अपने दल के साथ वर्षाणों का संहार कर रही थीं। रम्या भी उनके ही दल में सम्मिलित हो गयी थी।

प्रतापसेन ने अरिदमन को चिंतित देखा तो अपना अश्व उनकी ओर बढ़ा दिया।

“आप अभी भी चिंतित दिखाई दे रहे हैं।” प्रतापसेन ने कहा, “परंतु हमारे सैनिक वर्षाणों को समान रूप से टक्कर दे रहे हैं।”

अरिदमन ने उत्तर देने से पूर्व युद्ध क्षेत्र में दृष्टि घुमाई, प्रतापसेन सत्य कह रहा था, *और यही उनकी चिंता का कारण था।*

“असाक नगर में कभी भी पहुँच सकता है।” उन्होंने कहा, “और उसके साथ अतिरिक्त सेना भी होगी। यह सत्य है कि हमारे सैनिक वर्षाणों को समान रूप से टक्कर दे रहे हैं, परंतु अतिरिक्त सैन्य बल के साथ वर्षाणों का पक्ष अधिक सुदृढ़ हो जायेगा।”

दिन का अंतिम प्रहर आरंभ होते होते असाक भी युद्ध क्षेत्र में पहुँच गया। नगर में प्रवेश करने से पूर्व वह अत्यंत प्रसन्न था, सब कुछ योजना अनुरुप ही हो रहा था। परंतु प्रसान नगर की भूमि पर पग रखते ही उसे प्रथम सूचना यही मिली कि सिंधुपद के सैनिक नगर में प्रवेश कर चुके हैं और नगर में उपस्थित सभी वर्षाण उनसे युद्ध कर रहे हैं।

उसके पास यह सब विचार करने का समय नहीं था कि यह कैसे हुआ? नगर के मुट्ठी भर सैनिकों ने द्वार खोलने का साहस कैसे किया और सफल किस प्रकार हो गए। अब उसे युद्ध करना था। पोताश्रय पर कई वर्षाण सैनिक उपस्थित थे जो भिन्न भिन्न कारणों से युद्ध क्षेत्र में नहीं युद्ध कर रहे थे; कुछ घायल थे कुछ भयभीत थे। असाक ने आगे बढ़ने से पूर्व उनसे सिंधुपद सेना की प्रत्येक संभव सूचना एकत्र की। उनकी अनुमानित संख्या, सैन्य संरचना, वह किस प्रकार के अस्त्र शस्त्र का उपयोग कर रहे हैं इत्यादि।

उसने देखा कि घायल और भयभीत वर्षाण सैनिकों को देख उसके साथ आये सैनिक भी अपना उत्साह खो रहे थे। *यह उचित संकेत नहीं थे,* असाक ने सोचा। दुविधाग्रस्त सैनिक उसे इस युद्ध में विजय नहीं दिला सकते थे।

उसने सभी जलयानों को वर्षाण भेज दिया और घायल सैनिकों का वध कर दिया। *वह मात्र बोझ ही थे।* उसके पश्चात वह अपने साथ आये सैनिकों की ओर मुड़ा, “हम सिंधु पार आये हैं इस नगर, इस राज्य की भूमि को अपने अधीन करने। और अपने लक्ष्य को प्राप्त किये बिना हम दर्मक लौटेंगे नहीं। हमारे पास मात्र दो ही विकल्प हैं, विजय अथवा मृत्यु। और मृत्यु का भय युद्ध में विजय नहीं दिलवाता। जो वर्षाण मृत्यु से भयभीत हैं वह लौटने को स्वतंत्र हैं परंतु उन्हें इस विशाल नदी को तैर कर जाना पड़ेगा। अन्यथा आगे बढ़ो और शत्रुओं का संहार करो।”

उसने अपनी तलवार उठाई और चीखा। वर्षाणों ने भी अपने अपने शस्त्र उठाये और चीखे। उनके शोर की प्रतिध्वनि आकाश में गूँज उठी। असाक के हिंसक भाव को देख वर्षाण भी स्तब्ध थे।

असाक ने त्रीमा को अपनी रणनीति समझाई और त्रीमा सैनिकों को वह समझाने लगा। इससे पूर्व की सिंधुपद की सेना वर्षाणों को अधिक क्षति पहुँचाती, असाक युद्ध क्षेत्र में पहुँच गया।

युद्ध क्षेत्र में भयानक नृशंसता व्यापक थी। कटे सिर, कटे हाथ, रक्त और अंतड़ियाँ भूमि पर फैली हुई थीं जिनको कुचलते हुए दोनों पक्षों के सैनिक द्वंद्व कर रहे थे। जब असाक वहाँ पहुँचा तब तक वर्षाणों की स्थिति दयनीय होने लगी थी। संभवतः वह दो प्रहर तक भी वहाँ नहीं टिक पाते। परंतु उसके और नए सैनिकों के आ जाने से मरणासन्न वर्षाणों में भी शक्ति का संचार हो गया।

संध्या होते ही वातावरण में अंधकार पसरने लगा, परंतु दोनों पक्षों ने युद्ध को विराम देने का कोई प्रयास नहीं किया। एकद्वीप में संध्या काल के पश्चात युद्ध को विराम देने का नियम था, परंतु वर्षाण ऐसा कोई नियम नहीं मानते थे। कुछ कुछ स्थानों पर प्रज्वलित दीपदंड लगा दिए गये, परंतु वह किसी भी दशा में दिन जैसा प्रकाश नहीं उत्पन्न कर सकते थे।

युद्ध करते हुए रम्या को कुछ ऐसा दिखा कि उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गए। उसकी दृष्टि वर्मन पर टिकी हुई थी जो असाक के साथ आये सैनिकों में से एक था। *तो इसी कारण उसके ढूँढने के पश्चात भी वर्मन उसे प्रसान नगर में नहीं दिखा था क्योंकि वह इस पूरे समय वृषाण देश में था।*

वर्मन ही वह द्रोही था जिसने यशवर्धन का वध किया था, उसके भवन को आग लगाई थी और उसके परिवार का वध किया था। वह अधिक कुछ विचार किये बिना अपने दल से अलग होकर उसकी ओर बढ़ गयी।

वर्मन ने रम्या को अपनी ओर बढ़ते देखा तो सर्वप्रथम आश्चर्यचकित हुआ। उसके मस्तिष्क में एक भीरु और डरपोक रम्या की छवि थी जो उसकी पकड़ में नहीं आई थी और जिसके परिवार को उसने जीवित ही जला दिया था। और आज वही रम्या युद्ध भूमि में उसके समक्ष शस्त्र लेकर खड़ी थी। परंतु अगले ही क्षण उसके मुख पर मुस्कान प्रकट हो गयी। जो रम्या उसकी पकड़ में नहीं आई थी उसे वह अब मृत्यु प्रदान करेगा। किसी भी प्रकार से यह संभव नहीं था कि वह उसे छू भी पाए।

रम्या ने वर्मन पर अपनी तलवार से प्रहार किया जिससे वह सरलता से बच गया। यह सत्य था कि मात्र कुछ दिनों का प्रशिक्षण लेने से वह वर्षों से प्रशिक्षित वर्मन को पराजित नहीं कर सकती थी, और भावनाओं के आवेग में वह यह भूल गयी थी।

वर्मन के एक ही प्रहार से उसकी तलवार छिटककर दूर जा गिरी। “मुझे देख तुझे भाग कर कहीं छिप जाना चाहिए था मूर्ख।” उसने निशस्त्र रम्या की ओर बढ़ते हुए कहा, “परंतु तुझे तो मृत्यु की इतनी शीघ्रता थी कि तू स्वयं मेरे समक्ष आकर खड़ी हो गयी।”

उसने रम्या की गर्दन पर प्रहार करने के लिए अपनी तलवार घुमाई परंतु रम्या तक पहुँचने से पूर्व ही एक बाण आकर उसके तलवार से टकराया। वर्मन ने अपनी दृष्टि घुमाकर वसुधा को अपनी ओर बढ़ते हुए देखा। *एक अन्य युवती। क्या सिंधुपद में युवकों की कमी है जो वह युवतियों को युद्ध करने के लिए भेज रहे हैं।*

वसुधा ने अपना धनुष अपने अश्व पर रखा और तलवार लेकर पैदल ही वर्मन की ओर बढ़ गयी।

असाक के साथ आये वर्षाणों ने रणनीति के अनुसार एक लंबी सी रचना का निर्माण कर लिया था, जिसके मध्य में असाक और त्रीमा खड़े थे। उनकी वह पंक्ति सिंधुपद के सैनिकों को मारते हुए आगे बढ़ रही थी। सिंधुपद के सैनिक जैसे ही उस पंक्ति के किसी सदस्य को घायल करते अथवा उसका वध करते, तत्क्षण कोई अन्य वर्षाण उस स्थान पर आ जाता। इसके अतिरिक्त पंक्ति में समान दूरी पर असाक ने ऐसे वर्षाण योद्धाओं को नियुक्त किया था जो छोटे छोटे टुकड़ियों का नेतृत्व कर रहे थे। किसी भी प्रकार से सामान्य सैनिक उस पंक्ति को तोड़ नहीं पा रहे थे।

प्रतापसेन ने स्थिति का आकलन किया और अपना अश्व सीधे असाक की ओर बढ़ा दिया। उसके पीछे पीछे उसका दल भी उस पंक्ति की ओर बढ़ गया। सर्वप्रथम प्रतापसेन ने बाण और भाले जैसे अस्त्रों का प्रयोग किया, कुछ वर्षाण घायल हुए परंतु अधिकांश ने ढाल से स्वयं को रक्षित कर लिया। घायल सैनिकों के स्थान पर भी तत्क्षण पीछे से नए वर्षाण सैनिक आ गए।

उस पंक्ति को तोड़ने का एक ही विकल्प था, निकट जाकर युद्ध करना। प्रतापसेन अपना अश्व असाक के कुछ और निकट ले आया। परंतु उसी समय असाक ने अपना अश्व कुछ पीछे कर लिया। प्रतापसेन को कुछ समझ नहीं आया। *वह अवश्य ही भयभीत होगा,* उसने अनुमान लगाया। उसने पुनः बाण द्वारा असाक पर आक्रमण किया जिससे वह सरलता से बच गया। वह कुछ और पग पीछे हटा और इस बार प्रतापसेन पर कुछ बाण मारे, जिन्हें देखते ही प्रतापसेन सरलता से समझ गया कि इससे निपुण बाण संधान तो बालक कर लेंगे।

अंततः असाक वास्तविकता में चाहता क्या था?

शीघ्र ही प्रतापसेन को वास्तविकता का आभास हुआ, परंतु तब तक विलंब हो चुका था। उसने देखा कि असाक पीछे तो हटा था परंतु न उसके और न उसके अश्व के शरीर पर एक भी घाव था। *असाक अपनी इच्छा से पीछे हट रहा था।*

उसने अपनी दृष्टि घुमाई तो स्वयं को वर्षाणों से घिरा पाया। जो पंक्ति वर्षाणों ने बनाई वह अब एक गोले का रुप धारण कर चुकी थी और वह उस गोले के मध्य खड़ा था। उसके दल के अधिकांश सैनिक गोले के बाहर ही रह गए थे और गोले की रक्षा कर रहा त्रीमा किसी भी अन्य को उसमें प्रवेश नहीं करने दे रहा था। जो सिंधुपद के सैनिक गोले में प्रवेश कर पाये थे वह भी वर्षाण योद्धाओं से द्वंद्व कर रहे थे और प्रतापसेन को ज्ञात था कि वह अधिक समय तक जीवित नहीं बच पायेंगे।

उसने अपने समक्ष खड़े असाक को देखा जो कुत्सित भाव से मुस्कुरा रहा था। दोनों के मध्य निर्णायक द्वंद्व का समय आ चुका था।

चंद्रसेन ने दूर से ही अपनी भाई की स्थिति देखी और अपने दल को उसी ओर ले आया, परंतु उसके निकट पहुँच पाने से पूर्व प्रतापसेन वर्षाणों से घिर चुका था। वह उस गोले पर सीधा आक्रमण करना चाहता था परंतु अरिदमन ने उसे रोक दिया। यह वर्षाणों की संरचना थी और प्रतापसेन की भांति चंद्रसेन भी उसमें फँस सकता था। इस समय उनकी प्राथमिकता भी प्रतापसेन की रक्षा करनी थी और वह भी अतिशीघ्र।

उन्होंने निकट खड़े सभी दलपतियों को त्रीमा पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया।

वहाँ से थोड़ी ही दूर वसुधा वर्मन से द्वंद्व कर रही थी। वसुधा ने वर्मन पर प्रहार किया जिसे उसे अपने दाहिने हाथ में थमी तलवार से मध्य में ही रोक दिया और साथ ही बाएँ हाथ की कोहनी से उसके जबड़े पर प्रहार किया। परंतु वसुधा अपने स्थान से हिली नहीं। उसने शीघ्रता से अपनी तलवार को वापस खींचा और पुनः प्रहार कर दिया। वर्मन ने पुनः उस प्रहार को रोका और स्वयं आगे बढ़कर प्रहार किया।

दोनों ही खड्ग विद्या में पारंगत थे अतः दोनों ही एक दूसरे को सामान टक्कर दे रहे थे। वर्मन ने एक अन्य प्रहार किया और उसके साथ ही अपने पैरों से वसुधा के पैरों पर भी प्रहार कर दिया। लड़खड़ाती वसुधा पीछे हट गयी अन्यथा वर्मन के प्रहार अवश्य ही उसके अंग भंग कर देते।

“यशवर्धन से सुना था तेरे विषय में।” वर्मन बोला, “वह तो तुझे वीर और साहसी बताता था, परंतु तू भी मात्र मूर्ख ही है जो हमसे युद्ध करने आ गई। तेरे भाई ने भी ऐसा ही मूर्खतापूर्ण कार्य किया था और अंततः मेरे द्वारा मारा गया था। तू भी मारी जाएगी और वह भी मेरे ही हाथों। कैसा विचित्र संयोग है।”

यश के विषय में सुन वसुधा का रक्त भीतर ही भीतर उबल उठा। उसने आगे बढ़कर पुनः प्रहार किया। पुनः समान टक्कर। वसुधा को अनुमान था कि वर्मन पुनः कोई अनुचित प्रहार करेगा और उसका अनुमान सत्य निकला।

वर्मन ने रम्या की तलवार को अपने तलवार से रोका और पुनः अपने पैरों से उसके पैरों पर प्रहार करना चाहा। परंतु रम्या ने विद्युत गति से अपनी तलवार मुक्त की और वर्मन के पैरों पर प्रहार कर दिया। उस गहरे घाव से अगले ही क्षण रक्त बहने लगा।

परंतु वर्मन रुका नहीं, वह लंगड़ाते हुए आगे बढ़ा और रम्या पर प्रहार किया। इस बार रम्या ने अवसर देख कर अपने पैरों से वर्मन के पैरों पर प्रहार कर दिया। ठीक उसी स्थान पर जहाँ उसकी तलवार ने घाव किया था। वर्मन के घुटने स्वतः ही मुड़ गए। वसुधा ने अपनी तलवार घुमाई और वर्मन के गले पर रक्त की एक रेखा खिंच गई। उसकी तलवार उसके हाथों से छूट गयी और वह अपने दोनों हाथों से अपने गले से बह रहे रक्त को रोकने का प्रयास करने लगा।

उसके समक्ष खड़ी वसुधा उसे देखती रही जब तक कि वर्मन का शरीर निष्प्राण होकर भूमि पर लुढ़क नहीं गया।

प्रतापसेन के गोले के भीतर पहुँचते ही असाक ने उसपर आक्रामक प्रहार करने आरंभ कर दिए। प्रतापसेन ने अपना भाला उसपर फेंका, परंतु असाक ने तीव्रता से अपने अश्व को घुमा दिया और स्वयं भी झुक गया। भाला उसके कंधे पर बंधे कवच को छूता हुआ पीछे भूमि में जा धँसा।

प्रतापसेन ने अपनी तलवार निकाली और अपने अश्व को असाक की ओर दौड़ा दिया। उसे देख असाक ने भी वैसा ही किया। दोनों एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में अश्व की वल्गा थामे एक दूसरे की ओर बढ़े। दोनों की तलवारें टकराईं जिसकी ध्वनि युद्ध के कोलाहल में लुप्त हो गयी। दोनों ने पुनः अपने अपने अश्व दूर कर लिए।

वह एक बार पुनः अपने अश्वों को लेकर एक दूसरे की ओर बढ़ने वाले थे कि एक वर्षाण ने प्रतापसेन के अश्व पर भाला फेंक दिया। उसने अत्यंत कठिनाई से स्वयं को गिरने से बचाया। उसने अपने अश्व को देखा, वह अधिक समय तक जीवित नहीं रहने वाला था। युद्ध के मध्य तो कदापि नहीं, अपितु युद्ध में वह अपने वाहक के लिए समस्या ही उत्पन्न करता।

परंतु कुछ निर्णय ले प्रतापसेन ने अपना अश्व असाक की ओर बढ़ा दिया जो किसी भी प्रकार से अपनी संपूर्ण क्षमता से दौड़ नहीं पा रहा था।

असाक उसकी और उसके अश्व, दोनों की स्थिति देखकर आनंदित हो रहा था। उसने भी अपना अश्व प्रतापसेन की ओर बढ़ा दिया।

परंतु नियत समय पर, निकट पहुँचते ही प्रहार करने के स्थान पर प्रतापसेन से अपना अश्व मोड़कर असाक के अश्व से टकरा दिया। गतिशील होने के कारण दोनों अपने अपने अश्वों से नीचे गिर पड़े। असाक की मुस्कान उसके मुख से विलुप्त हो गयी। उसने अपनी तलवार उठाई और पैदल ही प्रतापसेन की ओर बढ़ गया।

रात्रि के अंधकार को मिटाने के लिए लगाये गए दीपदंड का कृत्रिम प्रकाश उन दोनों तक नहीं पहुँच रहा था।

दोनों ने तलवार द्वंद्व आरंभ कर दिया।

दोनों ही कुशल योद्धा थे।

भारी शरीर के कारण असाक में बल अधिक था तो प्रतापसेन में चपलता अधिक थी। यह द्वंद्व अविराम कई दिनों तक चलता रहता।

असाक को भी यह तथ्य ज्ञात था। परंतु उसके पास कई दिनों का समय नहीं था। सिंधुपद की सेना उसकी संरचना को तोड़ने का प्रयास कर रही थी और ऐसा होते ही कई दलपति प्रतापसेन की सहायता हेतु आ जाते। और उसकी सारी योजना व्यर्थ हो जाती।

उसने कुछ संकेत किया और तीन अन्य वर्षाणों ने भी प्रतापसेन को घेर लिया।

प्रतापसेन अब चार शत्रुओं से घिरा हुआ था। उसने एक गहरी श्वास ली और अपने शरीर का शेष बल एकत्र किया। उसका घेराव करने वाले तीनों वर्षाण अश्वों पर बैठे हुए थे। *वह अवश्य ही वरिष्ठ वर्षाण योद्धा था,* उसने अनुमान लगाया। उसने सर्वप्रथम उनके अश्वों पर प्रहार किया। उसका लक्ष्य था उन तीनों वर्षाणों को भूमि पर लाना क्योंकि अश्व पर बैठे प्रतिद्वंदी से जीतना कठिन था। यदि वह भूमि पर रहते तो वह सरलता से एक साथ उन तीनों को पराजित कर सकता।

असाक थोड़ा पीछे हट मात्र दूर से ही प्रतापसेन को तीनों वर्षाणों से जूझते हुए देख रहा था।

प्रतापसेन अश्वों को घायल करने में सफल तो हो गया परंतु इस प्रयास में स्वयं उसके शरीर पर कई घाव हो गए। रक्तस्राव होने के कारण उसका बल क्षीण होता जा रहा था और उसकी श्वास फूलने लगी थी। परंतु उसके हाथ एक क्षण को भी रुके नहीं।

अपने भाई की यह दशा देख चंद्रसेन का हृदय चीत्कार कर उठा। उसका दल वर्षाणों से युद्ध कर रहा था परंतु वह मात्र मूक अवस्था में खड़ा था। वह चाहकर भी उस संरचना के भीतर नहीं जा सका था।

सभी दलपतियों के आक्रमण करते ही त्रीमा ने वहाँ कई वर्षाण योद्धा बुला लिए। दोनों ही पक्षों ने अपनी शक्ति का एक विशाल भाग उसी स्थान पर झोंक दिया था। दोनों ही पक्षों से बहुत शीघ्रता से सैन्य बल का नाश हो रहा था।

अरिदमन ने त्रीमा से युद्ध आरंभ कर दिया क्योंकि उस पंक्ति को तोड़ने का शीघ्र उपाय यही था कि उनके सेनापति को मार दिया जाये। योजना अनुसार कुछ दलपति अरिदमन के बायीं ओर से और कुछ दाहिने ओर से वर्षाणों को रोके हुए थे जिससे वह अरिदमन और त्रीमा के युद्ध में हस्तक्षेप न कर पायें।

त्रीमा ने अपने निकट पहुँच चुके अरिदमन के दाहिने हाथ पर प्रहार किया। अरिदमन ने अपने शरीर को धीरे से मोड़ा और उस प्रहार से बच गया। त्रीमा ने पुनः अगला प्रहार किया जिसे अरिदमन ने अपनी ढाल से रोका और दूसरे हाथ में थमी तलवार से उसके सिर पर प्रहार किया। त्रीमा भी झुककर उस प्रहार से बच गया।

परंतु उसी क्षण अरिदमन ने अपनी ढाल घुमाई और उसके मुख पर प्रहार किया। त्रीमा का सिर हिल गया। उसे अनुमान भी नहीं था कि वह किससे युद्ध कर रहा है। त्रीमा ने पुनः प्रहार किया तो अरिदमन ने झुककर अपनी कोहनी से उसके उदर में प्रहार किया। वह प्रहार इतना तीव्र था कि त्रीमा के मुख से रक्त निकलने लगा। उसके सँभलने से पूर्व अरिदमन ने पुनः अपनी ढाल घुमाई और उसके सिर पर प्रहार किया।

त्रीमा बेसुध हो भूमि पर गिर पड़ा।

अरिदमन ने सैनिकों को संकेत किया कि वह त्रीमा को बंधक बना लें और स्वयं पंक्ति में खड़े वर्षाणों से द्वंद्व करने लगे।

वर्षाण उस वृद्ध पर्वत समान पूर्व सेनापति के समक्ष अधिक समय तक नहीं टिक पाए। पंक्ति टूट गयी। परंतु तब तक विलंब हो चुका था। अरिदमन ने विस्फरित नेत्रों से देखा कि अत्यंत कठिनाई से अपने पैरों पर खड़े प्रतापसेन ने तीनों वर्षाणों को धराशायी कर दिया है और अब पुनः असाक से द्वंद्व कर रहा है।

उनकी आँखों के समक्ष ही असाक ने अपनी भारी गदा घुमाई और प्रतापसेन भूमि पर गिर पड़ा। संभवतः उससे पूर्व ही उसके शरीर का आधा रक्त बह चुका था।

अरिदमन के साथ साथ वहाँ खड़े अन्य दलपति भी स्तब्ध थे। निकट खड़े सैनिकों ने भी कुछ समय के लिए युद्ध रोक दिया। वह प्रातः काल से ही निरंतर युद्ध कर रहे थे और अपने सेनापति की मृत्यु के पश्चात उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था। वह भयभीत भी थे।

कौस्तुभ अरिदमन के निकट बढ़ आया। यदि ऐसी ही स्थिति रही तो यह कहना अनुचित नहीं था कि वह पराजय की ओर अग्रसर थे। दूसरी ओर वर्षाण असाक के नाम का उच्चारण कर रहे थे और पंक्ति में मृत वर्षाणों के स्थान पर नए वर्षाण भरते जा रहे थे। अपने सेनापति त्रीमा के बंधक होने से उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ रहा था।

अरिदमन ने अपने निकट खड़े दलपतियों से कहा, “असाक अभी भी गोले के मध्य खड़ा है। इस युद्ध को समाप्त करने का एकमात्र विकल्प है उसकी मृत्यु। मैं उससे द्वंद्व करने जा रहा हूँ।”

“परंतु यही तो उसकी संरचना का लक्ष्य है।” कौस्तुभ बोला, “एक एक कर योद्धाओं को भीतर बुलाना और उन्हें घेर कर मारना। और यदि हम सब भीतर चले जायेंगे तो वह वर्षाण बाहर हमारी सेना का नाश कर देंगे।”

“इसी कारण मैं स्वयं जा रहा हूँ।” अरिदमन ने कहा, “तुम सब बाहर सेना का नेतृत्व करोगे और पूर्व की भांति इस पंक्ति को तोड़ने का प्रयास करोगे।”

कौस्तुभ ने कुछ क्षण के लिए कल्पना की। अरिदमन गोले के भीतर असाक से युद्ध कर रहे हैं। संभवतः असाक कई अन्य योद्धाओं को भी अरिदमन को घेरने का आदेश दे देगा। अरिदमन विजयी भी हो सकते हैं और पराजित भी। वह सभी बाहर से वर्षाणों को मार रहे हैं। सैनिक थके हुए हैं और मानसिक रुप से भयभीत भी।

“नहीं।” कौस्तुभ ने कहा, “आपकी आवश्यकता सैनिकों को अधिक है। उन्हें एक नेतृत्व की आवश्यकता है। उन्हें एक विश्वास की आवश्यकता है। और मात्र आप ही वह करने में सक्षम हैं। यहाँ का प्रत्येक सैनिक आपको पहचानता है, अम्राली के राजाश्री के रूप में नहीं अपितु उत्तराँचल के पूर्व सेनापति के रुप में जिसने मायावियों के प्रधान कुलितर का वध किया था। मात्र आप ही हैं जो इस क्षण हमारी मृतप्राय सेना में प्राण फूँक सकते हैं।”

“परंतु यदि मैं असाक से द्वंद्व नहीं करूँगा तो कौन करेगा?” अरिदमन ने असहाय भाव से कहा।

चंद्रसेन ने असहाय भाव से अपने भाई के शव को देखा और अपनी दृष्टि झुका ली। उसकी आँखों में अश्रु भर आये। *हम यह युद्ध हार चुके हैं।*

अरिदमन और अन्य दलपति क्या चर्चा कर रहे थे उसे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। उसका मस्तिष्क मानो कुंद पड़ चुका था। *कोई भी उपाय, कोई भी योजना अथवा कोई भी रणनीति हमें इस युद्ध में विजय नहीं दिला सकती।*

परंतु तभी उसे एक कोलाहल सुनाई दिया, वर्षाणों का नहीं अपितु सिंधुपद के सैनिकों का। यह कोलाहल शोक का नहीं था, उन्माद का था। उसने अपनी दृष्टि उठाई और इसका कारण जानना चाहा। उसने देखा कि टूटी हुई पंक्ति के मध्यम से कौस्तुभ उस गोले में प्रवेश कर रहा था। उसके प्रवेश करते ही वर्षाणों ने उस पंक्ति को पुनः योद्धाओं से भर दिया।

परंतु यह तो मृत्युद्वंद्व था।

अरिदमन स्वयं अपने अश्व पर बैठे चीख कर सैनिकों का मनोबल बढ़ा रहे थे। संभवतः यह उनका ही प्रभाव था कि निष्क्रिय हो चुके सैनिक पुनः द्वंद्व करने लगे थे।

उसने भी अपनी तलवार को ऊँचा उठाया और अपने दल को आक्रमण करने का आदेश दिया। उसे नहीं ज्ञात था कि कौस्तुभ असाक को पराजित कर पायेगा अथवा नहीं, परंतु यह निश्चित था कि उसने कुछ समय के लिए इस युद्ध के परिणाम को टाल दिया था। और उस समय में उसे मात्र वर्षाणों का संहार करना था।

उसके शस्त्र एक नवीन ऊर्जा के साथ वर्षाणों को मारने लगे।

गोले में प्रवेश करते ही कौस्तुभ ने असाक पर निरंतर तीन बाणों का संधान किया। असाक के लिए यह प्रहार और यह गति अप्रत्याशित थी। उसने दो बाणों से स्वयं को बचाया परंतु तीसरा बाण उसके बाएँ कंधे को घायल कर गया। कौस्तुभ के हाथ इतनी तीव्रता से घूमे थे कि वह देख भी नहीं पाया कि कब उसने तूणीर से बाण निकाले, उन्हें प्रत्यंचा पर रखा और संधान किया।

परंतु धनुष बाण से यह द्वंद्व नहीं जीता जा सकता था। कौस्तुभ ने धनुष और तूणीर अश्व पर बाँधे और तलवार हाथों में लेकर पैदल ही असाक से द्वंद्व करने लगा।

अपने घायल कंधे पर तनिक भी ध्यान न देते हुए असाक ने कौस्तुभ पर प्रहार किया। कौस्तुभ ने सरलता से वह प्रहार रोक लिए। संभवतः वह उसकी क्षमता का आकलन कर रहा था, कौस्तुभ ने सोचा। अँधेरे में चमक रही असाक की आँखें जिस प्रकार कौस्तुभ के अंतर्मन को टटोल रही थीं उससे ज्ञात हो रहा था कि वह एक उत्तम योद्धा है।

कौस्तुभ ने भी धीमे प्रहार किये। आक्रामक होने से पूर्व उसके लिए भी असाक और उसकी नीति को समझना आवश्यक था। यह मेघपुरम आश्रम नहीं था, वास्तविक युद्ध क्षेत्र था परंतु वहाँ सीखे गए पाठों को यहाँ प्रयोग किया जा सकता था।

द्वंद्व में प्रथम प्रहार भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना अंतिम। दोनों ही प्रहार जय अथवा पराजय के लिए निर्णायक थे।

असाक ने अपने प्रहार आक्रामक कर दिए। कौस्तुभ की दृष्टि उसके तलवार पर टिकी हुई थी। उनसे बचते हुए वह स्वयं भी उसपर प्रहार कर रहा था। असाक ने उसके उदर को लक्ष्य बनाकर एक तीव्र प्रहार किया, कौस्तुभ ने उसे अपनी तलवार से रोका। दोनों तलवारों के रगड़ने से ध्वनि उत्पन्न हुई और वह प्रहार कौस्तुभ के बगल से होता हुआ निकल गया।

असाक ने पुनः वही प्रहार किया, परंतु अधिक बल और अलग कोण के साथ। कौस्तुभ ने पुनः स्वयं को बचाया, परंतु इस बार वह प्रहार उसके कमर के ऊपर हल्का सा घाव बना गया। उसने असाक को कम आँका था। द्वंद्व में अंत तक प्रतिद्वंदी को अपनी पूर्ण क्षमता के विषय में न ज्ञात होने देकर उसे भ्रम में रखना एक उत्तम योद्धा के गुण थे।

वह मेरी गति को समझ रहा है। कौस्तुभ इस द्वंद्व को अधिक समय तक नहीं चलने दे सकता था।

द्वंद्व में यह भी अधिक महत्वपूर्ण होता है कि शत्रु के बल को उसी के विरुद्ध प्रयोग करना और उसका ध्यान भटकाना। यह नीति उन्हें युद्ध ग्रंथ की कक्षाओं में सिखाई गयी थी।

असाक ने पुनः प्रहार किया तो कौस्तुभ ने उसे दाहिने हाथ में थमी तलवार से रोका और बाएँ हाथ की कोहनी से उसके कंधे के घाव पर प्रहार किया। उसे पुनः कोई अवसर न देते हुए कौस्तुभ ने प्रहार किया जो उसके कवच से टकराया।

असाक ने कौस्तुभ की पिंडलियों और जंघा को लक्ष्य बनाया, *वह उसकी गति को धीमा करना चाहता था।*

कौस्तुभ भी सजग था, वह चपलता से सभी प्रहारों से बचता जा रहा था। असाक ने कौस्तुभ के सिर को लक्ष्य बनाया तो कौस्तुभ ने झुककर न मात्र स्वयं को बचाया अपितु कंधे से उसे पीछे भी धकेल दिया।

असाक ने अत्यंत कठिनाई से स्वयं को गिरने से बचाया। उस समय भी उसने अपनी तलवार घुमाई जो कौस्तुभ के पीठ पर घाव कर गयी।

कौस्तुभ असाक को क्रोध में अपने नथुने फुलाते और जबड़े भींचते हुए देख सकता था।

असाक ने अपने निकट खड़े वर्षाणों को कुछ संकेत किया और पूर्व की भांति दो अन्य वर्षाण योद्धा वहाँ आ गए। असाक के मुख पर एक कुत्सित मुस्कान आ गयी।

परंतु अधिक समय के लिए नहीं।

पंक्ति के बाहर त्रीमा के बंधक बनने के पश्चात वर्षाण पूर्व क्षमता से उस पंक्ति की रक्षा नहीं कर पा रहे थे। अरिदमन ने एक बार पुनः उस पंक्ति को तोड़ दिया था और अमोघ और चंद्रसेन उस गोले में प्रवेश कर गए। वह दोनों पंक्ति को भीतर से तोड़ने लगे जिससे बाहर घायल अथवा मृत वर्षाणों के स्थान पर नए वर्षाण न आ पायें। कौस्तुभ से द्वंद्व करने आये दोनों वर्षाण उन दोनों से उलझ गए।

अरिदमन ने स्वयं भीतर नहीं प्रवेश किया क्योंकि वह बाहर रहकर ही अधिक क्षमता से वर्षाणों को हानि पहुँचा रहे थे। अन्य दलपतियों के साथ साथ वसुधा, उर्वी और रम्या भी वर्षाणों के शव से उस भूमि को समतल बना रही थीं।

कौस्तुभ और असाक एक बार पुनः एक दूसरे के समक्ष अकेले खड़े थे। कुछ अन्य व्यक्तियों के भीतर प्रवेश करने से असाक का ध्यान बंट गया जिसका लाभ कौस्तुभ ने उठाया। उसने असाक की तलवार की मूठ को पकड़ी हुई उँगलियों को घायल कर दिया। तिलमिलाए हुए असाक ने अपने संपूर्ण बल से प्रहार करना आरंभ कर दिया।

कौस्तुभ को इसी क्षण की प्रतीक्षा थी। असाक अपनी पूर्ण क्षमता से द्वंद्व कर रहा था और वह मन में उसी अनुसार अपने बचाव और आक्रमण की नीति बनाने लगा।

असाक के प्रहारों से स्वयं का बचाव करते हुए कौस्तुभ एकाएक अपने स्थान से पीछे हट गया। वेग में होने के कारण असाक आगे की ओर झुक गया और उसी समय कौस्तुभ ने अपनी कोहनी से उसकी पीठ पर प्रहार किया। असाक की तलवार उसके दाहिने जांघ पर घाव बनाती हुई निकल गयी। परंतु इस प्रक्रिया में असाक भूमि पर गिर पड़ा।

असाक तत्क्षण अपने घुटनों के बल बैठ गया और उसने नीचे गिरी अपनी तलवार को उठाने का प्रयास किया। परंतु कौस्तुभ ने अपने पैरों से उसकी तलवार को दूर फेंक दिया और अपनी तलवार को उसके गले पर रख दिया।

इससे पूर्व कि कौस्तुभ कुछ कर पाता उसके निकट आ पहुँचे चंद्रसेन ने दोनों हाथों में पकड़ अपनी तलवार घुमाई और असाक का सिर उसके धड़ से अलग होकर भूमि पर लुढ़क गया। आश्चर्यचकित कौस्तुभ ने चंद्रसेन को देखा जो क्रोध से काँप रहा था।

कौस्तुभ ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। कुछ ही समय पूर्व असाक ने निर्दयता से उसके भाई को मारा था अतः उसने इस प्रकार अपना प्रतिशोध लिया।

रात्रि के अंतिम प्रहर के आरंभ होने तक युद्ध समाप्त हो चुका था।

वर्षाण पराजित हो चुके थे।

असाक मृत था।

निरंतर आठ प्रहर से युद्ध करते करते कौस्तुभ थक गया था। उसके शरीर पर कई घाव थे जिन्हें भरने में कई माह लगते। उसने अपनी तलवार नीचे गिर जाने दी और स्वयं भी वहीं बैठ गया।

अध्याय 29
सहायता

अपने अंगरक्षकों को बाहर ही रोक शतबाहु आश्रम प्रमुख महर्षि वह्निमित्र के कक्ष की ओर बढ़ गया। वह आश्रम जहाँ उसने शिक्षा ग्रहण की थी। एक वर्ष पूर्व भी वह वहाँ आया था, परंतु उस समय उसका उद्देश्य था अपने गुरु से भेंट करना। इस समय उसका उद्देश्य था अपने गुरु से सहायता माँगना।

उसने झुककर कक्ष में एकांत में बैठे वह्निमित्र को प्रणाम किया। उसने ध्यान दिया कि उसे देख महर्षि उतने उत्साहित नहीं हुए, जितने वह सामान्यतः होते थे। वह किसी विषय में चिंतित थे।

“बैठो शतबाहु!” महर्षि वह्निमित्र ने अपने स्वर को उत्साहजनक बनाने का प्रयत्न करते हुए कहा। परंतु शतबाहु से यह छिपा नहीं कि यह उत्साह वास्तविक नहीं अपितु कृत्रिम था।

शतबाहु ने निश्चय किया था कि वह वहाँ आते ही सर्वप्रथम अपना प्रयोजन बताएगा, परंतु वह प्रश्न किये बिना नहीं रह सका, “आप चिंतित प्रतीत हो रहे हैं, गुरुश्रेष्ठ। आपकी चिंता का कारण क्या है?”

वह्निमित्र ने उसे शिखी के विषय में बताया, वह एक दिन पूर्व ही आश्रम छोड़ कर गया था और वह उसे रोक नहीं सके थे। उन्होंने उसे संक्षिप्त रुप से आदिपशुओं के विषय में भी बताया, किस प्रकार सुप्त पदार्थ की सहायता से उन्हें एक ही स्थान पर रहने के लिए बाध्य किया जाता था और किस प्रकार उनकी वास्तविकता को अन्य मनुष्यों से छिपाया गया था।

शतबाहु को ज्ञात था कि महर्षि सदैव से आदिपशुओं के अस्तित्व को नकारते रहे थे, अतः यह तथ्य उनके लिए भी उसी प्रकार आश्चर्यचकित करने वाला रहा होगा जितना उसके लिए। परंतु उसे यह भी ज्ञात था कि महर्षि के शांत और तपस्वी मस्तिष्क ने सरलता से इस तथ्य को स्वीकार कर लिया होगा। यही तो उनका स्वभाव था।

परंतु वह विचलित क्यों थे? शिखी के कारण? महर्षि ने ही तो बताया था कि शिखी आश्रम के सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में से एक था।

वह स्वयं भी तो विचलित था। जब उसने वन में मिले उस शिशु को मरुभूमि आश्रम में पहुँचाने का निर्णय लिया था तब उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक दिन ऐसी भी स्थिति आ जाएगी। वह स्वयं भी उस शिशु से एक जुड़ाव का अनुभव करेगा। शिक्षा उपरांत वह मात्र वर्ष में एक दो बार ही उस स्थान पर आता था और प्रायः शिखी को देखता था। उसके नेत्रों में उसे मात्र प्रश्न ही दिखाई देते थे। स्वयं से संबंधित और स्वयं के अस्तित्व से संबंधित।

कई वर्षों पूर्व जब शिखी मात्र आठ या नौ वर्ष का रहा होगा, उसने उससे पूछा था, “क्या आप मेरे पिता को जानते हैं?” शतबाहु उस समय मरुभूमि आश्रम आया था और शिखी के इस प्रश्न पर हड़बड़ा गया। उसने कभी विचार नहीं किया था कि उसे किसी ऐसे प्रश्न का सामना भी करना पड़ सकता है।

“नहीं।” उसने मात्र इतना ही कहा और शिखी उस स्थान से चला गया। इसके पश्चात वह कई बार वहाँ आया, शिखी से मिला परंतु उसने पुनः ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया। अपितु उसने कोई प्रश्न ही नहीं किया, उनके मध्य मात्र औपचारिक बातें ही होती थीं। आश्रम से संबंधित अथवा शिक्षा से संबंधित। संभवतः समय के साथ शिखी भी अपने प्रश्न की निरर्थकता के विषय में जान चुका था।

“दत्र कैसा है?” शतबाहु ने महर्षि से पूछा।

“अब स्वस्थ है, पीड़ा के कारण वैद्य ने उसे निद्रा की औषधि दी थी। परंतु अब उसका प्रभाव भी समाप्त होने वाला होगा।” महर्षि ने बताया, और कुछ क्षण रुककर पूछा, “तुम्हारे यहाँ आने का कोई विशेष प्रयोजन?”

शतबाहु ने एक गहरी श्वास ली, शिखी से संबंधित विचारों को अपने मस्तिष्क से हटाने का प्रयास किया और बोला, “प्रयोजन विशेष ही है गुरुश्रेष्ठ। मैं यहाँ आपसे सहायता माँगने आया हूँ। आपको तो ज्ञात ही होगा कि उत्तराँचल से हुए युद्ध में उन्होंने मंत्र विद्या का प्रयोग किया था।”

वह्निमित्र ने सहमति में अपना सिर हिलाया, “हाँ, और ज्ञानशिला द्वारा कौस्तुभ को उसका दंड भी दिया जा चुका है।”

“मुझे भय है कि आने वाले युद्ध में भी वह ऐसा ही करेंगे।” शतबाहु ने कहा।

वह्निमित्र ने शतबाहु को ध्यान से देखा, “तो निर्णय हो चुका है कि पुनः युद्ध होगा?”

“युद्ध तो अवश्यंभावी है।” शतबाहु ने गंभीर स्वर में कहा, “मैं न तो वारिमित्र की मृत्यु को भूला हूँ और न ही मैं उसकी मृत्यु को व्यर्थ जाने दूँगा। यह विचार करना भी कि बिना युद्ध के दोनों सेनाएँ लौट जाएँगी मूर्खता होगा।”

“इसमें मैं किस प्रकार तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ?” वह्निमित्र ने प्रश्न किया।

“मैं मरुभूमि से सहायता माँगने आया हूँ। यदि युद्ध में मेरे पक्ष में भी मंत्र विद्या धारक योद्धा रहेंगे तो युद्ध में दोनों पक्षों का शक्ति स्तर समान रहेगा।”

“नहीं।” वह्निमित्र ने कहा, “यह किसी भी दशा में संभव नहीं। मंत्र विद्या अत्यंत नाशक है, इसी कारण सामान्य युद्धों में उनका प्रयोग निषेध किया गया था। मरुभूमि का कोई भी आचार्य तुम्हारी सहायता नहीं करेगा। यद्यपि तुम आश्रम के किसी सामान्य योद्धा से सहायता माँग सकते हो, वह अपनी स्वेच्छा से तुम्हारा साथ दे सकते हैं। परंतु मैं उन्हें बाध्य नहीं कर सकता।”

शतबाहु ने कुछ क्षणों तक विचार किया और बोला, “नहीं महर्षि। उसकी कोई आवश्यकता नहीं।”

“तब संभवतः तुम्हें इस स्थान से रिक्त हाथ ही लौटना पड़ेगा।” वह्निमित्र ने कहा।

शतबाहु वहाँ मात्र मंत्र विद्या ज्ञाता योद्धाओं की सहायता लेने आया था। उसे विश्वास तो नहीं था कि महर्षि उसकी सहायता करेंगे, परंतु संभावना अवश्य थी। यदि कुछ सामान्य योद्धा उसके पक्ष से युद्ध करने को तैयार भी हो जाते तो उसके सैन्य बल में अधिक अंतर नहीं पड़ता। इसी कारण उसने किसी अन्य से कुछ न कहने का निर्णय किया।

“आज्ञा दीजिये।” उसने महर्षि के चरण छुए और कक्ष से निकलने लगा।

“शतबाहु! तुम युद्ध करने के कारण तो देख रहे हो, परंतु युद्ध न करने का एक न एक कारण सदैव रहता है।” महर्षि ने कहा, “युद्ध ही एकमात्र विकल्प नहीं होता, उसे टाला भी जा सकता।”

“इस युद्ध में पहले से ही इतनी आहुतियाँ दी जा चुकी हैं कि युद्ध न करना उन आहुतियों के प्रति अन्याय होगा।” शतबाहु ने उत्तर दिया, “इस बार युद्ध करने के कारण, युद्ध न करने के कारण से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। अब इस युद्ध को टाला नहीं जा सकता।”

इसके पश्चात वह कक्ष से निकल गया और महर्षि को प्रतीत हुआ कि यह वह शतबाहु नहीं था जिसे उसने वर्षों पूर्व शिक्षा दी थी।

मरुभूमि से ठीक बाहर नर्मदा की ओर जाने वाला मार्ग सघन वनों के मध्य से होकर जाता था। मरुभूमि के भीतर निर्मित मार्ग पर्याप्त चौड़ाई वाले थे और आश्रम द्वारा नियमित अंतराल पर उन मार्गों का सुधार किया जाता था। परंतु मरुभूमि की सीमा के बाहर के मार्ग जीर्ण थे और वृक्ष आदि उग आने से वन का भाग ही प्रतीत होते थे।

उस स्थान पर प्रायः कोई नहीं जाता था, परंतु इस क्षण उस स्थान पर कई सैनिक उपस्थित थे। उत्तराँचल के सैनिक। अपने अश्वों को उन्होंने दूर बांधा हुआ था और वह कम से कम ध्वनि उत्पन्न करते हुए मार्ग के निकट छिपते जा रहे थे।

उन्हें यही आदेश मिला था कि प्रत्येक दशा में अपनी उपस्थिति को छिपाए रखना है। कुछ सैनिक चौड़े वृक्षों के पीछे खड़े हो रहे थे, कुछ सैनिक घनी पत्तियों वाले वृक्षों की शाखाओं पर बैठ रहे थे।

तलवार, भाले, धनुष, जो जिस शस्त्र विद्या में पारंगत था उसके पास वह शस्त्र उपस्थित था और वह इस प्रकार सज्ज थे कि संकेत प्राप्त होने के क्षण भर पश्चात ही प्रहार कर दें।

जिस प्रकार जल में कंकड़ मारने के कुछ समय पश्चात जल पुनः स्थिर हो जाता है, उसी प्रकार वन के उस भाग में भी पुनः शांति छा गयी। कुछ ही समय में वह अपने अपने निर्धारित स्थानों पर छिप गए। उनके श्वास लेने की ध्वनि इतनी कम थी कि वह वन में बहने वाली वायु के धीमे स्वर में छिप जा रही थी।

उसके पश्चात वह सभी प्रतीक्षा करने लगे।

दक्षिणांचल के महाराज शतबाहु की प्रतीक्षा।

निद्रा से जागते ही दत्र के शरीर में पीड़ा की लहर दौड़ गयी। वह किसी अनजान स्थान पर था। वह लेटे हुए ही अपने स्थान से तनिक सा हिला, पर्यंक में ध्वनि हुई। और उसने अनुभव किया कि कोई व्यक्ति उसकी ओर बढ़ रहा था।

उसने अपने मस्तिष्क को केंद्रित किया और औषधियों की गंध उसके नथुनों से टकराई। *वह औषधालय में था।*

उसने स्मरण करने का प्रयत्न किया कि वह वहाँ कैसे पहुँचा था और उसे प्राचीन प्रार्थना गृह का स्मरण हो आया। किसी ने उसे और शिखी को जीवित ही जला देना चाहा था। *शिखी! कहाँ होगा शिखी?*

“अपने स्थान से हिलने का प्रयत्न न करो, तुम्हारे शरीर पर अभी भी कुछ घाव हैं।” उसे वैद्य का स्वर सुनाई दिया। उसे प्रतीत हुआ कि उसकी पीड़ा बहुत कम हो गयी थी। प्रार्थना गृह की घटना के पश्चात उसे कुछ अधिक स्मरण नहीं हो रहा था। मात्र इतना ही कि एक बार और उसकी चेतना लौटी थी और उसके सिर में बहुत अधिक पीड़ा हो रही थी। इतनी कि वह कराह रहा था, तब वैद्य ने उसे कुछ पिलाया था। संभवतः निद्रा की औषधि।

“क्या तुम्हारे सिर में अभी भी पीड़ा है?” वैद्य ने प्रश्न किया।

“नहीं।” दत्र ने कहा। उसका गला सूख रहा था, उसने वैद्य से जल माँगा। वैद्य ने उसे जल पिलाया और कुछ अन्य औषधियाँ दीं।

तभी कक्ष में किसी अन्य ने प्रवेश किया। दत्र ने प्रयास किया वह अनुमान लगाये कि वह कौन था, परंतु वह अपना ध्यान केंद्रित नहीं कर सका।

“शिखी?” उसने आगंतुक से पूछा।

परंतु आगंतुक शिखी नहीं केतुभ था। दत्र को तनिक निराशा हुई।

“वैद्य ने बताया था तुम इस समय तक चेतना में लौट आओगे।” केतुभ ने कहा, “चिंतित न हो, शीघ्र ही तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे।”

दत्र ने मात्र सहमति में सिर हिलाया। “शिखी कहाँ है? वह भी तो मेरे साथ ही था।”

“शिखी ठीक है, उसे कोई गंभीर चोट नहीं आई है।” केतुभ ने कहा।

“परंतु वह है कहाँ?” दत्र ने आतुर स्वर में पूछा।

“ज्ञात नहीं।”

“ज्ञात नहीं? केतुभ तुम यह कैसी बातें कर रहे हो।”

केतुभ ने सावधानीपूर्वक अपने शब्दों का चयन किया और बोला, “शिखी ने आश्रम त्याग दिया है। इस समय वह कहाँ होगा मुझे नहीं ज्ञात।”

“क्या! परंतु क्यों?” दत्र शिखी के इस निर्णय को समझ नहीं पा रहा था, “वह ऐसा क्यों करेगा।”

“उसके पास अवश्य ही कोई उपयुक्त कारण रहा होगा। आश्रम से जाने से पूर्व उसने मुझसे भी भेंट नहीं की।”

दत्र अपने स्थान पर उठ कर बैठ गया। “उसने कब प्रस्थान किया?”

“कल संध्या समय।” केतुभ ने बताया।

दत्र को उठता देख वैद्य उसके निकट बढ़ आया। “कृपया अपने स्थान से उठो मत। तुम्हारे शरीर की क्षतिपूर्ति नहीं हुई है।”

परंतु उसका ध्यान वैद्य की बातों पर नहीं था। वह तो मन ही मन शिखी के इस निर्णय के पीछे के सभी संभावित कारणों को ढूँढ रहा था। अवश्य ही उसे लगी चोट का दोषी शिखी ने स्वयं को माना होगा और यह निर्णय लिया होगा। या संभवतः ऐसा करने के पीछे कोई भिन्न कारण रहा होगा, शिखी को समझना सरल नहीं था।

दत्र ने इधर उधर अपना हाथ हिलाया तो उसे अपनी लाठी मिल गयी। उसके शरीर में कुछ और बल आ गया। वह अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ।

“दत्र, अपने स्थान पर ही लेट जाओ।” केतुभ ने कहा, “वैद्य जी कह रहे हैं कि तुम्हारा शरीर अभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हुआ है।”

“मेरा शरीर तभी स्वस्थ होगा जब शिखी पुनः लौट आयेगा। उसके इस निर्णय का कारण मैं ही हूँ। यदि मैं बेसुध नहीं रहता तो अवश्य ही उसे समझा पाता।”

“परंतु वह यहाँ से जा चुका है।” केतुभ ने अपने शब्दों पर बल देते हुए कहा।

दत्र शीघ्रता से कक्ष के द्वार तक पहुँच गया। “परंतु वह अधिक दूर नहीं गया होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब मैं उससे मिलूँगा, उसे उचित प्रकार से समझाऊंगा तो वह अवश्य समझेगा। वह पुनः आश्रम लौट आयेगा।”

इससे पूर्व कि वैद्य अथवा केतुभ उसे रोक पाते वह उस कक्ष से चला गया।

अध्याय 30
आक्रमण

शतबाहु अपने दल के साथ मरुभूमि की सीमा के बाहर पहुँच गया था। वह जिस उद्देश्य से मरुभूमि आया था वह उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ, परंतु वह संतुष्ट था कि उसने यह प्रयास किया।

आश्रम में जाने से पूर्व ही उसे प्रसान नगर में हुए युद्ध और उसके परिणाम की सूचना प्राप्त हो चुकी थी और इस समय वह उन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आने वाले युद्ध के विषय में विचार कर रहा था।

इस बार शत्रु सेना भी सज्ज थी, इस कारण वह कोई भूल नहीं होने देना चाहता था। यह अंतिम अवसर था, उत्तराँचल पर आधिपत्य स्थापित करने का, अपने पितामह का स्वप्न पूर्ण करने का।

उसने अपने दाहिने हाथ की अनामिका उँगली में पहनी हुई मुद्रिका को देखा जिसमें नीला स्फटिक जड़ा हुआ था। वह मूलतः नील स्फटिक का भाग था, जिसके बारे में कहा जाता था कि उसकी सहायता से मायावी जीवात्मा को अधिक समय तक के लिए बांध कर रख सकते थे। उसके पितामह ने मृत्यु के समय उसे वह मुद्रिका दी थी और उसे सदैव ऐसा प्रतीत होता था कि उसके पितामह उसके निकट हैं। उस मुद्रिका में जड़े स्फटिक के कारण।

उबड़ खाबड़ और अनियमित मार्ग होने के कारण दल की गति कुछ मंद हो गयी थी। शतबाहु अपने अश्व पर बैठा दल के मध्य में था और उसके अंगरक्षकों ने सभी ओर से उसे घेरा हुआ था।

तभी एक बाण आकर शतबाहु के बाएँ कंधे में धँसा। इस अकस्मात प्रहार से उसके मुख से कराह निकल गयी। अगले ही क्षण उसके अंगरक्षकों ने अपनी अपनी ढाल ऊँची कर दी और चौकन्नी दृष्टि से इधर उधर देखने लगे।

एक क्षण पश्चात सभी दिशाओं से बाण वर्षा हुई, कुछ अंगरक्षक घायल हुए परंतु एक भी बाण शतबाहु तक नहीं पहुँच पाया।

शतबाहु ने अपने दाँत भींचे और दाहिने हाथ से खींचकर बाण को बाहर निकाला। प्रहार निश्चय ही उसके हृदय को लक्ष्य बनाकर मारा गया था, परंतु गतिमान अश्व पर होने के कारण बाण अपना लक्ष्य चूक गया। *कोई उस निर्जन वन में उसका वध करना चाहता था, परंतु कौन?*

वह अपने अश्व से नीचे उतरा, अपनी तलवार को निकाल कर अपने हाथों में लिया और ध्यान से उस ओर देखा जहाँ से बाण आये थे। उसे एक वृक्ष पर चढ़ा हुआ एक व्यक्ति दिखाई दिया, इससे पूर्व कि शतबाहु उसे ध्यान से देख पाता अथवा उसपर आक्रमण करने का आदेश देता वह सैनिक दिखाई देना बंद हो गया। *अर्थात वह वृक्षों पर चढ़कर उनपर आक्रमण कर रहे थे।*

शतबाहु ने अपने अंगरक्षकों को आदेश दिया कि वह धनुष लेकर सज्ज रहें और किसी भी हिलती डुलती वस्तु अथवा व्यक्ति को देखते ही उस ओर संधान कर दें। कुछ ही क्षणों में आधे अंगरक्षकों ने अपने अपने धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ा लिए। शेष अंगरक्षकों ने अभी भी तलवार थामी हुई थी और उनमें से कुछ धीरे धीरे वन में भीतर बढ़ रहे थे।

शतबाहु को स्थिति उचित नहीं प्रतीत हो रही थी। उसे न तो अपने शत्रुओं के विषय में ज्ञात था और न ही उनकी संख्या के विषय में। ऐसी परिस्थिति में शत्रु से द्वंद्व करना हानिकारक हो सकता था। उसने अपने शेष अंगरक्षकों को आदेश दिया कि वह सावधानी के साथ पुनः मार्ग पर बढ़ें।

आगे बढ़ते ही उनपर पुनः कुछ बाणों की वर्षा हुई। परंतु अब उसके अंगरक्षक भी इस स्थिति के लिए तत्पर थे। उन्होंने न मात्र स्वयं का बचाव किया अपितु उनमें से एक का बाण वृक्ष पर चढ़े एक व्यक्ति को जा लगा और वह भूमि पर गिर पड़ा। शतबाहु ने वस्त्रों से उसे पहचाना, वह उत्तराँचल का सैनिक था।

शतबाहु आश्चर्यचकित था। उसका अनुमान ही नहीं विश्वास भी था कि मरुभूमि जाने वाले मार्ग पर कोई उसपर आक्रमण नहीं करेगा। वैसे भी उसे ज्ञात था कि उत्तराँचल की कुछ सेना प्रसान नगर और कुछ सेना सोमपर्वत की घाटी में उपस्थित थी, अतः उसपर किसी भी दशा में आक्रमण नहीं हो सकता था।

परंतु उसका अनुमान पूर्णतः गलत सिद्ध हो गया था।

उसने स्मरण किया कि कुछ ही दिनों पूर्व उसने स्वयं को ऐसी ही समान स्थिति में पाया था, जहाँ उसे और युद्धवीर को शर्पितों ने घेर लिया था। परंतु वर्तमान घटना उससे भिन्न थी। उस समय शर्पितों ने उनपर सामने से आक्रमण किया था और इस समय उनपर छिपकर आक्रमण हो रहा था। इसके अतिरिक्त छिप कर आक्रमण कर रहे सैनिक भी शर्पितों की अपेक्षा युद्ध करने में अधिक पारंगत प्रतीत हो रहे थे। किसी ने सब कुछ ध्यान में रखकर यह योजना बनाई थी।

इससे पूर्व कि वह मार्ग में आगे बढ़ते, शतबाहु ने देखा कि कई तलवार धारक सैनिक उनकी ओर भिन्न भिन्न दिशाओं से बढ़ रहे थे। उनके दूसरे हाथ में ढाल भी थी जिससे वह शतबाहु के अंगरक्षकों द्वारा मारे गए बाण से स्वयं का बचाव कर रहे थे। *उनकी योजना का दूसरा भाग!*

शतबाहु ने अपने अंगरक्षकों को संकेत किया और उनमें से कुछ आगे बढ़कर उनसे द्वंद्व करने लगे। जो अंगरक्षक वन में गए थे वह भी वापस नहीं लौटे थे, वह या तो उत्तराँचल के सैनिकों से द्वंद्व कर रहे थे या अभी तक मृत हो चुके थे।

शतबाहु ने अपने तलवार को कसकर पकड़ा और एक सैनिक की ओर बढ़ गया। परंतु उसके निकट पहुँचने से पूर्व ही एक वृक्ष से उसकी ओर बाण आया जो उसके उदर में धँस गया। तत्क्षण शतबाहु के एक अंगरक्षक ने उस दिशा में बाण मारा और उस वृक्ष से एक उत्तराँचल सैनिक भूमि पर गिर पड़ा।

शतबाहु ने अपने उदर से तीर निकाला और अपने अंगरक्षकों के मना करने के पश्चात भी शत्रु सैनिक से तलवार द्वंद्व करने लगा। कुछ ही प्रहारों में उसे अनुमान हो गया कि उससे द्वंद्व कर रहा सैनिक सामान्य नहीं था। परंतु शतबाहु को रोकना कठिन था, और क्रोधित अवस्था में उसे छू पाना भी असंभव था। शतबाहु ने वेग से अपनी तलवार घुमाई जो उस सैनिक का उदर चीरते हुए निकल गयी।

उसका वध कर वह पीछे मुड़ा तो उसे भूमि पर गिरे दो अंगरक्षक दिखे, यदि वह मृत नहीं भी थे तो गंभीर रुप से घायल अवश्य थे। उसने अपनी तलवार कमर पट्टिका में खोंसी और अपने अश्व पर बंधा हुआ अपना धनुष उठा लिया।

उसने पुनः ध्यान पूर्वक वृक्षों की ओर देखा। इस बार उसे कई सैनिक दिखे, *अधिक समय तक स्थिर रहकर छिपना असंभव था।* उसने उसे दिशा में लक्ष्य साध बाण चलाये। उसका लक्ष्य अचूक था, उसके द्वारा संधान किये गए चार बाणों में से तीन उचित स्थान पर लगे थे जिनका साक्ष्य था नीचे गिरे तीन सैनिक।

उसने स्थिति का पुनरवलोकन किया। वह दो स्थानों से घायल था जिनसे बहते रक्त के कारण वह शीघ्र ही बलहीन हो जाता। वह वहीं रुककर शत्रुओं से द्वंद्व कर सकता था परंतु इसकी संभावना बहुत अधिक थी कि उसके सभी अंगरक्षक शत्रु सैनिकों से पहले ही मृत हो जाते। ऐसे स्थिति में ऐसे स्थान पर पहले से ही घायल होने के कारण उसके लिए बचना असंभव था। वह अपने अश्व पर बैठा और वन से बाहर की ओर बढ़ गया। इस समय यही सर्वाधिक उचित विकल्प था। उसने क्रोध से अपने दाँत भींचे और अपने अश्व को अधिकतम गति से दौड़ाया। एक बार वह खुले स्थान पर आ जाता तो ऐसे सौ सैनिकों पर वह अकेला ही भारी पड़ सकता था।

परंतु वह अधिक दूर नहीं बढ़ पाया था कि किसी दिशा से आया हुआ एक बाण उसके अश्व के पिछले पैर पर जा लगा। अश्व के साथ साथ शतबाहु भी भूमि पर गिर पड़ा। अत्यधिक गति में रहने के कारण वह भी वेग से भूमि पर गिरा था और उसे कई चोटें आयीं। उसकी कमर में बंधी तलवार छिटककर दूर जा गिरी थी और उसके अश्व से बँधा धनुष भी।

उसने पीछे मुड़कर देखा तो दो सैनिक उसे अपनी ओर बढ़ते हुए दिखाई दिए। एक सैनिक के हाथ में धनुष था जिसकी प्रत्यंचा पर बाण चढ़ा हुआ था और दूसरे सैनिक के हाथ में तलवार थी। निःशस्त्र शतबाहु अपने स्थान पर खड़ा हो गया और उसने मन ही मन संकल्प लिया कि यदि उसके शरीर में रक्त की एक भी बूँद शेष रही तो वह उन सभी सैनिकों को मारे बिना उस स्थान से नहीं जायेगा।

वह तीव्रता से भूमि पर गिरी अपनी तलवार की ओर बढ़ा ही था कि धनुष लिए हुए सैनिक ने बाण चला दिया। बाण उसके स्थान पर तलवार को जा लगा था और अब तलवार उसकी पहुँच से दूर जा गिरी थी।

धनुर्धर सैनिक ने पुनः बाण संधान कर दिया जिससे बचने के लिए वह शीघ्रता से कूदकर एक वृक्ष के पीछे छिप गया। तभी उसे एक दूसरा धनुर्धर दिखाई दिया जो वन के भीतर था और जिसका लक्ष्य वह स्वयं था। *संभवतः उसे निःशस्त्र और अकेला देख सभी सैनिक अपने अपने छिपे स्थानों से बाहर आ रहे थे।*

उसके अंगरक्षक कुछ दूरी पर थे और द्वंद्व करने में व्यस्त थे। उस क्षण उसे अनुभव हुआ कि उसे उस स्थान से भागना नहीं चाहिए था। उसके पास दूसरे सैनिक से बचने का समय अथवा स्थान नहीं था। उसने अपने आप को नीचे झुका लिया और भय से स्वयंमेव ही उसकी आँखें बंद हो गयीं।

परंतु बाण संधान के स्थान पर उसे उस सैनिक की घुटी हुई चीख सुनाई दी। उसने सिर उठाकर देखा तो पाया कि उस सैनिक के गले में एक तलवार धँसी हुई और उसके देखते ही देखते वह भूमि पर गिर पड़ा।

मेरी सहायता किसने की? शतबाहु ने मन ही मन तलवार के आने की दिशा का अनुमान लगाया। किसी ने उसके पीछे से उस सैनिक को तलवार फेंक कर मारा था। *परंतु उसके सभी सैनिक तो विपरीत दिशा में थे।*

वह पीछे मुड़ा तो अचंभित रह गया, शतबाहु ने विचार किया था कि अब वह संभवतः जीवन पर्यंत उसको नहीं देख पायेगा। मृत्यु के मध्य फँसे होने के पश्चात भी उसके मुख पर एक मुस्कान आ गयी।

उसके पीछे शिखी खड़ा था।

शिखी एक दिन पूर्व मरुभूमि आश्रम से निकला था और उसके मरुभूमि की सीमा तक पहुँचते पहुँचते संध्या घिर आयी थी। सर्वप्रथम तो उसे ज्ञात ही नहीं था कि वह कहाँ जायेगा, क्या करेगा, परंतु अंततः उसने यह निश्चय किया कि वह उत्तराँचल जायेगा। वहाँ किसी नगर में कुछ कार्य ढूँढेगा और उसके पश्चात धीरे धीरे अपने भविष्य के विषय में सोचेगा।

परंतु मरुभूमि के बाहर मार्ग स्पष्ट नहीं थे, दिशा का उसे मात्र अनुमान था, और रात्रि होने के कारण कुछ दिख भी नहीं रहा था। वह कुछ समय तक इधर उधर बढ़ा, परंतु उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह पुनः उसी स्थान पर पहुँच गया है। वह मार्ग भटक गया था। उसने वन में ही रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल उसने पुनः अपनी यात्रा आरंभ की परंतु दिन में भी स्थिति कुछ अधिक भिन्न नहीं थी। वन में सभी वृक्ष उसे एक जैसे ही प्रतीत हो रहे थे। अंत में उसने आकाश में सूर्य को देख दिशा का अनुमान लगाया और उत्तराँचल की ओर बढ़ने का निर्णय लिया। वह पुनः एक ही स्थान पर गोल गोल न घूमने लगे, इस कारण वह वृक्षों को चिह्नित करने लगा। ऐसा करते हुए उसे कुछ ही समय हुआ होगा कि उसे कुछ लोग उसी ओर आते हुए दिखाई दिए। सशस्त्र!

ऐसे स्थान पर जहाँ सामान्य मनुष्य भी नहीं आते थे, वहाँ सशस्त्र सैनिकों को देख उसे कुछ विचित्र लग रहा था। उनका मंतव्य ज्ञात करने के लिए वह भी छिप गया। सैनिकों के वस्त्रों से उसने अनुमान लगाया कि वह उत्तराँचल के सैनिक थे। वह वन में ही एक स्थान पर रुके और फिर छिटककर सभी दिशाओं में बढ़ गए। कुछ सैनिक वृक्षों के पीछे छिप रहे थे तो कुछ सैनिक अपने अपने धनुष तूणीर लेकर वृक्षों के ऊपर चढ़ रहे थे। उन्हें उस स्थान पर किसी के छिपे होने की कोई आशंका नहीं थी, इसी कारण शिखी सरलता से उन्हें यह सब करते हुए देख पा रहा था।

शिखी को यह ज्ञात करने में अधिक समय नहीं लगा कि वह सभी किसी पर आक्रमण की योजना बना रहे हैं। परंतु वह ऐसा क्यों कर रहे थे यह उसे समझ नहीं आया। *किसपर आक्रमण करने वाले थे वह सभी? उस निर्जन स्थान पर कौन आने वाला था।*

शीघ्र ही वह सभी सैनिक अपने अपने स्थानों पर शांति से स्थिर हो गए। और उत्सुकतावश शिखी भी अपने स्थान पर ही छिपा रहा। वह जानना चाहता था कि यह सब क्या हो रहा है।

आधे प्रहर पश्चात उसे उत्तर प्राप्त हुआ जब उसे आश्रम की दिशा से शतबाहु और उसके अंगरक्षकों का दल आता हुआ दिखा। *कल संध्या तक तो महाराज शतबाहु के आश्रम आगमन की कोई सूचना नहीं थी,* अर्थात वह कुछ समय पूर्व ही आश्रम गए थे जब शिखी उस स्थान के निकट ही भटक रहा था। और अब पुनः वापस लौटते समय उनपर आक्रमण होने वाला था।

शिखी ने कुछ समय तक बिना हस्तक्षेप किये दोनों दलों के मध्य हो रहे द्वंद्व हो देखा। महाराज शतबाहु के युद्ध कौशल के विषय में उसे ज्ञात था परंतु वृक्षों पर छिपे सैनिकों के कारण वह भी दुर्बल पड़ रहे थे।

घायल होने के पश्चात शतबाहु ने अश्व पर चढ़कर वहाँ से जाने का निर्णय लिया परंतु तभी पीछे से एक सैनिक ने बाण द्वारा उसके अश्व को भी घायल कर दिया। जब उसे विश्वास हो गया कि शतबाहु के प्राण संकट में हैं, उसने हस्तक्षेप करने का निर्णय किया।

अंततः शतबाहु ही वह था जिसने वर्षों पूर्व उसे इसी वन से उठाकर मरुभूमि आश्रम पहुँचाया था और उसके प्राण बचाए थे।

शिखी ने मात्र एक क्षण के लिए शतबाहु को देखा और उसके पश्चात भूमि पर गिरे हुए उत्तराँचल सैनिक की ओर बढ़ गया। उसने उस सैनिक के गले में धँसी हुई अपनी तलवार निकाली और साथ ही भूमि पर गिरा हुआ उसका धनुष भी उठा लिया। उसके पश्चात वह वृक्षों की ओट में छिपता हुआ एक वृक्ष की ओट में खड़े शतबाहु की ओर बढ़ गया।

शतबाहु ने शिखी से धनुष लिया और एकाएक वृक्ष की ओट से निकलकर दूसरी ओर से बढ़ रहे सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। उन दोनों ही सैनिकों को इस आक्रमण की आशा नहीं थी और कोई प्रतिक्रिया कर पाने से पूर्व वह दोनों मृत थे।

“हमें पुनः उस ओर लौटना होगा।” शतबाहु ने धीमे स्वर में कहा, “उत्तराँचल के सभी सैनिकों को मारे बिना इस स्थान से सुरक्षित लौटना संभव नहीं।”

शिखी ने मात्र सिर हिलाकर सहमति प्रकट की। शतबाहु ने सत्य ही कहा था, आगे बढ़ते ही उनपर पुनः आक्रमण हो सकता था। शिखी ने स्वयं उत्तराँचल के कई सैनिकों को छिपते हुए देखा था इसी कारण वह अधिक सावधान था। उसे इस निर्जन वन के मध्य नहीं मरना था।

शतबाहु ने भूमि पर गिरी अपनी तलवार को उठाकर अपनी कमर पट्टिका में रख लिया। इसके पश्चात उसने मृत सैनिक के तूणीर को अपनी पीठ पर बाँधा और धनुष को कसकर पकड़ा। *इस स्थान पर इस समय धनुष अधिक सहायक सिद्ध होने वाले थे।*

शिखी ने भी दूसरे मृत सैनिक की ढाल को उठा लिया और दोनों सावधानीपूर्वक उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ अधिकांश सैनिक द्वंद्व कर रहे थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि कुछ समय के अंतराल पर द्वंद्व में घायल और पराजित हो रहे सैनिक वृक्षों की ओट में भाग जा रहे थे और वहाँ से कुछ अन्य सैनिक आ जा रहे थे।

“वन में छिपे सैनिकों को सर्वप्रथम समाप्त करना पड़ेगा।” एक सैनिक से द्वंद्व करते हुए शिखी ने शतबाहु से कहा, “यह छिपकर, विश्राम कर अपनी शक्ति एकत्र कर पुनः लौट रहे हैं।”

शतबाहु ने सहमति में अपना सिर हिलाया। “हाँ! परंतु यह हमें उस ओर बढ़ने भी तो नहीं दे रहे।” शतबाहु अपने धनुष द्वारा अधिक से अधिक उत्तराँचल सैनिकों को मारने का प्रयास कर रहा था। परंतु उसके अंगरक्षक भी उसी तीव्रता से मृत हो रहे थे।

शतबाहु के घाव से रक्त स्राव बंद नहीं हुआ था और उसपर दुर्बलता भी छाने लगी थी। परंतु शिखी के आ जाने से उसमें नयी ऊर्जा का संचार हो गया था। शीघ्र ही उत्तराँचल के अधिकांश सैनिक धराशायी हो गये और वृक्षों की ओट से भी सैनिक नहीं आये।

शिखी ने अपने प्रतिद्वंदी की तलवार पर शक्तिशाली प्रहार किया और उसकी तलवार मध्य से ही दो भागों में विभक्त हो गयी। *अंततः वह तलवार उसे महर्षि वह्निमित्र ने दी थी।* उसका प्रतिद्वंदी विस्फरित नेत्रों से कभी उसे तो कभी उसकी तलवार को देख रहा था। वह भागने के लिए मुड़ा ही था कि शिखी ने उसके पैरों पर प्रहार किया। उसके दोनों पैर घुटनों के नीचे से कट गए और वह भूमि पर गिर पड़ा। अगले ही क्षण शिखी की तलवार उसके हृदय को भेद गयी और शिखी स्वयं रक्त के छींटों से भीग गया।

“प्रतीत होता है कि हमने उत्तराँचल के सभी सैनिकों को परास्त कर दिया।” शतबाहु ने चारों ओर देखते हुए कहा। उसके चारों ओर मात्र शव ही शव थे। स्वयं उसका एक भी अंगरक्षक इस अवस्था में नहीं बचा था कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके। जो सैनिक मृत नहीं थे वह बेसुध थे।

“नहीं, ऐसा नहीं है।” शिखी ने भी शवों और घायलों का अवलोकन करते हुए कहा, “अभी भी कुछ सैनिक वन में हैं और संभवतः इस समय भी वह हम दोनों पर आक्रमण की रणनीति बना रहे होंगे। उससे पूर्व हमें ही उनपर आक्रमण करना होगा।” शिखी ने उत्तराँचल के सैनिकों को स्वयं छिपते हुए देखा था इसी कारण वह उचित रूप से उनकी संख्या का अनुमान लगा पा रहा था।

शतबाहु ने सहमति में अपना सिर हिलाया। उसने भी स्वयं एक ढाल को अपने हाथों में ले लिया था जिससे अकस्मात रुप से यदि कोई बाण आये तो वह शीघ्रता से बचाव कर सके। शिखी ने ध्यान दिया कि शतबाहु लड़खड़ा रहा है। “आप युद्ध करने की स्थिति में नहीं हैं।”

इससे पूर्व कि शतबाहु कोई उत्तर देता उसे आश्रम की दिशा से आता हुआ दत्र दिखाई दिया। शिखी ने भी अचंभित होते हुए दत्र को देखा और सावधानीपूर्वक दौड़ते हुए उसकी ओर बढ़ गया।

“दत्र! तुम आश्रम से यहाँ कैसे?” शिखी ने शीघ्रता से कहा और चौकन्नी दृष्टि से चारों ओर देखा, “सावधान रहो, इस स्थान पर शत्रु सैनिक छिपे हुए हैं।”

“किसके शत्रु?” दत्र ने धीरे से मुस्कराते हुए कहा। “मैंने कब किससे शत्रुता की।”

शिखी ने उसकी बातों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी और अपना पहला प्रश्न दुहराया, “तुम यहाँ कैसे पहुँच गए?”

“मैं तुम्हें ही ढूँढता हुआ आ रहा था कि वन में मुझे यह कोलाहल सुनाई दिया। अग्नि की कृपा है कि तुम मुझे शीघ्र ही मिल गए।” दत्र भी वातावरण में व्याप्त मृत्यु के शोक को अनुभव कर सकता था, परंतु शिखी से मिलकर वह प्रसन्न था। “तुम्हें इसी क्षण आश्रम लौटना होगा।”

“इस विषय में हम कुछ समय पश्चात बात करेंगे।” शिखी बोल ही रहा था कि मध्य में हस्तक्षेप करते हुए दत्र ने कहा, “सावधान! बायीं ओर से एक बाण आने वाला है।”

शिखी ने तत्क्षण अपने हाथों में ली हुई ढाल उठा दी जिससे एक बाण टकराया। वह उत्तराँचल का एक सैनिक था, परंतु वह दूसरा बाण मारता उससे पूर्व ही शतबाहु के बाण ने उसकी गर्दन को भेद दिया।

शिखी दत्र के साथ शतबाहु के निकट पहुँचा।

“मेरे अनुमान से अभी भी दस पंद्रह सैनिक जीवित होंगे जो हमारे यहाँ से आगे बढ़ते ही हम पर आक्रमण कर सकते हैं।” शिखी ने शतबाहु से कहा, “मैं मार्ग के बायीं ओर जा रहा हूँ जिधर अधिकांश जीवित सैनिकों के होने की आशा है। उनके वध के पश्चात ही हम यहाँ से सुरक्षित निकल सकते हैं।”

शतबाहु की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। उसके घावों से रक्त स्राव बंद हो चुका था परंतु पहले ही बह चुके रक्त के कारण वह स्वयं को बलहीन अनुभव कर रहा था।

दत्र के सिर में भी पुनः पीड़ा हो रही थी, परंतु वह उस विषय में किसी को बता नहीं रहा था। शिखी ने उससे कहा, “दत्र! यदि मेरा अनुमान गलत निकला और वन में सैनिक नहीं हुए तो मैं कुछ ही समय में लौट आऊँगा। परंतु यदि वन में सैनिक हुए तो मुझे आने में कुछ विलंब हो सकता है। ऐसी दशा में दूसरी ओर से भी आक्रमण हो सकता है। क्या तुम उतने समय तक महाराज की रक्षा कर सकते हो?”

“मुझे किसी के रक्षण की कोई आवश्यकता नहीं।” शतबाहु ने दृढ़ स्वर में कहा।

परंतु दत्र ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी लाठी अपने हाथ में पकड़ी, उसमें लगा खुटका दबाया और शिखी से बोला, “अवश्य! मैं प्रत्येक मूल्य पर महाराज की रक्षा करूँगा। परंतु तुम्हें भी एक वचन देना होगा, तुम पुनः मेरे साथ आश्रम लौटोगे। क्या तुम्हें स्वीकार है?”

शिखी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

“उत्तर दो शिखी! क्या परिस्थितियों से भागना कायरता नहीं?” दत्र ने कहा।

शतबाहु शांति से उन दोनों मित्रों का वाद विवाद सुन रहा था।

“क्या तुम मेरे साथ पुनः आश्रम लौटोगे?” दत्र ने इस बार अपने शब्दों पर बल देते हुए कहा।

“ठीक है।” शिखी ने धीरे से सहमति में सिर हिलाया और अपनी तलवार लेकर वन में बढ़ गया।

यातुल कीर्तिवर्धन के अंगरक्षक दल का प्रमुख था। कीर्तिवर्धन ने स्वयं अपने अंगरक्षकों और राजभवन में शेष बचे सैनिकों को छिपकर आक्रमण करने की योजना समझाई थी और उसे इस अभियान का प्रमुख नियुक्त किया था।

वह महाराज को अकेला छोड़ कर वन में आने को तत्पर नहीं था परंतु अंततः उसे भी कीर्तिवर्धन के निर्णय के आगे झुकना ही पड़ा। उसी निर्णय के फलस्वरुप वह इस समय वन में उपस्थित था। वह अभी तक अपने स्थान से बाहर नहीं आया था और छिपकर ही पूरी स्थिति का आकलन कर रहा था। शतबाहु के अश्व से गिरने के पश्चात उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि अब वह बच नहीं सकता, परंतु तभी वहाँ पर वह किन्नर युवक आ गया। यातुल को आशा नहीं थी कि वह युवक भी शतबाहु की रक्षा कर पायेगा, परंतु वह युवक तो मृत्युदूत निकला। इस समय वह वन में उसके सैनिकों के पीछे गया था और संभवतः उन सबकी मृत्यु के पश्चात ही लौटने वाला था।

परंतु यातुल को इस स्थिति में भी एक लाभ दिख रहा था। जिस ओर वह युवक गया था वह उसकी विपरीत दिशा में छिपा था, और वह भलीभांति देख रहा था कि शतबाहु इस समय मात्र एक अंधे युवक के साथ अकेला था। उसने अपने निकट छिपे सभी सात सैनिकों को संकेत किया और आठों एक साथ घायल शतबाहु और दत्र पर टूट पड़े। अंततः उसका लक्ष्य था शतबाहु की मृत्यु, भले ही इस प्रक्रिया में उसके सभी सैनिक मृत ही क्यों न हो जाएँ।

दत्र ने एक साथ अपनी ओर बढ़ रहे आठ जोड़ी पैरों को अनुभव किया और शतबाहु को सावधान कर दिया। *शिखी का अनुमान सही था,* उसने सोचा, *क्योंकि उसके जाने के कुछ ही समय पश्चात दूसरी ओर से उन पर आक्रमण हो गया।*

यातुल स्वयं शतबाहु से युद्ध करने वाला था परंतु दत्र ने अपनी लाठी से उसका मार्ग रोक दिया। यातुल के अनुमान के विपरीत वह अंधा युवक अत्यंत फुर्तीला था। उसने सर्वप्रथम उसी को समाप्त करने का निर्णय लिया।

दत्र ने अपनी दो नुकीले फलों वाली लाठी से प्रथम प्रहार किया। शत्रु के निकट आये बिना उसपर प्राणघातक प्रहार। परंतु यातुल सावधान था। उसने अपने शरीर के ऊपरी भाग को पीछे किया और उस प्रहार से बच गया। उसने दत्र की लाठी को तोड़ने के लिए तलवार से उसपर प्रहार किया, परंतु दत्र ने अपनी लाठी का फल आगे कर दिया जिससे टकराकर यातुल के प्रहार की दिशा परिवर्तित हो गयी।

यातुल कुछ पग पीछे हट गया। तभी वातावरण में एक तीक्ष्ण ध्वनि सुनाई दी। वह इस ध्वनि को पहचानता था। यह ध्वनि उसके दल के ही किसी सैनिक ने उत्पन्न की थी जिसका अर्थ था कि उसके दल के अधिकांश सैनिक मारे जा चुके हैं और अब उन्हें अभियान को मध्य में ही छोड़ वापस लौट जाना है। *तो वह किन्नर युवक वास्तव में मृत्युदूत निकला,* यातुल ने सोचा। उसने थोड़ी दूर पर युद्ध कर रहे शतबाहु को देखा जिससे युद्ध करने गए सात सैनिकों में से चार भूमि पर गिरे थे। और उसे ज्ञात था कि उस ध्वनि को सुनने के पश्चात शेष तीन सैनिक भी वहाँ से भागने का प्रयत्न करेंगे। *यदि वह शतबाहु द्वारा जीवित बच पाए तो।*

स्थिति उसके हाथ से निकल चुकी थी। उसे भी अपना कार्य अधूरा छोड़ उस स्थान से भागना होगा। परंतु उसने दत्र से द्वंद्व करने का निर्णय किया क्योंकि उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसका प्रतिद्वंदी भी कुछ धीमा हो गया है।

यातुल के रुकने के कारण दत्र भी रुक गया था और ध्यानपूर्वक उस ध्वनि को सुन रहा था। उसे कई पदचापों की ध्वनि सुनाई दी, कई लोग दौड़ते हुए दूर जा रहे थे।

तभी एकाएक यातुल ने तलवार से उसके उदर पर प्रहार किया, दत्र उचित समय पर सावधान हुआ और उसने अपनी लाठी आगे कर दी। परंतु तब तक यातुल की तलवार उसके उदर में घाव कर चुकी थी और उसकी लाठी का नुकीला फल यातुल के उदर में घुस गया था।

यातुल के मुख से रक्त निकल गया। उसने अपनी तलवार वहीं छोड़ी और वहाँ से भाग गया। *वह अंधा युवक सामान्य योद्धा नहीं था।* भागते समय उसने विशेष ध्यान दिया कि वह उस ओर न जाये जहाँ वह किन्नर युवक था।

शतबाहु से द्वंद्व कर रहे तीन सैनिकों में से दो मृत हो चुके थे और एक भागने में सफल हो गया था। उस सैनिक के पीछे जाने के स्थान पर शतबाहु दत्र के निकट पहुँचा। बिना उसके कुछ कहे ही दत्र बोलने लगा।

“यह घाव तो कुछ भी नहीं है, शीघ्र ही भर जायेगा।” शतबाहु ने देखा कि वह पीड़ा में भी मुस्कुरा रहा है। उसने अपनी लाठी के नुकीले फल अंदर कर दिए थे। “आपको मेरे प्रतिद्वंदी की अवस्था देखनी चाहिए थे, यदि उसे उपचार नहीं मिला तो वह शीघ्र ही मर जायेगा।”

उसने शतबाहु से पूछा, “आपके घाव कैसे हैं?”

“रक्त स्राव बंद हो चुका है।” शतबाहु ने धीरे से कहा। उसने अपनी तलवार अपनी कमर पट्टिका में रख ली और भूमि पर गिरी हुई यातुल की तलवार को उठा लिया।

“मुझे लगता है कि वह ध्वनि एक संकेत था कि अभियान छोड़ कर भाग जाओ। अब वह सैनिक नहीं लौटने वाले।” दत्र अभी भी बोलता जा रहा था। “मैं शिखी को अनुभव नहीं कर पा रहा, वह अवश्य ही दूर निकल गया होगा। हमें कुछ समय प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, शिखी शीघ्र ही लौट आयेगा।”

शतबाहु ने अपने जबड़े भींचे और यातुल की तलवार को दत्र के उदर में घोंप दिया। असावधान दत्र को चीखने का अवसर भी नहीं प्राप्त हुआ।

“मुझे क्षमा करना।” शतबाहु ने धीमे से उसके कान में कहा और तलवार को ऊपर खींचा जिससे दत्र के आंतरिक अंग कटते चले गए।

कुछ ही क्षणों में दत्र मृत हो चुका था। उसने अपनी ओर बढ़ रहे शतबाहु को तो अनुभव किया था परंतु उसके विचारों को नहीं भाँप सका। मृत्यु पश्चात भी दत्र के मुख पर पीड़ा से अधिक आश्चर्य के भाव थे।

अध्याय 31

अग्निरथी

जब शिखी आश्वस्त हो गया कि कोई भी सैनिक इस अवस्था में नहीं है कि वह अपने पैरों पर खड़ा होकर पुनः आक्रमण कर सके, वह लौट गया। *महाराज शतबाहु पर अब कोई संकट नहीं था।* उसकी तलवार उत्तराँचल के सैनिकों के रक्त से भीगी हुई थी जिससे टपकता हुआ रक्त भूमि पर गिर रहा था।

कुछ सैनिक भागने में भी सफल हो गए थे, परंतु उनकी संख्या नगण्य थी और शिखी को विश्वास था कि अपने साथियों की स्थिति देखकर वह लौटने वाले नहीं थे। मृत्यु के मुख से बचने वाला पुनः उसी की ओर नहीं दौड़ लगाता।

शिखी शीघ्रता से उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उसने महाराज शतबाहु और दत्र को छोड़ा था, परंतु वहाँ का दृश्य देखते ही उसकी श्वास थम गयी। वह अपने स्थान पर ठहर गया, तलवार स्वयंमेव ही उसके हाथों से निकल कर भूमि पर जा गिरी। दत्र को भूमि पर गिरा हुआ देख और उसके निकट सिर झुकाए शोकाकुल शतबाहु को देख उसका हृदय किसी अनिष्ट की आशंका से काँप उठा।

अगले ही क्षण वह दौड़कर उस स्थान पर पहुँचा और घुटनों के बल बैठ कर दत्र के शरीर को झकझोरने लगा। परंतु दत्र के शरीर में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। जिसका उसे भय था अंततः वही सत्य था, शिखी की आँखें आँसुओं से डबडबा आयीं। दत्र *मृत हो चुका था।*

शतबाहु भावहीन होकर शिखी को देख रहा था। दत्र के प्रति शिखी का वात्सल्य समझना उसके लिए कठिन था।

शिखी ने आग्नेय नेत्रों से उसकी ओर देखा और प्रश्न किया, “वह सैनिक यहाँ क्यों आये थे?”

“मेरा वध करने।” शतबाहु ने सरल भाव से उत्तर दिया। “वह अवश्य ही कीर्तिवर्धन के अंगरक्षक दल के सैनिक थे क्योंकि मैंने उनके प्रमुख यातुल को भलीभांति पहचाना था।”

शिखी ने एक बार पुनः दत्र के शव को देखा। वह दोनों राज्यों के मध्य चल रहे विवाद से परिचित था परंतु उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि किसी दिन वह भी उस विवाद के मध्य पड़ जायेगा और उसके परिणाम इस प्रकार होंगे। “दत्र का वध किसने किया।” उसने शतबाहु से पूछा।

“यातुल ने।” शतबाहु ने धीमे स्वर में कहा। उसे ज्ञात था कि इस क्षण वह जो कुछ भी कहेगा, शिखी के लिए वही सत्य होगा। “हालाँकि योजना अवश्य कीर्तिवर्धन ने बनाई होगी, क्योंकि उत्तराँचल का सेनापति पूरी सेना के साथ कहीं और है। इसी कारण उसने अपने अंगरक्षकों को यहाँ भेज दिया होगा, कायरता से मेरा वध करने के लिए।”

“प... परंतु कोई भी दत्र को इतनी सरलता से नहीं परास्त कर सकता,” शिखी ने कहा, “दत्र नेत्रहीन अवश्य था, परंतु यह उसकी दुर्बलता नहीं थी। उसके पास अन्य विशेष इन्द्रियाँ थीं।”

“सत्य कहा तुमने, परंतु एक लंबी मूर्छा के कारण वह दुर्बल अवश्य था,” शतबाहु ने महर्षि द्वारा दत्र की स्थिति के विषय में जो सुना था वही दुहराते हुए कहा। “और अचानक हुई ध्वनि के कारण दत्र का ध्यान कुछ क्षणों के लिए भटका, जिसका लाभ उठाते हुए यातुल ने दत्र के उदर में अपनी तलवार घोंप दी और यहाँ से भाग गया। दत्र को ऐसी अवस्था में देख मैंने भी उसके पीछे जाना उचित नहीं समझा।”

“अर्थात दत्र को मारने वाला अभी जीवित है।” शिखी ने अपने दाँतों को पीसते हुए कहा। उसने पुनः व्याकुलता से शतबाहु से प्रश्न किया, “क्या दत्र आपके पहुँचने तक जीवित था? क्या उसने कुछ कहा?

शतबाहु ने एक गहरी श्वास ली, “‘शिखी शीघ्र ही लौट आयेगा,’ यही अंतिम शब्द थे दत्र के। उसे अनुमान था कि वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह पायेगा, इसी कारण वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।”

शिखी ने अपने जबड़े भींच लिए, “वह यातुल अभी भी वन की परिधि में ही होगा, मैं उसे जीवित नहीं छोड़ूँगा।” शिखी को ज्ञात भी नहीं हुआ कि स्वतः ही उसकी हथेलियों से अग्नि की लपट निकल कर दत्र के शव को जलाने लगी। “और उसके पश्चात कीर्तिवर्धन को भी दत्र की मृत्यु के परिणाम भुगतने होंगे। यह मेरा प्रण है कि वह चाहे आकाश में छिप जाये अथवा पाताल में अथवा अनंत अंतरिक्ष में, मैं उसे स्वयं मारूँगा।”

शतबाहु भय से कुछ पग पीछे हट गया। उसने जितना अनुमान लगाया था, यह उससे भी अधिक भयावह था। यदि शिखी को तनिक भी संदेह होता कि दत्र का वध उसने किया है तो वह शिखी के प्रकोप से स्वयं को भी नहीं बचा पाता।

शिखी दत्र के शव को जलता हुआ ही छोड़ वन में बढ़ गया। उसकी हथेलियाँ अभी भी अग्नि उगल रही थीं। वह कुछ पग आगे बढ़ा होगा कि भूमि में कंपन होने लगा। शिखी उस कंपन से अनभिज्ञ आगे बढ़ता रहा।

परंतु शतबाहु उन कंपनों से व्याकुल हो उठा। प्रतीत होता था कि वन में हाथियों का कोई विशाल झुंड दौड़ लगा रहा है जिसके कारण भूमि कंपित हो रही है। उसने चारों ओर देखा परंतु उसे कुछ दिखाई नहीं दिया। एक अपरिचित भय के कारण उसका हृदय भी दुगुनी गति से स्पंदन करने लगा और शरीर स्वेद से भीग गया। तब उसने वह दृश्य देखा जिसकी उसने कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

वह अग्निकृमि जिसके विषय में उसने मात्र किंवदंतियाँ ही सुनी थीं वह शिखी के निकट भूमि फाड़कर प्रकट हो गया। अगले ही क्षण शिखी उस अग्निकृमि के ऊपर खड़ा था, मानो वह किसी रथ पर खड़ा हो। शिखी तनिक भी विचलित नहीं प्रतीत हो रहा था और न ही भयभीत।

अगले ही क्षण वह अग्निकृमि वन में बढ़ गया।

शतबाहु ने किसी प्रकार अपने मस्तिष्क को केन्द्रित किया और अपने घावों पर ध्यान न देते हुए उस ओर दौड़ गया। वह स्वयं इस संपूर्ण घटना का साक्षी बनना चाहता था। अग्निकृमि की गति बहुत अधिक थी परंतु शतबाहु को यह जानने में कोई कठिनाई नहीं हो रही थी कि वह किस दिशा में गया है क्योंकि उस विशाल आदिपशु के मार्ग में आने वाले सभी वृक्ष जलते हुए भूमि पर गिरे हुए थे। उस अग्निकृमि का स्पर्श सब कुछ जला दे रहा था।

यातुल वन में अधिक दूर नहीं बढ़ पाया था। उन सभी ने निर्देशानुसार अपने अपने अश्वों को घटना स्थल से दूर बाँधा था और वह किसी भी दशा में वहाँ पहुँचना चाहता था। संभवतः वहाँ उसका कोई अन्य जीवित साथी हो जो उसकी सहायता कर सके। परंतु दत्र की लाठी ने उसके उदर में बहुत गहरा घाव किया था और वह विचार कर रहा था कि क्या वह जीवित अवस्था में वहाँ तक पहुँच भी पायेगा।

वह जितना भी दौड़ने का प्रयत्न कर रहा था, रक्त स्राव की गति उतनी ही तीव्र होती जा रही थी। उसका शरीर शिथिल पड़ता जा रहा था और सभी दिशाएँ भागती हुई सी प्रतीत हो रही थीं। वह वन में कहाँ और किस ओर भाग रहा था उसे अब इसकी भी सुध नहीं थी। तभी उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि भूमि डोल रही है और वृक्ष काँप रहे हैं। *अवश्य ही रक्त की कमी के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा होगा।*

वह कुछ पग और आगे बढ़ा तो उसे एक सरसराहट की तीव्र ध्वनि सुनाई दी। पीछे मुड़ते ही उसे जो दृश्य दिखाई दिया उसे देखकर वह भय से ही अपने स्थान पर जड़ हो गया। *निश्चित रूप से वह विक्षिप्त हो चुका था।* उसने असावधानी से अपने पग पीछे बढ़ाये तो एक वृक्ष से टकराकर भूमि पर गिर पड़ा।

उसके समक्ष एक विचित्र और विशाल सरीसृप बढ़ा आ रहा था जो अग्नि का प्रतिरूप लग रहा था। उस सरीसृप के मार्ग में आये वृक्ष जल रहे थे और उसके भार के नीचे कुचले हुए थे। परंतु उससे भी आश्चर्यजनक दृश्य यह था कि एक युवक उस अग्नि रुपी सरीसृप के ऊपर खड़ा था, मानो कोई रथी अपने रथ में खड़ा हो।

अपने मृत्यु के अंतिम क्षणों में यातुल को मात्र सरीसृप की शल्काएँ ही दिखीं और एक प्रचंड ऊष्मा का अनुभव हुआ मानो उसके शरीर को किसी ज्वालामुखी में फेंक दिया गया हो।

शतबाहु ने भी थोड़ी दूर से उस दृश्य को देखा। यातुल को मारने के पश्चात वह अग्निकृमि जिस प्रकार प्रकट हुआ था उसी प्रकार पुनः भूमि में समा गया। कुछ क्षणों के लिए भूमि में पुनः कंपन हुई और उसके पश्चात सब कुछ शांत हो गया, जैसे किसी झंझावात के समाप्त होने के पश्चात वातावरण शांत हो जाता है।

जब महर्षि वह्निमित्र ने शतबाहु को शिखी के विषय में बताया था कि उसके भीतर अग्नि की शक्तियाँ हैं और वह संभवतः उनमें से एक है जो मंत्र विद्या के मंत्रों के बिना भी उसका प्रयोग कर सकते हैं, तभी उसके मस्तिष्क में यह तथ्य छप गया था।

वन में शिखी को देखते ही उसने निर्णय ले लिया था कि वह उससे युद्ध में अपने पक्ष से भाग लेने को कहेगा। इस प्रकार अंततः किसी मंत्र विद्या ज्ञाता को अपने पक्ष में सम्मिलित करने का उसका उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा। हालाँकि उसे भी अनुमान नहीं था कि शिखी उसका आग्रह स्वीकार करेगा अथवा नहीं, परंतु वह महर्षि की अपेक्षा शिखी से अधिक बल देकर आग्रह कर सकता था। इसकी संभावना बहुत अधिक थी कि शिखी उसकी सहायता करने को तैयार हो जाता।

परंतु तभी दत्र भी वहाँ आ पहुँचा। जिस प्रकार दत्र शिखी से आग्रह कर रहा था उसे देख उसके मन में तनिक भी संदेह नहीं शेष रहा कि शिखी पुनः आश्रम लौट जायेगा। यदि ऐसा हो जाता तो इसकी संभावना बढ़ जाती कि शिखी उसकी सहायता नहीं करता। स्वयं महर्षि ही शिखी को ऐसा करने से रोक सकते थे।

जब उसने घायल दत्र को देखा तो उसके मन में विचार आया कि यदि दत्र उत्तराँचल के सैनिकों द्वारा मारा जाता तो क्या होता? और उसे जो उत्तर मिला उसकी कल्पना मात्र से ही वह रोमांचित हो उठा।

अब उसे अधिक आग्रह करने की भी आवश्यकता नहीं थी, उसे तो मात्र शिखी के क्रोध को एक दिशा देनी थी।

शतबाहु और शिखी शांतिपूर्वक पुनः दत्र के शव के निकट पहुँचे जो लगभग जल चुका था। न तो शतबाहु ने ही अग्निकृमि के विषय में कोई प्रश्न किया और न ही शिखी ने कुछ कहने का प्रयत्न किया।

मौन अवस्था में ही शिखी ने वन में से सूखी लकड़ियाँ एकत्र कीं, उन्हें सज्जित किया और दत्र का अधजला शव उठाकर उसपर रख दिया। उसके पश्चात उसने कुछ मंत्र पढ़े जिससे दत्र की जीवात्मा सरलता से ब्रह्मात्मा में विलीन हो जाये। कष्टप्रद जन्म और जीवन होने के पश्चात भी दत्र सदैव आनंदित अवस्था में रहने का प्रयत्न करता था और शिखी नहीं चाहता था कि मृत्यु के पश्चात उसकी जीवात्मा को किसी भी प्रकार का कोई कष्ट पहुँचे।

अग्नि अर्तयम पापनाशकम! उसने अंतिम मंत्र पढ़ा और लकड़ियों के ढेर में अग्नि लगाकर कुछ पग पीछे हट गया। उसके पश्चात वह उस जलती हुई अग्नि को ध्यान से देखने लगा। दत्र के रूप में उसके जीवन में जो सुखद स्मृतियाँ थीं वह धूम्र बनकर नष्ट होती जा रही थीं।

दत्र की लाठी को उसने स्वयं ही रखने का निर्णय लिया था जो इस समय भी उसके पास ही था। उससे कुछ और पीछे खड़े शतबाहु ने देखा कि शिखी के हाथों का दबाव लाठी पर बढ़ता ही जा रहा था।

शिखी अभी भी क्रोधित था और उसे शिखी के इस क्रोध को कभी समाप्त नहीं होने देना था। उस क्रोध की अग्नि स्वयं ही उसके शत्रुओं को भस्म कर देने वाली थी।

अध्याय 32
भविष्यद्रष्टा

"यह सत्य है महारानी," वृतिका ने चंद्रप्रभा से कहा, "ऋषि मृकल एक भविष्यद्रष्टा हैं।"

दक्षिणांचल की महारानी चंद्रप्रभा उस समय मलयपुरी राजभवन में अपने कक्ष में बैठी थी। कुछ ही समय पूर्व उसे शतबाहु का संदेश प्राप्त हुआ था कि वह मलयपुरी लौट रहा है, और वह अपने पति के विषय में ही विचार कर रही थी जब उसने दो सेविकाओं को किसी मृकल ऋषि के विषय में बातें करते हुए सुना। उत्सुकतावश उसने वृतिका को उस ऋषि के विषय में सूचना एकत्र करने को भेज दिया जिसके विषय में सेविकाएँ यह चर्चा कर रही थीं कि वह भविष्य बताते हैं।

"वह एकद्वीप के नगरों ग्रामों में भ्रमण कर भिक्षाटन द्वारा अपना जीवन यापन करते हैं और उत्सुक व्यक्तियों को उनके भविष्य के विषय बताते हैं।" वृतिका ने नगर हाट में प्राप्त हुए तथ्यों को चंद्रप्रभा के समक्ष दुहराया।

"मात्र उत्सुक व्यक्तियों को?" चंद्रप्रभा ने कहा, "मुझे तो लगता है प्रत्येक व्यक्ति अपने भविष्य के विषय में जानने को उत्सुक रहता है।"

"नहीं महारानी! यह सत्य नहीं है।" वृतिका बोली, "जिसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता उसके विषय में ज्ञान मात्र दुःख और चिंता ही उत्पन्न करता है।"

चंद्रप्रभा ने वृतिका की बातों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। वह भविष्य के प्रति उत्सुक थी, वृतिका की भांति निराशावादी नहीं।

"क्या वह मेरे प्रश्नों के उत्तर भी देंगे?" उसने वृतिका से पूछा।

"अवश्य! मुझे नहीं लगता कि उन्हें ऐसा करने में कोई आपत्ति होगी।" वृतिका ने कहा, "परंतु महारानी, आप किसका भविष्य जानना चाहती हैं।"

"तुम मात्र ससम्मान उन्हें यहाँ लिवा लाओ।" वृतिका को उत्तर देने के स्थान पर चंद्रप्रभा ने उसे आदेश दिया।

"जैसी आपकी आज्ञा।" वृतिका ने कहा और पुनः हाट की ओर बढ़ गयी।

ऋषि मृकल की प्रतीक्षा करती चंद्रप्रभा का मस्तिष्क एक बार पुनः शतबाहु पर चला गया।

शतबाहु शिखी के साथ मलयपुरी की ओर बढ़ रहा था।

दत्र को पंचतत्वों में विलीन करने के पश्चात उन्होंने अपने घाव धुले, स्वयं को व्यवस्थित किया और नौका द्वारा नर्मदा को पार किया। वहाँ से जाते समय शतबाहु अपने अंगरक्षकों के साथ था, परंतु लौटते समय मात्र एक युवक के साथ था, इस तथ्य पर प्रहरियों ने भी ध्यान दिया परंतु उन्हें रोकने का साहस किसी ने नहीं किया।

वन में ही शतबाहु ने शिखी को कुछ समय पूर्व हुए युद्ध की स्थिति और आने वाले युद्ध की संभावना के विषय में बताया था और उसे दक्षिणांचल की सेना में सम्मिलित होने का आग्रह किया था।

शिखी ने बिना एक क्षण सोचे उस आग्रह को स्वीकार कर लिया था। संभवतः उसके लिए मात्र यही पर्याप्त था कि वह उत्तराँचल के महाराज कीर्तिवर्धन के विरुद्ध युद्ध लड़ने वाले थे। आश्रम से निकलते समय उसके पास कोई लक्ष्य नहीं था परंतु अब उसे ज्ञात था कि उसे क्या करना है।

उसे दत्र की मृत्यु का प्रतिशोध लेना था।

अपने सभी अंगरक्षकों की हानि के पश्चात भी शतबाहु प्रसन्न था कि शिखी ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया है। सत्य तो यह था कि उसने वन में घायल अपने अंगरक्षकों की सुध भी नहीं ली थी कि उनमें से कितने वास्तव में मृत थे और कितने अभी भी जीवित हो सकते थे।

युद्ध से पूर्व एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य शेष था जिसके कारण वह मलयपुरी जा रहा था। *पद्मकेतु को भी संदेश प्राप्त हो गया होगा,* उसने मन में सोचा। उस महत्वपूर्ण कार्य के लिए पद्मकेतु का भी मलयपुरी में होना आवश्यक था।

पद्मकेतु रत्नगढ़ राजभवन के एक कक्ष में बैठा था जब उसे युद्धवीर के आगमन की सूचना प्राप्त हुई। *वह तो भैया के मित्र हैं। वह इस स्थान पर क्या कर रहे हैं?*

परंतु जब उसे शतबाहु द्वारा हस्तलिखित पत्र प्राप्त हुआ तो सभी बातें उसके समक्ष स्पष्ट हो गयीं। शतबाहु ने युद्धवीर को दक्षिणांचल का नया जलपति नियुक्त किया था और उसे अतिशीघ्र मलयपुरी बुलाया था। वह उसे दक्षिणांचल का नया युवराज बनाने वाला था और यह कार्य पूर्ण विधि द्वारा मात्र मलयपुरी में ही सम्पन्न किया जा सकता था।

पद्मकेतु यह पद ग्रहण नहीं करना चाहता था परंतु वह शतबाहु की आज्ञा की अवहेलना भी नहीं कर सकता था। वह तब भी तो शतबाहु के आदेशों की अवहेलना नहीं कर पाया था जब उसने युद्ध का निर्णय सुनाया था। कहीं न कहीं उसे भी यह लगता था कि शतबाहु ही वारिमित्र की मृत्यु का दोषी है।

और तुम? क्या तुम वारिमित्र की मृत्यु के दोषी नहीं? उसके अंतर्मन से कहीं एक स्वर आया। *तुम तो युद्ध में सेनापति थे।*

वह कक्ष से बाहर निकल आया। संध्या की शीतल वायु उसके शरीर से टकराई।

उसने युद्धवीर के स्वागत हेतु सभी निर्देश दे दिए थे और उनसे आग्रह किया था कि वह कुछ समय विश्राम करें और वह उनसे अगले प्रहर भेंट करेगा।

वह तनिक प्रसन्न भी था कि उसे कुछ दिनों तक यह कार्य नहीं करना पड़ेगा। कई दिनों से वह स्वयं अभ्यास क्षेत्र भी नहीं जाता था और मात्र उपसेनापतियों को निर्देश दे देता था।

उसने सैनिकों को आदेश दिया कि वह एक दल सज्ज करें। शतबाहु की आज्ञा अनुसार उसे प्रातःकाल ही मलयपुरी के लिए प्रस्थान करना था।

मलयपुरी!

अपने राजभवन! जहाँ प्रत्येक स्थान पर उसकी और वारिमित्र की स्मृतियाँ अंकित थीं।

पद्मकेतु ने एक दीर्घ श्वास ली, *यह सरल नहीं होने वाला था।*

मलयपुरी -

ऋषि मृकल ने महारानी चंद्रप्रभा के आग्रह का मान रखा और वृतिका के साथ राजभवन पधारे। चंद्रप्रभा ने उनका स्वागत किया और उत्सुक भाव से उनके समक्ष बैठ गयी।

मृकल के मुख पर मुस्कान प्रकट हो गयी। वह जहाँ भी जाते थे उन्हें इसी प्रकार से उत्सुक व्यक्ति मिलते थे और उन सभी की एक ही इच्छा होती थी।

“कहिये देवी!” मृकल ने प्रश्न किया, “आप किसके भविष्य के विषय में जानना चाहती हैं?”

कुछ उत्तर देने से पूर्व चंद्रप्रभा ने प्रश्न को मन में ही दुहराया, *वह किसका भविष्य में जानना चाहती थी?*

वह स्वयं का भविष्य जानना चाहती थी, वह शतबाहु का भविष्य जानना चाहती थी, परंतु दुविधा में थी।

“क्या आप भविष्य में सब कुछ देख सकते हैं?” उसने पूछा।

“वह सब कुछ जो पंचभूत मुझे दिखाना चाहते हैं।” मृकल ने कहा, “परंतु प्रश्न अभी भी यह है कि आप किसका भविष्य देखना चाहती हैं?”

“क्या आप एकद्वीप का भविष्य बता सकते हैं?” चंद्रप्रभा बोली।

“अवश्य!” मृकल ने अपनी आँखें बंद कीं और बोले, “एकद्वीप की यह भूमि जिसे स्वयं महर्षि याचि के मार्गदर्शन में बसाया गया था शीघ्र ही एक भीषण युद्ध की साक्षी बनने वाली है। मैं उस युद्ध के विनाश को अनुभव कर सकता हूँ और उन्हें भी जो इस युद्ध में निर्णायक भूमिका निभायेंगे।”

प्रसान नगर -

युद्ध समाप्त हो चुका था और रम्या का उद्देश्य भी। परंतु अब वह स्वयं को लक्ष्यविहीन अनुभव कर रही थी। सिंधुपद और अम्राली से आई सेना कुछ ही दिनों में वहाँ से प्रस्थान करने वाली थी। सबके मध्य मात्र यही चर्चा थी कि संभवतः कुछ ही समय पश्चात एक बार पुनः दक्षिणांचल से युद्ध होने वाला है।

उसने वसुधा से उसके साथ जाने की अनुमति माँगी। अब इस नगर में स्मृतियों के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं था। और वह स्मृतियाँ मात्र उसे दुःख ही देतीं। संभवतः जब वर्षों पश्चात वह स्मृतियाँ धूमिल पड़ जायेंगी तो वह पुनः लौट आयेगी।

“इसमें अनुमति का कोई प्रश्न नहीं, सदैव तुम्हारा स्वागत है।” वसुधा ने सहर्ष कहा।

जीवित वर्षाण सैनिकों के बंधक बनाये जाने के पश्चात प्रसान नगर के बंधकों को भी शीघ्र ही मुक्त करा लिया गया। कौस्तुभ अत्यधिक प्रसन्न था कि बालसेन जीवित है। उसके अनुसार वर्षाणों ने उसे एक बड़े से कारावास में कई अन्य नागरिकों के साथ बंधक बना दिया था और पुनः लौटे भी नहीं थे।

कौस्तुभ अपने घावों पर औषधि लगा रहा था जब नासन द्वारा उसे संदेश प्राप्त हुआ कि सभी दलपतियों को शीघ्र ही एक सभा हेतु बुलाया गया है।

“वृषाण देश के विषय में हमें जो भी निर्णय लेना है, अतिशीघ्र ही लेना होगा।” सभा आरंभ होते ही प्रसान नगर के नगरपाल ने कहा। युद्ध समाप्त होने के पश्चात उत्पन्न हुई समस्याओं को सुलझाने के लिए वह सभा बुलाई गयी थी।

“उचित यही होगा कि वृषाण देश को उत्तराँचल का भाग बना लिया जाये।” सिंधुपद के राजाश्री रुद्रसेन ने कहा। अपने पुत्र प्रतापसेन की मृत्यु का समाचार प्राप्त होते ही वह तत्क्षण वहाँ पहुँच गए थे, हालाँकि उन्हें भी भली भांति ज्ञात था कि इसका कोई लाभ नहीं। परंतु वह प्रतापसेन की अंतिम यात्रा के साक्षी रहना चाहते थे। उन्हें गर्व था कि उनका पुत्र अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में सफल रहा था।

“आपका सुझाव अति उत्तम है।” अरिदमन ने कहा, “यद्यपि अंतिम निर्णय महाराज कीर्तिवर्धन का है, परंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह भी इस निर्णय से सहमत होंगे। हालाँकि मैं एक अन्य सुझाव भी देना चाहता हूँ।”

रुद्रसेन ने प्रश्नवाचक दृष्टि से उन्हें देखा।

“वर्षाणों की जीवन शैली हमसे पूर्णतः भिन्न है।” अरिदमन ने कहा, “हम एक राजा नियुक्त कर दर्मक के सिंहासन पर बैठा देंगे तो वहाँ की सामान्य प्रजा में धीमा रोष फैलने लगेगा जो अंततः प्रतिरोध का रूप ले लेगा। और इस समय हमें प्रतिरोध नहीं सहयोग चाहिए। मेरा मत है कि हम कम से कम एक वर्ष तक किसी वर्षाण को ही वहाँ का राजा नियुक्त करें और अपने किसी प्रतिनिधि को वहाँ भेजें। वह प्रतिनिधि न मात्र नए राजा का मार्गदर्शन करेगा अपितु एकद्वीप से होने वाले व्यापार को वृषाण देश के साथ साथ आगे के राज्यों में फैलाएगा।”

रुद्रसेन ने कुछ क्षणों तक विचार किया। सभी वर्षाण युद्ध बंधकों को प्रसान नगर के कारावासों में ही रखा गया था। जितने भी वर्षाण प्रसान नगर में एक वर्ष पूर्व से पहले आकर बसे थे वह पूर्व की भांति रहने को स्वतंत्र थे, हालाँकि उनपर कड़ी दृष्टि रखी जाने वाली थी। एक अनुमान के अनुसार वृषाण देश के सभी सैनिक युद्ध में भाग लेने आये थे और इस समय वहाँ मात्र गिनती के वर्षाण सैनिक शेष थे। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अरिदमन का सुझाव उचित था। उनके प्रतिनिधि को दर्मक में कोई समस्या नहीं होती।

“परंतु हम दर्मक का राजा किस वर्षाण को नियुक्त करेंगे?” अंततः उन्होंने पूछा।

“त्रीमा को।” अरिदमन ने कहा।

“त्रीमा को? परंतु वह तो असाक का भाई है।” किसी अन्य के कुछ कहने से पूर्व नगरपाल बोल उठा।

“हाँ! और वह हमारी सहायता करने को तत्पर है।” अरिदमन ने कहा, “उसे राजा बनाने से हमें व्यापारी वर्षाणों का भी समर्थन प्राप्त हो जायेगा।”

“परंतु वर्षाणों के मध्य हमारा प्रतिनिधित्व कौन करेगा?” रुद्रसेन ने अधीरता से कहा।

सभा में कुछ क्षणों के लिए शांति छा गई। वास्तविकता यह थी कि सभी सावधानियों के पश्चात भी वर्षाण में रहने वाले प्रतिनिधि के प्राणों पर संकट बना रहता।

“मैं करूँगा यह कार्य।” सभा की शांति को भंग करता एक स्वर गूँजा तो सबकी दृष्टि स्वयंमेव ही उस ओर घूम गयी।

चंद्रसेन अपने स्थान पर खड़ा था। “पिताश्री मैं यह कार्य करूँगा।” वह गंभीर स्वर में बोला।

"प...परंतु..." रुद्रसेन ने कुछ कहना चाहा किंतु शांत हो गए। *चंद्रसेन को ज्ञात था कि वह क्या कह रहा है और इस कार्य का क्या मूल्य है।* कुछ क्षणों पश्चात उन्होंने कहा, "परंतु यदि तुम दर्मक जाने का चयन करोगे तो सिंधुपद की सेना का नेतृत्व कौन करेगा? आने वाले युद्ध में हमें एक सुदृढ़ नेतृत्व की आवश्यकता होगी।"

"मुझे ज्ञात है पिताश्री। परंतु सेना का नेतृत्व उसे ही करना चाहिए जो सबसे अधिक योग्य हो, और मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ।" चंद्रसेन ने सभा में बैठे सभी व्यक्तियों की ओर देखते हुए कहा, "मैं कौस्तुभ को सिंधुपद की सेना का सेनापति बनाने का प्रस्ताव देता हूँ।"

मलयपुरी -

चंद्रप्रभा को मृकल की बातें कुछ अधिक समझ नहीं आयीं। *उसे एकद्वीप के विषय में प्रश्न ही नहीं करने चाहिए थे,* उसने सोचा।

मात्र एक युद्ध शब्द ऐसा था जो उसकी समझ में आया था। वह स्वयं भी तो इस होने वाले युद्ध के विषय में ही चिंतित थी।

"ऋषिवर! आपने युद्ध के विषय में बताया, परंतु आपने यह नहीं बताया कि युद्ध किसके मध्य होगा और कौन उस युद्ध में विजयी होगा?" चंद्रप्रभा ने प्रश्न किया, "और कौन उस युद्ध में जीवित बचेगा और कौन मृत्यु को प्राप्त होगा?"

"युद्ध तो सदैव मनुष्य की इच्छाओं के मध्य होता है।" मृकल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "क्रोध, लोभ, मोह अथवा अहंकार, इन सबके मूल में इच्छा ही तो है। जो मनुष्य इच्छाओं से मुक्त होता है, वह प्रत्येक युद्ध में विजयी होता है।"

चंद्रप्रभा पुनः अपने स्थान पर व्यवस्थित हुई। मृकल से यह छिपा नहीं कि एक बार पुनः उसे उत्तर स्पष्ट समझ नहीं आया। मृकल ने कहा, "आप संभवतः किसी प्रियजन की मृत्यु से भयभीत हैं। परंतु उसका कोई लाभ नहीं। जीवन और मृत्यु युद्ध पर निर्भर नहीं करते। जब तक जीवात्मा का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता, तब तक चाहे कितने ही प्रयास कर लिए जाएँ वह जीवात्मा शरीर का त्याग कर ब्रह्मात्मा में विलीन नहीं होती।"

"उस युवती का स्वास्थ्य अब कैसा है वैद्य जी?" थिनला ने अपने ग्राम के वैद्य से पूछा।

वह, इरा, दीकट और उस बेसुध युवती के साथ एक दिन पूर्व ही अपने ग्राम पहुँची थी।

"उसके सिर पर अत्यंत गहरा घाव लगा है बेटी जिसके कारण वह अचेत है।" वैद्य ने अपनी वृद्ध और कांपती वाणी में कहा, "यह आश्चर्यचकित कर देने वाली बात है कि वह युवती मार्ग में ही मृत नहीं हो गयी।"

थिनला ने एक गहरी श्वास ली, वह प्रसन्न थी कि वह उस युवती को अपने ग्राम तक ला पाने में सफल हो गयी थी जिसने उसके प्राण बचाए थे। *अब इसके आगे वनदेवी की इच्छा। जीवन मृत्यु तो उनके अधीन है।*

"क्या उसके पुनः स्वस्थ होने की कोई संभावना है?" उसने वैद्य ने पूछा।

"वह युवती अचेत अवश्य है, परंतु उसमें असीम इच्छाशक्ति है। जब तुम उसे यहाँ लाई थी तब उसे तीव्र ज्वर था।" वैद्य बोला, "मैं जब उसके सिर पर औषधियों का लेप लगा रहा था तब मैंने उसे उसी बेसुध अवस्था में ही कुछ बड़बड़ाते हुए सुना था। वह बार बार 'प्रतिशोध' और 'प्रबल' का उच्चारण कर रही थी।"

थिनला ने वैद्य की ओर देखा, मानो पूछा रही हो कि इन सबका अर्थ क्या था।

"उस युवती की जीवात्मा कष्ट में है। किसी ने उस युवती के किसी अत्यंत निकट प्रियजन को छीना है जिसकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने से पूर्व उसकी जीवात्मा उसका शरीर नहीं छोड़ेगी।"

मलयपुरी -

चंद्रप्रभा ने धीरे से वृतिका की ओर देखा। वह शांत भाव से अपने स्थान पर खड़ी थी। संभवतः वह मृकल की बातें सुन भी नहीं रही थी अथवा उसे भी उनकी बातें समझ नहीं आ रही थी।

चंद्रप्रभा ने अगला प्रश्न पूछा, "ऋषिवर युद्ध तो सदैव से होते आये हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। क्या इस युद्ध में कुछ विशेष है?"

"इस युद्ध को साधारण न समझिये देवी।" मृकल ने कहा, "इस युद्ध को यह भूमि सैकड़ों वर्षों पश्चात भी भूल नहीं पायेगी। जो शक्तियाँ सहस्रों वर्षों से सुप्त थीं, वह भी इस युद्ध में प्रकट होंगी। इसका प्रभाव इतना व्यापक होगा कि कोई भी मनुष्य तटस्थ नहीं रह पायेगा। मैं अनुभव कर सकता हूँ कि सभी समीकरण तीव्रता से परिवर्तित हो रहे हैं, युद्ध में भाग लेने के लिए मनुष्य अपने अपने दल का चयन कर रहे हैं।

"मैं अनुभव कर सकता हूँ कि चतुरंग के खेल की भांति सभी अपने अपने नियत स्थानों पर पहुँच रहे हैं, मात्र प्रतीक्षा है तो इस खेल के आरंभ होने की। युद्ध के आरंभ होने की। विनाश के आरंभ होने की।"

तिरम द्वीप पर सागर देवी का मंदिर सर्वाधिक ऊँचे स्थान पर बनाया गया था। प्रतिवर्ष होने वाले अनुष्ठान द्वंद्व की प्रथा के अनुसार विंद्रक ने सागर तट से एक पात्र में जल भरा और उसे देवी को अर्पित करने के लिए पैदल ही पथरीली भूमि पर चलता हुआ मंदिर की ओर चढ़ाई करने लगा।

उसने आस पास अपनी दृष्टि घुमाई, उसे उत्सव का आनंद लेते हुए असंख्य जल दस्यु दिखाई दिए। किसी में साहस नहीं था कि वह उसे क्षेत्रक के पद के लिए चुनौती दे सके। परंतु उसकी दृष्टि अपनी बहन सेतिका को ढूँढ रही थी जो उसे कहीं भी दिखाई नहीं दे रही थी।

प्रतिवर्ष तो वह मेरे साथ साथ ही यह यात्रा पूर्ण करती है, परंतु इस बार क्या हुआ? कहाँ रह गयी वह?

वह मंदिर तक पहुँचा। उसके पास कोई अन्य विकल्प नहीं था, वह इस अनुष्ठान को मध्य में नहीं छोड़ सकता था। उसने पात्र उठाया और उसमें भरा जल देवी पर अर्पित करने ही वाला था कि उसे सेतिका का स्वर सुनाई दिया।

"रुको।"

विंद्रक के हाथ स्वतः ही रुक गए। उसके मुख पर मुस्कान आ गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि उसकी बहन वहाँ अवश्य आयेगी।

वह पीछे मुड़ा, परंतु क्रोधित सेतिका को देख उसके मुख से मुस्कान विलुप्त हो गई।

"इस अनुष्ठान को इसी क्षण रोक दीजिये।" सेतिका ने क्रोध भरे स्वर में कहा।

"परंतु क्यों?" एक वृद्ध जल दस्यु ने प्रश्न किया। विंद्रक स्वयं कुछ समझ ही नहीं पा रहा था। वृद्ध ने आगे कहा, "नियमानुसार यदि कोई क्षेत्रक को चुनौती नहीं देता तो शीघ्र अति शीघ्र ही जल अर्पण का कार्य पूरा कर लेना चाहिए। और मुझे तो नहीं लगता कि कोई भी जल दस्यु विंद्रक को चुनौती देगा।"

"आपका अनुमान गलत है काका।" सेतिका बोली, "मैं विंद्रक को क्षेत्रक के पद के लिए चुनौती देती हूँ।"

विंद्रक के जबड़े कस गए परंतु उसने कुछ कहा नहीं। उसने मात्र शांत भाव से जल भरा पात्र भूमि पर रख दिया। अब उसके और उसकी बहन के मध्य जो भी जीवित बचता वही उस पात्र के जल को देवी को अर्पण करने वाला था।

तिरम के क्षेत्रक को चुनौती देने का एक ही अर्थ था - मृत्यु द्वंद्व।

ज्ञानशिला -

"प्रणाम प्रधानाचार्य।" सेवक ने वलक्ष को प्रणाम किया जो कुछ प्राचीन अभिलेखों में डूबे हुए थे।

कुछ दिनों पूर्व उन्हें एक समाचार प्राप्त हुआ था जिसकी सत्यता की जाँच करने के लिए ही उन्होंने उस सेवक को कहीं भेजा था।

वलक्ष ने अधीरता से सेवक की ओर देखा।

"समाचार सत्य हैं प्रधानाचार्य।" वलक्ष का आशय समझ सेवक ने धीरे से कहा, "मरुभूमि के बाहर मिले मृतकों की मृत्यु का कारण अग्निकृमि ही है। इसके अतिरिक्त वन के उस क्षेत्र में जले वृक्षों को देखकर भी यह स्पष्ट है कि अग्निकृमि वन के उस भाग में उपस्थित था।"

वलक्ष ने धीरे से सिर हिलाया, "और?"

"मैंने वहाँ से सारे साक्ष्य हटवा दिए हैं।" सेवक ने कहा, "और उसके पश्चात मैं मरुस्थल में भी गया था।"

कुछ बोलने से पूर्व सेवक ने कुछ क्षणों का विराम लिया। मरुस्थल में एक अत्यंत छोटे से स्थान को ढूँढना सरल नहीं था। "सुप्त पदार्थ नियत स्थान पर ही रखा हुआ है। महर्षि वह्निमित्र ने भलीभांति अपने दायित्व का निर्वहन किया था। यद्यपि अग्निकृमि वहाँ नहीं था।"

वलक्ष ने कोई टिप्पणी नहीं की और उस सेवक को कक्ष से जाने का आदेश दिया।

वह अग्निकृमि विशाल मरुस्थल में कहीं भी हो सकता है।

वह अपने समक्ष बिखरे अभिलेखों में से एक उठाकर पढ़ने लगे। आदिपशुओं के अनियंत्रित होने पश्चात अब यह उनका दायित्व था कि वह उसे रोकें। उन्हें पूर्ण रूप से तो नहीं ज्ञात था कि परंतु संदेह अवश्य था कि अग्निकृमि किसके नियंत्रण में था।

उन्होंने अपनी आँखें बंद की और सिर को अपने आसन के पीछे टिका दिया।

एकद्वीप की वर्तमान परिस्थितियों में हस्तक्षेप करने का समय आ चुका था।

मलयपुरी -

"एक अंतिम प्रश्न का उत्तर दें ऋषिवर।" चंद्रप्रभा बोली, "इस युद्ध का कारण क्या है? और क्या इसे रोका नहीं जा सकता?"

"समय चक्र में किसी घटना के आरंभ होने का कारण ढूँढ पाना असंभव है।" मृकल ने कहा, "और किसी भी आगामी घटना की भांति इस युद्ध को भी रोका जा सकता है। भविष्य निश्चित नहीं अपितु परिवर्तनशील होता है। परंतु ऐसा करने के लिए उचित समय पर प्रतिक्रिया देना आवश्यक होता है। संभवतः अब प्रतिक्रिया देने का समय समाप्त हो चुका है। संभवतः अब इस युद्ध को रोका नहीं जा सकता।

"यह सत्य है कि इस युद्ध से विनाश होगा परंतु विनाश सृजन की मूल आवश्यकता है। यह युद्ध अंततः एकद्वीप में स्थिरता लायेगा। इस युद्ध में कई नायक प्रकट होकर समक्ष आयेंगे," मृकल ने वृतिका की ओर देखा और कहा, "और कई रहस्योद्घाटन होंगे।"

प्रसान नगर -

अरिदमन ने संदेश देने वाले सैनिक को ध्यान से देखा। वह तो महाराज कीर्तिवर्धन के अंगरक्षक दल का भाग था। वह संदेश वाहक का कार्य क्यों कर रहा था। और उसके शरीर पर घाव के चिह्न क्यों थे?

उन्होंने शीघ्रता से संदेश पढ़ा और उनके माथे पर बल पड़ते चले गए। *महाराज कीर्तिवर्धन शतबाहु पर किस प्रकार आक्रमण कर सकते हैं? वह भी गुप्त रूप से।*

अरिदमन समझ नहीं पाए कि महाराज के मस्तिष्क में यह मूर्खतापूर्ण विचार आया भी कैसे? परंतु जैसे ही उन्होंने उस किन्नर युवक के विषय में पढ़ा जिसने एक आदिपशु की सहायता से अकेले ही अधिकांश सैनिकों का वध किया था उनकी हृदय स्पंदन गति बढ़ने लगी।

मरुभूमि की सीमा के निकट... एक किन्नर युवक...

यह उचित संकेत नहीं थे।

"क्या तुमने स्वयं उस युवक को देखा था?" उन्होंने उस सैनिक से पूछा।

सैनिक ने मात्र धीमे से सिर हिलाया। वह उन तीन अंगरक्षकों में से एक था जो जीवित बच गए थे। शेष दो की स्थिति अत्यंत दयनीय थी, इसी कारण कीर्तिवर्धन से शीघ्रता से उसे ही संदेश के साथ भेज दिया था।

"उसकी आयु क्या थी?" अरिदमन ने पुनः पूछा।

"पंद्रह सोलह वर्ष।" सैनिक ने अनुमान लगाया। मात्र शिखी का स्मरण करते ही उसका शरीर भय से काँप उठा।

पंद्रह सोलह... अरिदमन ने मन ही मन दुहराया। *यह सत्य नहीं हो सकता।*

उन्होंने सैनिक को जाने का आदेश दिया और अपने पर्यंक पर बैठ गए। जीवन में प्रथम बार वह इतने चिंतित थे।

वह युवक कोई और नहीं हो सकता।

उनका भूतकाल किसी कालसर्प की भांति एक बार पुनः उनके समक्ष आकर खड़ा हो गया था। संभवतः नियति ने अपनी कथा उसी दिन लिख दी जिस दिन उस युवक का जन्म हुआ था।

उनकी आँखों के समक्ष पंद्रह वर्षों पूर्व घटी हुई वह घटना स्पष्ट दिखाई दिखने लगी।

पंद्रह वर्षों पूर्व, वह वर्षा की रात्रि थी जब वह मरुभूमि के बाहर घने वनों के मध्य बढ़ रहे थे। आकाश में काले घने मेघ छाये हुए थे जिससे चंद्रमा की एक भी रश्मि धरा तक नहीं पहुँच पा रही थी। वर्षा की तीव्र ध्वनि में उस शिशु का रुदन भी छिप जा रहा था जिसे अरिदमन ने अपने हाथों में थामा हुआ था।

अरिदमन ने वस्त्र में लिपटे उस शिशु को एक वृक्ष के नीचे रखा और पुनः लौट गए। उनकी आँखें अश्रुओं से भरी हुई थीं, मुट्ठियाँ कसी हुई थीं, परंतु उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्हें ज्ञात था कि यदि वह एक बार भी पीछे मुड़कर उस शिशु को देख लेते तो उसे उस स्थान पर छोड़ नहीं पाते। उन्हें ज्ञात था कि ऐसे ऋतु में ऐसे स्थान पर उस शिशु के जीवित रहने की संभावना शून्य थी।

अपने शिविर में बैठे अरिदमन ने अपना सिर पकड़ लिया। *यह युवक वही था जिसे उन्होंने वन में रखा था।*

वही युवक जिसे उन्होंने वर्षों पूर्व मृत मान लिया था।

कथा अगले भाग में जारी